कुल्लू देव परम्परा
बंजार-सैंज

कुल्लू देव परम्परा

बंजार-सैंज

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

क्लिफ-ऐण्ड-एस्टेट, शिमला-171001

कुल्लू देव परम्परा

परामर्श

मनीषा नंदा

प्रधान सचिव, भाषा-संस्कृति एवं पर्यटन

बी. एम. नाण्टा

उपायुक्त, ज़िला कुल्लू

संपादक

डॉ. तुलसी रमण

सह संपादक

रमेश जसरोटिया

डॉ. श्यामा वर्मा

सूनृता गौतम

पर्यटन विकास परिषद्, ज़िला कुल्लू से प्राप्त
वित्तीय अनुदान के अंतर्गत प्रकाशित

ISBN : 978-81-86755-69-1
प्रकाशक : सचिव, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी,
क्लिफ-ऐण्ड-एस्टेट, शिमला-171001

प्रथम संस्करण : 2012
मूल्य : 120.00
कम्पोज़िंग : अरशद अली
मुद्रक : क्रियेटिव एडवर्टाइज़र्ज़ एण्ड प्रिंटर्ज़
बी. 2, तीसरी मंज़िल, पुष्पा कॉम्पलेक्स, देशबंधु गुप्ता मार्ग
पहाड़गंज, नई दिल्ली - 110 055

आवरण
मुख्य पृष्ठ : कुल्लू दशहरा के अवसर पर रघुनाथ जी की पारम्परिक रथ यात्रा का दृश्य
अन्तिम पृष्ठ : चैहणी कोठी गाँव चैहणी में प्राचीन कोठी का अनूठा वास्तुशिल्प

पुस्तक डिज़ाइन : देवर्षि लेज़र ग्राफिक्स, शिमला
: क्रियेटिव आर्ट एण्ड प्रिंट प्रोवाइडर, हमीरपुर

Kullu Dev Parampara : Banjar-Sainj
Published by : Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Shimla-171001, Himachal Pradesh
Edition : 2012
Price : 120/-

आमुख

जनश्रुतियाँ और लोक विश्वास

प्रेम कुमार धूमल

मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश एवं अध्यक्ष, हिमाचल अकादमी

कुल्लू की देव परम्परा में जनश्रुतियों का विशेष स्थान रहा है। इन्हीं के आधार पर देवी-देवताओं से सम्बंधित लोक विश्वास स्थापित हैं। 'अठारह करडू' की जनश्रुति सुदूर अतीत से चली आ रही है। कहते हैं कि एक बार महर्षि जमदग्नि मानसरोवर की परिक्रमा करके लौट रहे थे और वह अपने साथ करडू यानी पिटारी में देवताओं की अठारह प्रतिमाएँ लाए थे। जब वे चन्द्रखणी पर्वत-शिखर पर पहुँचे तो पर्वत की दूसरी ओर मलाणा गाँव के शासक बाणासुर को मालूम हो गया कि उसका शत्रु जमदग्नि ऋषि आ रहा है। बाणासुर ने चंद्रखणी पहुँच कर जमदग्नि से युद्ध किया, मगर वह पराजित हो गया। इस युद्ध के दौरान बाणासुर ने ऐसी भयंकर आँधी का प्रहार किया कि करडू में रखी देव-प्रतिमाएँ सारे क्षेत्र में दूर-दूर तक बिखर गईं और जहाँ गिरीं, वहीं देवता का प्रादुर्भाव हो गया। वे सभी देवता 'अठारह करडू' के नाम से प्रख्यात हुए और उनके एक के बाद एक अनेक मंदिर बनते गए।

दूसरी जनश्रुति 'अठारह नाग' की है, इस गाथा के अनुसार वासुकि नाग इन पहाड़ों में भ्रमण करता हुआ बंजार के निकट से होकर हलाण गाँव पहुँचा, जहाँ आज भी उसका मंदिर और प्रतिमाएँ हैं। उसी गाँव की एक कन्या से उसने विवाह किया और उसके अठारह नाग-पुत्र हुए। उनकी एक बड़े घड़े में पूजा होने लगी। एक दिन वे सभी नाग-पुत्र घड़ा तोड़कर इधर-उधर भाग निकले और विभिन्न स्थानों पर नाग देवता के रूप में प्रकट हो गए। इन्हीं नागों के मंदिर अनेक गाँवों में निर्मित हुए और पूरे क्षेत्र में नाग पूजा का विस्तार हुआ। यह जनश्रुति इन क्षेत्रों में नाग-पूजा को एक रोचक कथा का आधार देती है और लोक विश्वास की स्थापना के लिए ऐसी कथाएँ सबसे कारगर सिद्ध होती रही हैं।

कालांतर में 'अठारह नाग' और 'अठारह करडू' देवताओं का क्षेत्र विस्तार इतना हो गया कि यह अठारह की संख्या अधिसंख्यक के अर्थ में प्रयोग होने लगी। ढालपुर के जिस मैदान में दशहरा के अवसर पर कभी सारे कुल्लू ज़िला के 365 देवी-देवता एकत्र होते रहे हैं, वह स्थान परम्परा से 'अठारह करडू की सौह' कहलाता है। जनश्रुतियोंवाले देवताओं के इन दो बड़े परिवारों ने कुल्लू की देव परम्परा में सबसे अधिक विस्तार पाया है और इनके साथ ही अनेक ऋषि-मुनि व अन्य देवी-देवता भी यहाँ पूज्य हुए हैं।

कुल्लू की देव परम्परा में एक कहावत 'अठारह नाग-अठारह नारायण' की भी है। इस संदर्भ में विद्वानों की यह धारणा उचित प्रतीत होती है कि ऋषि जमदग्नि की जनश्रुति वाले 'अठारह करडू' देवता ही 'अठारह नारायण' हो सकते हैं और इस तरह नाग तथा नारायण देवताओं के लोक विश्वास और क्षेत्र विस्तार को भी आधार मिल जाता है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के प्रमुख तत्त्वों को वायु, वरुण, ऊषा, अग्नि, सूर्य आदि देवों के रूप में स्वीकार किया है। लेकिन हमारी लोक परम्परा में प्रकृति प्रधान आदिम देवताओं से लेकर नाग, शैव-शाक्त और वैष्णव देवताओं की स्थापना तक, एक जटिल देव परम्परा है। इसके ऐतिहासिक सूत्र जनश्रुतियों, देव-वार्ताओं और लोकोक्तियों आदि में ही तलाश किए जा सकते हैं। इसलिए यह शोध कार्य महत्त्वपूर्ण है। इसी उद्देश्य से कुल्लू देव परम्परा का यह सर्वेक्षण और अन्वेषण अकादमी द्वारा स्थानीय सर्वेक्षकों के माध्यम से करवाया गया है। तीन खंडों में प्रकाशित इस दस्तावेज़ में ऐसी सामग्री है, जिसके आधार पर आगे बहुआयामी शोध हो सकेगा।

प्राक्कथन

लोक देवता की पारम्परिक व्यवस्था

मनीषा नंदा

प्रधान सचिव, भाषा-संस्कृति एवं उपसभापति, हिमाचल अकादमी

हिमाचल प्रदेश में लोक देवताओं की जो संस्थाएँ ग्राम तथा क्षेत्र के स्तर पर अतीत से चली आ रही हैं, इनकी अपनी पारम्परिक व्यवस्था है। क्षेत्रीय स्तर पर कुछ भिन्नता के साथ इनके रीति-रिवाज़ों में समानता दिखाई देती है। लेकिन यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ये देवी-देवता अपनी परम्परा पर टिके रहने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं और इसे कायम रखने के लिए 'गूर' यानी प्रवक्ता के माध्यम से अपनी प्रजा पर नियंत्रण बनाए रखते हैं। दूसरी तरफ यह भी देखने में आता है कि प्रजा के बहुमत के साथ देवता को भी अपनी परम्परा में कुछ संशोधन स्वीकार करने होते हैं। देवता और उसकी प्रजा में धार्मिक और सामाजिक विषयों को लेकर संवाद चलता रहता है। वर्ष में प्रमुख संक्रांति दिवसों या मेले-त्योहारों के अवसरों पर देवता के समक्ष प्रजाजनों की जो सभाएँ होती हैं, उनमें सार्वजनिक प्रकरणों पर नियमित चर्चा के बाद निर्णय लिए जाते हैं, जो सर्वमान्य होते हैं।

कुल्लू देव परम्परा के इतिहास पर नज़र डालने से ज्ञात होता है कि देवताओं की यात्राओं तथा पूजा आदि से सम्बंधित विविध व्यय के लिए देवताओं के नाम पर भूमि की जागीरें दी गई थीं। कालांतर में जनता के चढ़ावे तथा चंदे आदि से देव-भंडारों में धन एकत्र होने लगा और आज कई बड़े देवता स्वयं समृद्ध हैं। देवता की संस्था के संचालन में 'कारदार' यानी प्रबंधक की भूमिका प्रमुख रहती है। ये कारदार परम्परागत होते हैं। ग्रामीण जीवन की धुरी देवता हैं, इसलिए इनके कारदार का विशेष महत्त्व रहता है। ये देवता के प्रशासनिक प्रबंधक होते हैं।

देव परम्परा में 'गूर' एक पवित्र व्यक्ति माना जाता है। 'गूर' में प्रवेश करके ही देवता समाज के समक्ष अपनी बात कहता है, अपनी 'भारथा' यानी इतिहास सुनाता है। 'गूर' लम्बी जटाएँ रखता है और उसे जीवन में देवता द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करना पड़ता है। इसी के साथ देवता के पुजारी की भी इस परम्परा में विशेष भूमिका रहती है। वह पारम्परिक विधि से पूजा का दायित्व निभाता है। देवता का सेवक होकर वह प्रतिमा के सन्निकट रहता है। 'भंडारी' देवता के समस्त भंडार की देख-रेख करता है। देव-भंडार का सारा नियंत्रण उसके अधिकार में रहता है और वह देवता के आय-व्यय का लेखा रखता है। भंडारी का चयन एक निश्चित अवधि के लिए प्रजाजनों की सभा में किया जाता है। कुल्लू क्षेत्र में देव-संगीत मंडल का प्रमुख 'ढौंसी' कहलाता है। यह पारम्परिक देवधुनों का विशेषज्ञ होता है और अवसर के अनुकूल देव-संगीत का संचालन करता है। देवता के त्योहार-उत्सव तथा यात्राओं का संयोजन 'जठाली' करता है। वह उत्सव तथा यात्राओं के लिए अन्न-धन जनता से एकत्र करता है और देव-आयोजनों की सूचना सम्बंधित क्षेत्र के लोगों को देता है। देवता की प्रजा के प्रत्येक घर से एक-एक आदमी देवयात्रा, उत्सव-त्योहार आदि में आवश्यक रूप से सम्मिलित होता है जिसे 'देऊलू' कहते हैं।

इस तरह देवता की व्यवस्था में कारदार, पुजारी, गूर, भंडारी, ढौंसी, देऊलू और जठाली आदि के अतिरिक्त कुछ छोटे कार्यकर्ता भी होते हैं। देवता के प्रति आस्था के रहते ये सभी कार्यकर्ता निष्ठा से देव-कार्य करते हैं। इसी से देव परम्परा आज भी समाज में कायम है। अकादमी द्वारा किए गए इस शोध-सर्वेक्षण में देव-व्यवस्था के अनेक आयाम सामने आए हैं, जिसके आधार पर इस परम्परा के विभिन्न पक्षों का गहन अध्ययन किया जा सकता है।

प्रस्तावना

देव परम्परा की कला धरोहर

डॉ. तुलसी रमण

सचिव, हिमाचल अकादमी

कला मानव संस्कृति की उपज है। मनुष्य ने कला को प्रतिष्ठित करके आत्मगौरव प्राप्त किया है। मानव जीवन को सुंदर और सुखकर बनाने में कला का अप्रतिम योगदान रहा है। कला के द्वारा ही मानव-जीवन में माधुर्य और सौंदर्य आया है। पर्णकुटी से प्रासाद तक के सफर में मनुष्य ने बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ अपनी सौंदर्य चेतना का विकास भी किया है। मनुष्य का यह विकास उसके सांस्कृतिक उपक्रमों में सर्वाधिक दृष्टिगोचर होता है। हिमाचल प्रदेश में विभिन्न लोक कलाएँ आदिम समाज से चली आ रही हैं। संगीत और नृत्य के अतिरिक्त अनेक ललित कलाएँ भी यहाँ व्यापक रूप से प्रचलन में हैं। जिन क्षेत्रों में सामाजिक जीवन के केन्द्र में लोक देवता हैं, वहाँ की लोक कलाएँ भी देव परम्परा से जुड़ी हैं। बल्कि कहा जा सकता है कि लोक देवता की समग्र व्यवस्था के अंतर्गत ही विभिन्न कलाओं का समावेश है।

पहाड़ के मानव ने सबसे पहले लोक देवता की कल्पना पेड़, पर्वत-शिखर, किसी चट्टान, ढाँक या झरने आदि के प्राकृतिक रूप में की; ऐसे देव स्थान यहाँ आज भी मौजूद हैं। जब उसने अपने आराध्य देवता की मूर्ति के रूप में पूजा करने का निश्चय किया तो सबसे पहले पत्थर या काष्ठ को तराश कर देवताओं की प्रतिमाएँ बनने लगीं। ये मूर्तियाँ प्रारंभ में अनगढ़ पत्थरों को कुछ आकृति देकर ही पूजा के लिए स्थापित हुईं। लेकिन कालांतर में इन प्रस्तर या काष्ठ मूर्तियों को कलात्मक सौंदर्य के साथ निर्मित किया गया। उसके बाद धातु मूर्तियों का प्रचलन हुआ और छोटे मोहरों से लेकर विशालकाय धातु प्रतिमाएँ निर्मित करके स्थापित की गईं। कुल्लू ज़िला में देवताओं के धातु निर्मित मोहरे सर्वाधिक पाए जाते हैं और देवता के एक ही रथ में अनेक मोहरे सजाने की परम्परा है। इस तरह प्रस्तर और काष्ठ से लेकर धातु की प्रतिमाओं तक मूर्तिकला की विविधता है।

देव मूर्ति को स्थापित करने के लिए मंदिर की आवश्यकता पड़ी तो छोटे देहरों से शुरू करके कालांतर में ऐसे विशाल और भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ, जो देव-प्रजा की सर्वांगीण समृद्धि के प्रतीक दिखाई देते हैं। हिमाचल प्रदेश में छोटे-बड़े मंदिरों की कुल संख्या लगभग छह हज़ार है और विशिष्ट शैली के मंदिर भी दो हज़ार के करीब हैं। कला समीक्षकों ने इन मंदिरों को शिखर, पैगोडा, गुम्वद, पिरामिड, ढलवाँ आच्छादन, मीनार, बौद्ध विहार, गुहा, देशज तथा मिश्रित, इन ग्यारह वर्गों में विभाजित किया है। कुल्लू में अधिकांश देवताओं के मंदिर देशज वास्तुशैली के हैं।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण ने देश के जिन 3612 पुरा-स्मारकों को राष्ट्रीय महत्त्व का घोषित किया है, उनमें हिमाचल प्रदेश के चालीस स्मारक शामिल हैं। इनमें कुल्लू ज़िला के हिडिम्बा मंदिर (मनाली), शिव मंदिर (जगत सुख), गौरी-शंकर मंदिर (दशाल), विश्वेश्वर महादेव मंदिर (बजौरा) और गौरी-शंकर मंदिर (नगर) पुरातत्त्व की दृष्टि से परिगणित हैं। इनमें 8-9वीं शती में निर्मित बजौरा का विश्वेश्वर महादेव मंदिर शिखर शैली की अद्वितीय संरचना है, जो आज भी मौलिक रूप से संरक्षित है। इसी तरह जगतसुख का शिखर शैली में निर्मित लघु मंदिर भी प्रदेश के सबसे प्राचीन मंदिरों में है। कुल्लू जिला में पैगोडा शैली के भी कुछ मंदिर हैं, जिनमें हिडिम्बा (मनाली), त्रिजुगी नारायण (दयार), त्रिपुरा सुंदरी (नगर), आदि-ब्रह्मा (खोखण) और मनु (शैंशर) के मंदिर गिने जा सकते हैं।

हिमाचल प्रदेश में काष्ठ तथा प्रस्तर से निर्मित पहाड़ी शैली के मंदिरों की अलग पहचान है। इस मंदिर-वास्तु

को 'काठकुणी' शैली का नाम भी दिया गया है। इस में एक तह पत्थर की चिनाई करके उस पर काष्ठ-बीम जोड़ा जाता है और इस क्रम से चारों कोने काष्ठ के बन जाते हैं। इसीलिए यह 'काठकुणी' शैली है। ऐसे मंदिर विशेष रूप से कुल्लू, शिमला, सिरमौर, मंडी तथा किन्नौर ज़िलों में हैं। कई ज़िलों में 'काठकुणी' शैली के मंदिर तीन-चार मंज़िल ऊँचे हैं, जबकि कुल्लू ज़िला में अधिकांश मंदिर एक या दो मंज़िल के हैं। कहीं छत के भीतर तीसरी मंज़िल भी निर्मित है। लेकिन बंजार क्षेत्र में चैहणी-कोठी एक टॉवर के रूप में बहुमंज़िला निर्माण है, जो काष्ठ-प्रस्तर की चिनाई और सीढ़ी के आकार-प्रकार को देखते हुए पहाड़ी वास्तु का एक अनूठा उदाहरण है। कुल्लू के अधिकांश मंदिरों में स्लेटों की छतें विशेष रूप से आकर्षक हैं। ये छतें बहुस्तरीय हैं और शिखर पर छतरी के आकार भी निर्मित हुए हैं।

हिमाचल के मंदिरों में काष्ठ कला का सुंदर उपयोग देखने को मिलता है। छतों की झालरों में काष्ठ का पारम्परिक काम है। इनमें देव-आकृतियाँ और बेल-बूटे उकेरे गए हैं। इन झालरों से झूलती लकड़ी की कतारबद्ध महीन छड़ियों की सज्जा सुंदर दिखाई देती है। पहाड़ों पर जब बर्फ़ गिरती है तो रात को तापमान शून्य से काफी नीचे चला जाता है और छतों से टपकता बर्फ़ का पानी सुबह को छड़ियों के रूप में जम जाता है। इन छड़ियों को शिमला की पहाड़ियों में 'झरुड़ी' यानी जलधाराएँ कहा जाता है। इसी के अनुरूप होने के कारण मंदिरों की झालरों की काष्ठ-छड़ियों को भी 'झरुड़ी' कहते हैं। दरअसल प्रकृति की लीला से ही कला-शिल्पी आकृतिगत अनुकरण करते हैं। पर्वतों से छतों के शिखराकार लिए गए हैं तो शीत में जमी हुई जलधाराओं का झालरों की काष्ठ-सज्जा में अनुकरण किया है। इसी तरह लकड़ी के मेहराब और सीढ़ियों आदि का निर्माण भी इन मंदिरों में सुरुचि से किया जाता है।

कुल्लू क्षेत्र में देव-रथों का विशेष महत्त्व है। जब यहाँ देव यात्राओं का प्रचलन हुआ तो रथों की आवश्यकता पड़ी। ये रथ कलात्मक सज्जा के साथ निर्मित हुए। हर क्षेत्र के लोगों ने अपने देवता के रथ और अन्य उपकरणों के लिए सोना-चाँदी भेंट कर दिया। इस तरह देवी-देवता के रथ, सिंहासन और छड़ियाँ आदि आकर्षक कला-शिल्प में निर्मित हुए और इन उपकरणों से देवता के भंडार भी समृद्ध हो गए। देवताओं के कलात्मक रथों का भव्य दृश्य कुल्लू दशहरा में देखने को मिलता है। ये देव-रथ भी कई शैलियों के हैं। कुल्लू देव परम्परा की इन तीनों सर्वेक्षण पुस्तकों में विभिन्न प्रकार के मंदिरों, देवताओं के मोहरों, रथों के आकार-प्रकार तथा अनेक शिल्प-शैलियों का उल्लेख किया गया है।

लोक देवताओं की पूजा तथा यात्रा, आदि का सारा उपक्रम देव संगीत पर चलता है और इस पारम्परिक संगीत के ढोल, नगारे, करनाल आदि वाद्य यंत्रों का निर्माण भी कलात्मक होता है। इस तरह लोक देव परम्परा के अंतर्गत कला-शिल्पों का एक समग्र सिलसिला अतीत से चला आ रहा है, जो यहाँ की सांस्कृतिक विरासत का विशेष भाग है।

कुल्लू देव परम्परा के इस शोध-सर्वेक्षण में क्षेत्रीय सर्वेक्षकों, छायाकारों, बुद्धिजीवियों और कारदारों का जो सहयोग रहा है, उन सबके प्रति आभार व्यक्त करते हुए यह बात फिर स्पष्ट करना चाहूँगा कि इस तरह की अबूझ और जटिल परम्पराओं के शोध-सर्वेक्षण को अंतिम सत्य या तथ्य मानकर नहीं चल सकते, क्योंकि इसका अधिकांश भाग जनश्रुतियों और मौखिक सूचनाओं पर आधारित है। अतः यह एक ऐसा आधारभूत सर्वेक्षण है, जहाँ से बहुपक्षीय शोध के द्वार खुलते हैं। आशा है इस कार्य से जुड़े अकादमी के अधिकारियों के संपादन कौशल तथा सर्वेक्षकों के श्रम का यह प्रतिफल वास्तव में एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ साबित होगा।

सर्वेक्षण परामर्श

श्री एम.आर. ठाकुर, वरिष्ठ सांस्कृतिक लेखक, कुल्लू।
प्रो. वरयाम सिंह, सदस्य अकादमी, बंजार।
डॉ. सीता राम ठाकुर, ज़िला भाषा अधिकारी, ज़िला कुल्लू।
श्री नरोत्तम नेगी, प्रधान, देवी-देवता कारदार संघ, ज़िला कुल्लू।

सर्वेक्षक : बंजार खंड

1. **श्री ख्याली राम शर्मा**, कारदार, गाँव खमराड़ा, डाकघर चेथर

देवता-मंदिर : अनंत बालूनाग-तांदी (संयुक्त लेख)।

2. **श्री चेतन स्वरूप**, कारदार, गाँव बलागाड़, डाकघर बंजार

देवता-मंदिर : त्रिपुर बाला सुन्दरी व मार्कण्डेय ऋषि-बलागाड़ (संयुक्त लेख)।

3. **श्री जगत सिंह मेहता**, नागेश्वर भवन, सरेहुली, डाकघर चेथर

देवता-मंदिर : अनंत बालूनाग-तांदी (संयुक्त लेख), गढ़वालू देऊ-सिधवां, गहरी देऊ-घाट, चलाहूणू जहल : जल देवता-चलाहण, छांजणू : घटोत्कच-धार घाट, त्रिपुर बाला सुन्दरी-बलागाड़ (संयुक्त लेख), दुधण देवी : दोग्धी-घाट, दुर्गा माता : बगाण दुर्गा-तरंगाली (संयुक्त लेख), देव छ़ोई-बेह्लो, देवी पजालक : पुजाली भगवती-पुजाली, नारायण-देऊ खोला, नारायण-बेह्लो, पाँज़वीर-बाल़ो, पाली नाग-मोहनी, भरयाड़ू देऊ-घाट, भूहणी देऊ : घटोत्कच- जवाहड़, भूहणी भगवती-घाट, भैरो : ठाहरो भैरो-बागी, भौइरा देऊ-बलागाड़, मार्कण्डेय-पेड़चा, मार्कण्डेय-बला, मार्कण्डेय-मंगलौर, रियालू नाग-मोहनी, वीर-लाहुंड, सराज़ी देऊ- बाल़ो।

4. **श्रीमती तारा नेगी,** गाँव बंजार

देवता-मंदिर : पज़हारी देऊ-भूमिहाँ, भंडप : विभांडक ऋषि-सोझा, भुमासी देऊ-अलवाह, मनु ऋषि-सुजाड़, लोमश ऋषि ढियो (संयुक्त लेख), शेषनाग : जिभी देऊ-जिभी (संयुक्त लेख)।

5. **श्री नीरत सिंह नेगी**, गाँव व डाकघर कोटला

देवता-मंदिर : आनणू देवता : महावीर-पढारनी, आयड़ू देवता-पढारनी, खरीड़ू देऊ-फगवाना, खुडी जह्ल-पढारनी, खोड़ू देऊ : कमरू नाग-चकुरठा, खोड़ू देऊ : महावीर-

फगवाना, जहूल देवता-कटौहड़ी, तोतला देवी-धाराखरी, दुर्गा माता : बगाण दुर्गा-तरंगाली, पटरूणू देऊ-कोटला, पटरूणू देऊ-फगवाना, पटरूणू देऊ- शलैऊड़ी, पराशर ऋषि-डोघर, पराशर ऋषि-लौल, पाँचवीर-नणौत, पाथरू देऊ : घटोत्कच-नणौत, बंगा देवता-चनौन, बुँगड़ू महादेव-चनौन, लक्ष्मी नारायण- कलवारी, लक्ष्मी नारायण-चेड़ा, शाँघड़ी देऊ-चनौन।

6. **श्री भगत राम धामी**, गाँव थाटी बीड़

देवता-मंदिर : वासुकी नाग-थाटी बीड़।

7. **श्री मोहर सिंह पुजारी**, गाँव बागी, डाकघर चैहणी

देवता-मंदिर : सकीरणी देऊ : शृंगा ऋषि-बागी।

8. **श्री शेर सिंह ठाकुर**, गाँव नगलाड़ी, डाकघर गुशैणी

देवता-मंदिर : कालीनाग-डिंगचा, खोड़ू देऊ-बंदल, गाड़ा दुर्गा-गोशैणी, गाड़ा दुर्गा-वंदल, चोरल देवता : शेषनाग-शिल्ह, चौरासी सिद्ध-घाट, छमाहूँ नाग-बड़ाग्राँ, छांजणू देऊ-लोहारडा, जमलू-शरची, नरसिंह-वाड़ीरोपा, पाँचवीर-चिपणी, बीमू नाग-वरींगचा, भरयाड़ू देऊ-पेखड़ी, रुद्रनाग-चनालड़ी, लक्ष्मी नारायण-चिपणी, लक्ष्मी नारायण-तिंदर, लक्ष्मी नारायण-फरयाड़ी, लोमश ऋषि-पेखड़ी, लोमश ऋषि-बशीर, शिरड़ू महावीर-चनालड़ी, शेषनाग : सरेऊली देऊ-शपनील, सनकीर देऊ-दारन, सनदेव-कनौण, सरीनाग- पेखड़ी।

9. **श्री सत्यदेव नेगी**, अध्यक्ष, कारदार संघ बाजार, डाकघर जिभी

देवता-मंदिर : शेषनाग : जिभी देऊ-जिभी (संयुक्त लेख)।

10. **डॉ. सूरत ठाकुर**, गाँव परगाणु, डाकघर भूंतर

देवता-मंदिर : ईश्वरी महादेव-पलाहच, करथ नाग-कंढ़ी, घटोत्कच-सिद्धमा, जगथम-बागी कशाड़ी, बूढ़ी नागण-घियागी, ब्रह्म विठ-शाक्टी, मनु ऋषि,-धारा देहुरा, मुरली मनोहर-चैहणी, लोमश ऋषि-ढियां (संयुक्त लेख), सकीरणी देऊ : शृंगा ऋषि-घियागी।

11. **श्री हिमत राम**, कारदार, गाँव व डाकघर तांदी

देवता-मंदिर : श्रीहरि लटोड़ा-तांदी।

सर्वेक्षक : सैंज खंड

1. **श्री इन्द्र दत्त कारदार**, गाँव धारा लपाहा, डाकघर मादान

   देवता-मंदिर : उषापुरी-लपाहा।

2. **श्री किशन सिंह वज़ीर,** गाँव व डाकघर ब्रेहिण

   देवता-मंदिर : आशापुरी-धलियारा, आहिड़ू महावीर-शऊल, कमला देवी-गोही, खोड़ू देऊ-छरौण, खोड़ू देऊ-रैला, जमलू-पाशी, थान देवता-भलाण, देवती-शियाऊगी, धामणी देवता : छमाहूँ नाग-धामण (संयुक्त लेख), निहारगड़-शरण, पाली नाग-शरण, बड़ा छमाहूँ-दलियाड़ा(संयुक्त लेख), बनशीरा-कनौण, बराधी वीर-तांदी भलाण, ब्रह्म देवता-कनौण, ब्रह्मलक्ष्मी-कछैणी, रघुनाथ-हुर्चा, रिशा गर्गाचार्य-खनारगी, रिशा गर्गाचार्य-रोट कंढा, रींगू नाग-भूपन, लक्ष्मी नारायण-धाऊगी, लक्ष्मी नारायण-भलाण, लक्ष्मी नारायण-रैला, शेषनाग-भलाण।

3. **श्री कृष्ण देव शर्मा कारदार**, गाँव पटाहरा, डाकघर दियोहरी

   देवता-मंदिर : पुंडीर ऋषि-दलोगी।

4. **श्री गिरधारी लाल शर्मा कारदार**, गाँव व डाकघर मादान

   देवता-मंदिर : शंगचूल महादेव-शाँघड़।

5. **श्री चुनीलाल कारदार**, गाँव थनैली, डाकघर बनोगी

   देवता-मंदिर : बराधी वीर-बनोगी।

6. **श्री ज्ञान चंद कारदार**, गाँव बरशाँघड़, डाकघर मादान

   देवता-मंदिर : सरूनाग-बरशाँघड़

7. **श्री डाबे राम कारदार**, गाँव खणीधार, डाकघर बनोगी

   देवता-मंदिर : रघुनाथ-खणीधार।

8. **श्री दुर्गादास कारदार**, गाँव रैंह, डाकघर बनोगी

   देवता-मंदिर : जनासर देऊ-रैंह।

9. **श्री नीरत सिंह नेगी,** गाँव व डाकघर कोटला

   देवता-मंदिर : धामणी देवता : छमाहूँ नाग-धामण (संयुक्त लेख), बड़ा छमाहूँ-दलियाड़ा (संयुक्त लेख)।

10. श्री परसराम कारदार, गाँव कौशा, डाकघर बनोगी

देवता-मंदिर : नवदुर्गा-पटाहरा।

11. श्री प्रीतम चंद कारदार, गाँव अप्पर सैंज, डाकघर सैंज

देवता-मंदिर : नैणा माता-सैंज।

12. श्री मोहर सिंह, गाँव सीस, डाकघर ठेला

देवता-मंदिर : गौतम ऋषि-मनिहार, च्यवन ऋषि-नजाँ, जमलू-उड़सू, जमलू-श्याह, जमलू-सीस, जमलू-हवाई, त्रिजुगी नारायण-दयार, नारद मुनि-नीणू, पंजवीर-कोटकंढ़ी, भृगु ऋषि-आशनी, मडासण माता-निंगणा, लक्ष्मी नारायण-जेष्टा।

13. श्री होतम सिंह पाल, गाँव थरास, डाकघर हुरला

देवता-मंदिर : अमल नारायण-नरौल, आशापुरी-माहून, कपिल मुनि-बशौणा, गर्गाचार्य सचाणी, दुर्वासा ऋषि-पालगी, मार्कण्डेय ऋषि-थरास, रघुनाथ-गड़सा, वीरनाथ-हुरला, श्यामा काली-दलासणी।

छायाकार : श्री गोपाल ठाकुर, गाँव खोड़ाआगे, डाकघर गड़सा, श्री होतम सिंह पाल, डॉ. सूरत ठाकुर, सर्वश्री शेर सिंह ठाकुर, नीरत सिंह नेगी, जगत सिंह मेहता, किशन सिंह वज़ीर, चेतन स्वरूप, सत्यदेव नेगी, हिमत राम, दुर्गादास कारदार, प्रीतम चंद, डाबेराम, श्रीमती तारा नेगी।

सर्वेक्षण संयोजन प्रभारी

रमेश जसरोटिया

अनुसंधान अधिकारी, हिमाचल अकादमी।

बंजार खंड

अनंत बालूनाग

गाँव : तांदी, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान एवं मंदिर : बाल़ो जंगल में।

भंडार : तांदी में साढ़े तीन मंज़िला।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित स्तंभों पर आधारित डेढ़ मंज़िल का यह मंदिर 18x27 फुट आकार का है। इसकी छत काष्ठ फलकों से आच्छादित है। मंदिर में उत्कीर्ण अभिलेखानुसार इसका ऊपरी आवरण वि.सं. 512 का है। कहते हैं कि मकड़ी द्वारा बनाए गए नक्शे के अनुसार इस मंदिर का निर्माण किया गया है। इसे बनाने में 12 वर्ष का समय लगा था। मंदिर निर्माण के लिए शहतीरें नीचे से ऊपर लाई जाती थीं और एक दिन में शहतीरें जितनी ऊँचाई पर लाकर रखी जातीं, देवकृपा से वे रातों-रात उतनी ही और ऊपर पहुँच जाती थीं।

शाखा मंदिर : गाँव गोहर, खूहण व खनेठी (ज़िला मंडी), तहसील बंजार की कोठी त्रिलोकपुर के गाँव बाहू तथा कोठी बुंगा के गाँव शौष में।

अधिकार क्षेत्र : ज़िला कुल्लू के फतेहपुर, त्रिलोकपुर व शिकारी के अतिरिक्त ज़िला मण्डी के डाहर व नारायण गढ़।

प्रबंध : कारदार, मेहता, गूर, पुजारी, पालसरा, कठियाला, जेलता तथा धामी की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता का पानी पिलाकर, देवरथ, लाड़ू, पांसे द्वारा। जनश्रुति है कि एक बार मेहतों के साथ कराड़ों का चेथर क्षेत्र के साऊखोल़ा गाँव के लऊं खेत की सीमा के लिए विवाद बढ़ा। इसके समाधान के लिए देवता अनंत बालूनाग का रथ बाजे-गाजे के साथ विवादवाले स्थान पर लाया गया। तब देवता ने छत्र से स्वयं सीमा खींच कर विवाद का हल किया।

पूजा : लोक रीति अनुसार गुग्गुल धूप, दीप, घंटी, शंख, चंवर आदि द्वारा प्रातः पूजा और सायं आरती होती है।

रथ : शीश पर टोप के ऊपर छत्र से शोभित खड़ा रथ। इसे कुल्लू के राजा मानसिंह ने सर्वप्रथम 1672 ई. में बनवाया था। तब इसमें अष्टधातु का एक और राजा द्वारा भेंट किए गए 'री' नामक धातु के सात मोहरे लगते थे।

मोहरे : कुल आठ। इनमें से सात स्वर्ण निर्मित और एक अष्टधातु का है।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की संक्रांति को देवता के बलराम अवतार की स्मृति में मंडी ज़िला के खनेठी गाँव में *गोप मेला* लगता है।

12 बैसाख तथा 12 आश्विन को बाल़ो गाँव के प्रवेशद्वार शुरू बेताल स्थान में उत्सव मनाया जाता है। पूर्वकाल में यह 13 दिनों तक फिर 3 दिनों तक और वर्तमान में एक दिन ही आयोजित किया जाता है।

ज्येष्ठ मास में जौ पकने पर कोठी शिकारी के गाँव चलाहण में *सुन्दर मलंग* नामक उत्सव मनाया जाता है।

श्रावण मास की शुक्ल चतुर्दशी को बाल़ो और गोहर दोनों मंदिरों में बलदेव-जन्मोत्सव मनाया जाता है। श्रावणी पूर्णिमा के दिन रथ को बाहर निकाल कर देव-कार्रवाई होती है। जन्मोत्सव के पाँचवें दिन लक्ष्मण

रेखा यानी *रेखा री जाच* होती है। इसमें सीता हरण का दृश्य द्रष्टव्य होता है। इस मास को नागों के पूजन का समीचीन समय माना जाता है। अतः खाबल के बागे गाँव में *शड़याच* नाम का महत्त्वपूर्ण उत्सव मनाया जाता है। इसे जेठी पांज़ो के नाम से भी जाना जाता है। बाहू हूम में गाये जाने वाले देव गीत 'मरहूयाकू' को सर्वप्रथम शड़याच उत्सव में ही गाया जाता है।

हर तीसरे वर्ष श्रावण मास की संक्रांति से 3 श्रावण तक शिल्ह शण्याच में देव कार्रवाई सम्पन्न की जाती है। इसमें लोकनृत्य भी होता है।

भाद्रपद मास की संक्रांति को देव सभास्थल घाट में *घाट जाच* नामक उत्सव होता है। यह उत्सव देवता द्वारा क्रूर ठाकुरों के शासन से मुक्ति दिलाने की स्मृति में मनाया जाता है। भाद्रपद मास की शुक्ल तृतीया को *बाहू हूम* होता है। इस दिन देवता के शाखा मंदिर बाहू में रात्रि जागरण होता है। वाद्य ध्वनि के साथ ऐतिहासिक गीत गाते हुए अनंत बालूनाग की गज़ बाहू मंदिर में लाई जाती है। चारों प्रहर मरहूयाकू नामक देवगीत गाया जाता है। इसमें देओ सराजी, बालूनाग, गढ़ शिकारी, बाल़ो हूम, ख़ावल के खमार, तांदी के मेहतों, पालसरा, ढाला आदि का विशेष उल्लेख किया जाता है। लोकश्रुति के अनुसार अनंत बालूनाग के रथ निर्माण से पूर्व बाहू हूम की परम्परा नहीं थी किन्तु जब कुल्लू नरेश मानसिंह ने रथ निर्माण किया तो अधिकार क्षेत्र की परिक्रमा को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ। रथ गाँव खाबल, चेथर, शिल्ह और शुरागी में गया तब गाँव बाहू वाले छीना-झपटी करके देवता की डाहुली (गज़) उठाकर अपने गाँव में लाए। तब से आज तक इस उत्सव का आयोजन बाहू में होता है। बाहू हूम के अगले दिन यानी भाद्रपद की शुक्ल चतुर्थी को देवता की गज़ बाहू से मूल मंदिर बाल़ो में लाई जाती है और पंचमी को *बाल़ो पांज़ो* के नाम से नाग पंचमी मनाई जाती है। भाद्रपद मास में ही तांदी गाँव में *तांदी जाच* का आयोजन होता है। प्रथम वर्ष यह भाद्रपद शुक्ल षष्ठी को व दूसरे वर्ष भाद्रशुक्ल नवमी को मनाई जाती है।

हर तीसरे वर्ष भाद्रपद की शुक्ल षष्ठी तथा सप्तमी को *बागी जाच* नाम से मेला लगता है। इसमें पुजाली भगवती भी शामिल होती है।

कार्तिक मास की अमावस्या को मंडी ज़िला के शुरागी नामक स्थान में अनंत बालूनाग के लक्ष्मण अवतार की स्मृति में दीपमाला पारंपरिक ढंग से मनाई जाती है।

मार्गशीर्ष मास की प्रतिपदा को चेथर में *दयाली* पर्व मनाया जाता है। इस दिन लंका पर चढ़ाई से पूर्व राम-लक्ष्मण और वानरों द्वारा किए गए युद्ध अभ्यास की स्मृति में देव-दानव संग्राम का रोमांचकारी दृश्य प्रदर्शित किया जाता है। इसी रात्रि को कंस की मल्लशाला में बलराम और असुरों के मध्य हुए युद्ध की याद में बल-परीक्षण द्वारा मल्लयुद्ध का अभिनय किया जाता है जिसे *मलहयाची* कहते हैं। मंडी ज़िला की उपतहसील बाली चौकी के गाँव बरखोल में हर तीसरे वर्ष मार्गशीर्ष की अमावस्या को *हूम* होता है। इस अवसर पर रात को पूरे बरखोल क्षेत्र की परिक्रमा की जाती है।

पौष व माघ मास में 'नरोल' में रहने के बाद जब फाल्गुन संक्रांति को देवता बाहर निकलता है तो गूर द्वारा वर्षफल सुनाया जाता है।

हर तीसरे वर्ष पुजाली से कोकी तक *फरिआउत* (फेरा) होता है। इसमें देवकार्रवाई के साथ-साथ लोकनृत्य भी होता है। इसी प्रकार प्रत्येक तीसरे वर्ष देवता को गोहर मंदिर में ले जाते हैं। वहाँ देव कार्यवाही होती है।

कुल्लू के राजा जगत सिंह के काल से प्रत्येक तीसरे वर्ष शिकारी गढ़ में *गढ़ के दान* की रस्म अदा की जाती है। पहले इसमें कुल्लू के राजा की उपस्थिति अनिवार्य होती थी लेकिन अब राजा के प्रतिनिधि के रूप में कोठी शिकारी का लंबरदार इसमें भाग लेता है। यह अपने साथ सराजी देव बाल़ो का एक निशान सेर साथ लाता है।

देवता का अधिकार क्षेत्र ज़िला कुल्लू के साथ-साथ ज़िला मंडी के सराज क्षेत्र में भी होने के कारण अनंत बालूनाग मंडी नरेश विजय सेन के काल सन् 1880

तक मंडी शिवरात्रि में शामिल होकर माधोराय से मिलन करते रहे हैं और आज भी मंडी ज़िला के शुरागी गाँव में देवता का *दीपमाला* नामक पर्व मनाया जाता है।

22-23 वर्ष के पश्चात् देवता ज़िला मंडी के बड़े देओ माने जाने वाले कमरूनाग की झील व मंदिर में जाकर देव कार्यवाही सम्पन्न करता है।

नई फसल के आने पर झुंगड़ नामक स्थान में बाजे-गाजे के साथ देवता को प्रथम भोग चढ़ाया जाता है। इसी प्रकार 12 टोल (परिवार) खावली व तांदी के महते अपने-अपने क्षेत्र में *सातू उत्सव* का आयोजन करते हैं। पुष्पमालाओं से सज्जित देव रथ को वाद्य धुन के साथ जौ के सत्तू का आहार भेंट करते हैं। देवता इसे स्वीकार करके अपने भक्तों को आशीर्वाद देता है।

किसी समय अनावृष्टि जनित दुर्भिक्ष से त्राण पाने के लिए कुल्लू के राजा मान सिंह ने अनंत बालूनाग की शरण ग्रहण की थी। जब देवता ने अनावृष्टि के संकट को दूर किया तो राजा ने देवरथ का निर्माण कर इसे 'री' धातु के सात मोहरे भेंट किए। 1672 ई. में बाहू में करुआ नामक महायज्ञ का आयोजन किया। इसके पश्चात् सन् 1942 में अनंत बालूनाग के सम्मान में पुनः बाहू में महायज्ञ सम्पन्न हुआ। बाहू की भाँति बला नामक शक्तिपीठ में भी देवता के सम्मान में इस उत्सव का आयोजन दीर्घ समय के पश्चात् किया जाता है।

पूर्व में प्रतिवर्ष निआह घरट के पास मंगलौरी मार्कण्डेय के साथ तथा टिप्परा में बुंगड़ू तथा मार्कण्डेय के साथ मेले होते थे। आज ये लुप्तप्राय हैं।

जनश्रुति : देव-भारथा के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में सती के देश (हिमालय पर्वत) में पौणी दौइंत रहता था। वह देवी-देवताओं को अनेक यातनाएँ देकर पीड़ित करता था। देवताओं का करुण क्रंदन सुनकर अनंत बालू नाग का सात पाताल में स्थित आसन हिला। तब वह गहरे सागर के भीतर बालू के विशाल टापू से सती के देश में पहुँचा और ढाई पल में ही दैत्य का संहार किया। उसके बाद उसने कांढे (पर्वत) पर अपना निवास बनाया और वहाँ जल सरोवर की उत्पत्ति की

सती रे देशे पौणी दौइंत थी
गारहु नाईं थी, हारहु नाईं थी, मारहु नाईं थी
देवते रौंदे कलांदे लागे, पताले मेरो आसन जाम्हु
पाथरा साई दिल थी मेरा चोपड़ा साई खुलदा लागा
हाअं साते पताला का निखतो सती रे देशे पूजो
ढाई पला मंजे पौणी दौइंता गाली ढाली बेठो
कांढे न्यास देई करी बेठो, पाणी रो डिभरू रझाई करी बेठो

देवता की कांढे से आगे बढ़ने की इच्छा हुई। तब वह हिमसु, मानसरोवर, भरमौर, पिंगलासर, विंगलासर, शेषधारा आदि अनेक स्थानों से होते हुए कमरूआह, शिकारी, जोगीपाथर, देओ कांढा, बलखोल खूहण, खनेठी से आगे बढ़ते हुए पावन व दिव्य स्थल बालो में पहुँचा। कहते हैं कि इस क्षेत्र में देवता सर्वप्रथम कांढी और अंत में तांदी स्थान पर पहुँचा। तांदी में मेहते का एक परिवार रहता था। मेहता ने सनुला से अपने घर के लिए लकड़ियाँ लानी थी। अतः वह गाँव में जुआरे (बेगार करने वाले) बुलाने गया था। तभी उसके आँगन में साधु के भेस में देवता आया और उसने भोजन की इच्छा व्यक्त की। मेहते की पत्नी ने संदेश भेज कर अपने पति को घर वापिस बुलाया। मेहता ने लकड़ी लाने के कार्यक्रम को स्थगित कर के घर पहुँचकर साधु की खूब सेवा शुश्रूषा की। साधु ने रात को वहीं विश्राम किया। प्रातः उठकर मेहता ने देखा कि उसके आँगन में लकड़ी के ढेर लगे थे और साधु गायब हो चुका था। मेहता दम्पती विस्मित था। उसी समय आकाशवाणी हुई हे मानव मैं आपके आतिथ्य से अति प्रसन्न हूँ और यहीं रहना चाहता हूँ। मुझे अपना वचन दो। मेहता ने पूछा तुम कौन हो। 'मैं अनंत नाग हूँ' देवता ने उत्तर दिया। मेहता ने पूछा तुम्हारा घर कहाँ है। देवता ने कहा

खार समुंद्र बालू ज़ंद्र
पाणी रो डौल मेरो घौर

अर्थात् मेरा घर अगाध समुद्र के मध्य बालू के विशाल टापू के ऊपर है। मेहता ने पुनः पूछा आपका क्या स्वरूप है।

देवता ने उत्तर दिया

मेरो घर गाड़ा पार गाड़ा उआर
भोसले विष्णु सिरे संसार

अर्थात् मेरा कोई अंत नहीं है फिर भी मेरी गोद में विष्णु और सिर के ऊपर पृथ्वी मंडल है। तब मेहता ने कहा तुम तो बालूनाग हो, चूँकि तुम्हारा समुद्र में बालू के बीच में निवास है और सिर पर पृथ्वी को धारण करने के कारण तुम शेषनाग हो। कहो, मैं आप की क्या सेवा करूँ? देवता ने कहा अनंत काल तक तुम्हें मेरी चाकरी करनी होगी। मैं तुम्हारे सकल मनोरथ पूर्ण करूँगा। मेरे हार-द्वार (अधिकार क्षेत्र) की पूर्ण व्यवस्था करना तुम्हारा दायित्व होगा। अतः मैं अपनी व्यवस्था की हाक-थमाक (बागडोर) तुम्हें देकर जाता हूँ। तुम आँखें बंद कर के बैठो। मेहता ने वैसा ही किया। देवता सर्प से पिंडी रूप में अवतरित हुआ और मेहता को आदेश दिया कि वह उसे बालो में ले जाकर मंदिर का निर्माण करे। मेहता ने देवाज्ञानुसार बालो में उसकी स्थापना की।

आनणू देवता : महावीर

गाँव : पढारनी, **तहसील** : बंजार।

मूल स्थान : किन्नौर।

मंदिर एवं भंडार : पढारनी।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से कोट शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर। इसकी तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। ढलवाँ छत पर स्लेट आच्छादित हैं। छत के शिखर पर 'कोर' लगा है।

अधिकार क्षेत्र : पढारनी गाँव तथा देवता बड़ा छमाहूँ का सारा क्षेत्र।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, पालसरा, कायथ, मधेऊलू और कठैला की समिति।

न्याय प्रणाली : देव रथ से, प्रश्न डाल कर, पासा फेंक कर।

पूजा : प्रतिदिन पंचोपचार विधि से। पौष संक्रांति से फाल्गुन संक्रांति तक देवता नरोल में रहता है। अतः उन दिनों पूजा नहीं होती।

रथ : चीमू-काष्ठ से बना खड़ा रथ जो बहुमूल्य वस्त्राभूषणों, मोहरों तथा छत्र से सज्जित है।

मोहरे : आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का, शेष पीतल के। मूल रूप में देवता लोहे की छड़ी में विराजित था, रथ-मोहरे बाद में बनाए गए।

मेले-त्योहार : 20 वैशाख को *बिरशू* तथा बड़ा छमाहूँ दलियाड़ा के हर मेले-त्योहार में उपस्थित होता है।

जनश्रुति : प्राचीनकाल में किन्नौर से कोई व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिए कुल्लू-बंजार की फाटी चकुरठा में आया। वहाँ पढारनी गाँव में उसने अपने इष्ट आनणू देवता की स्थापना की। फाटी चकुरठा में क्योंकि बड़ा छमाहूँ का आधिपत्य था, अतः आनणू देवता वहाँ उसका सहायक बनकर रहने लगा।

आयड़ू देवता

गाँव : पढारनी, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पढारनी।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से कोट शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का मधेऊल, जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है और शिखर पर 'कोर' स्थापित है।
शाखा मंदिर : पल्दी घाटी का कंडी गाँव।
अधिकार क्षेत्र : गाँव पढारनी, कंडी, पनिहार, सेहुली।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, अक्षत या लड्डू विधि से।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं।
रथ : खड़ा रथ, जिसके शिखर पर छत्र सुशोभित है।
मोहरे : आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का व सात पीतल के।
मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को देव छमाहूँ के फागली उत्सव में इसकी मुख्य भूमिका होती है।
जनश्रुति : आयड़ू देवता का मूल स्थान पढारनी गाँव है। जब देवता बड़ा छमाहूँ इस क्षेत्र में आया तो आयड़ू ने उसकी अधीनता स्वीकार की। इसे बड़ा छमाहूँ का विशेष दूत माना जाता है और साँकल के रूप में यह चौबीस घंटे उनकी हाज़िरी देता है। इस देवता को दो हार के लोग मानते हैं। यह छह महीने पढारनी गाँव में तथा छह महीने पल्दी घाटी के कंडी गाँव में रहता है।

ईश्वरी महादेव

गाँव : पलाहच, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पलाहच।
स्थापत्य : कोट शैली में काष्ठ-प्रस्तर से बना साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर, जिसकी दो ओर को ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है। इसी में भंडारी रहता है तथा तीसरी मंज़िल में रथ रखा जाता है।
शाखा मंदिर : गाँव जमद।
अधिकार क्षेत्र : गाँव पलाहच, जमद और जगाला।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर और पुजारी की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। केवल प्रत्येक मास की संक्रांति, अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन धूप-दीप से पूजा की जाती है।
रथ : छत्रयुक्त खड़ा रथ जिसे दो अर्गलाओं से उठाया जाता है।
मोहरे : आठ।
मेले-त्योहार : वैशाख मास में *बिरशू* का आयोजन, 4 भादों को पलाहच में बड़ा मेला लगता है, जिसमें आसपास के कई देवता सम्मिलित होते हैं।
जनश्रुति : किसी समय पलाहच गाँव में एक बावड़ी थी, जिससे लोग अपने उपयोग के लिए जल ले जाते थे। एक दिन कोई गाँववासी वहाँ जल भरने आया तो उसने

बावड़ी में से पिंडी के आकार के एक पत्थर को ऊपर उठते हुए देखा जो तत्काल ही अदृश्य हो गया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ परन्तु अपने मन का वहम समझकर उसने यह बात किसी को नहीं बताई। उसी रात स्वप्न में देवता ने उसे दर्शन देकर कहा कि मैं ईश्वरी महादेव हूँ और पिंडी रूप में बावड़ी में प्रकट हुआ हूँ। यदि गाँववासी मेरी पूजा-अर्चना करेंगे तो मैं हर प्रकार से उनका कल्याण करूँगा। उसने गाँववालों को अपना स्वप्न सुनाया तो सभी उस बावड़ी के पास पहुँचे और वहाँ पिंडी को देखकर उन्होंने उसे जल से बाहर निकाल कर बावड़ी के समीप ही उसकी स्थापना की और प्रतिदिन निष्ठा से उसकी पूजा-अर्चना करने लगे। जब लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण होने लगीं तो इसे देवता की कृपा समझकर उन्होंने उसके निमित्त मंदिर, रथ और मोहरों का निर्माण किया।

करथ नाग

गाँव : कंढी, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : करथ देहुरा।
मंदिर एवं भंडार : कंढी।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से पहाड़ी शैली में बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेट बिछे हैं। शिखर पर 'बदोर' लगा है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव कंढी, देहुरा, सेन्हुली।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी तथा कठियाला की पारम्परिक समिति।
न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : खड़ा रथ जिसके शीर्ष पर छत्र विद्यमान है।
मोहरे : आठ। सात स्वर्ण के तथा एक अष्टधातु का।
मेले-त्योहार : माघ मास के 2 प्रविष्टे को *फागली* उत्सव मनाया जाता है, जिसमें सौ के लगभग लोग मुखौटे पहनकर नृत्य करते हैं। ये मुखौटे भेखल की लकड़ी के होते हैं।
जनश्रुति : कंढी गाँव की कोई महिला अपने पशुओं को डणोला नामक स्थान पर चराने के लिए ले जाती थी। दिन के समय उसकी एक गाय समीप की झाड़ी के पीछे जाती और उसके थनों से दूध निकलने लगता। एक दिन महिला ने गाय को ऐसा करते देखा तो वह उसके पास गई और यह देखकर चकित रह गई कि उस दूध को एक नाग पी रहा था। साँप से डर कर उस महिला ने झाड़ी में आग लगा दी। जब झाड़ी पूरी तरह जलकर भस्म हो गई तो वहाँ एक पिंडी प्रकट हुई और साथ ही एक पानी का स्रोत फूट पड़ा। इस चमत्कार के बारे में जब गाँववालों को पता चला तो उन्होंने वहाँ मंदिर बनाकर उस पिंडी की पूजा आरम्भ की।

कालीनाग

गाँव : डिंगचा, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : मानसरोवर।
मंदिर : डिंगचा।
भंडार : गाँव झलेरी।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से बना साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर, जिसका प्रवेशद्वार धरातल मंज़िल में है। दूसरी मंज़िल में केवल अग्रभाग में एक खिड़की है। इसमें कोई बरामदा नहीं है। इस मंज़िल की कड़ियों पर तीसरी मंज़िल का आवरणमुक्त बरामदा आधारित है। छत स्लेटों से ढकी है और शिखर पर क्रोंशा लगा है।
शाखा मंदिर : तिंदर और धारा डीम।
अधिकार क्षेत्र : डिंगचा, झलेरी, खरुंगचा, काऊँचा, सीमगी, शीलिंगा, नोहांडा, लुढार पेखड़ी, बंदल, नाइणी, चिपणी, मशियार, झनियार, बरीगंचा, तिंदर।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में भंडारी, पुजारी, मेहता की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर, रथ, पगल़, हीठ (पर्ची), लाडू द्वारा।
पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।
रथ : अंगाह की लकड़ी का बना खड़ा रथ। इसके शीर्ष भाग में टोप पर रजत निर्मित छत्र सजा होता है।

मोहरे : चार रजत निर्मित तथा चार अष्टधातु के।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को *फागली,* बैसाख मास में *बशाखी मेला,* जिसमें ध्वजारोहण करते हैं, श्रावण मास में मेला लगता है।

जनश्रुति : यह देवता मानसरोवर से लाहुल स्पीति, रोहतांग दर्रा, दियार, कोटकंढी, कालीकंढे, शैंशर, शांघड़, शुमगा, करैकचा, गडूगड़ासण, वासु आदि स्थानों से होकर गाँव डिंगचा के खलट नामक स्थान में एक खेत में पहुँचा और यहाँ मोहरे का रूप धारण करके भूमि में समा गया। कुछ समय बाद किसी महिला को खेत में निराई करते हुए यह मोहरा मिला। उस महिला ने मोहरा घर लाकर इसे दूर्वा पर रख दिया और कहा कि यदि तुम देवता हो तो दूर्वा फैल जानी चाहिए और यदि राक्षस हो तो दूर्वा उड़ जानी चाहिए। यह कहकर वह स्वयं बावड़ी से पानी लाने चली गई। जब वह वापिस लौटी तो उसने देखा कि दूर्वा फैल गई थी। उसी रात महिला को स्वप्न हुआ कि वह मोहरा कालीनाग का है, जो गाँव में स्थापित होना चाहता है। तब लोगों ने मंदिर का निर्माण कर इसे पूजना आरंभ किया।

खरीड़ू देऊ

गाँव : फगवाना, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : खरीड़ कोड़ी नामक स्थान।

मंदिर एवं भंडार : फगवाना।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से बना तीन ओर से खुला मंदिर तथा कोट शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का मधेऊल, जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेटें आच्छादित हैं और शिखर पर क्रोंशा स्थापित है।

शाखा मंदिर : शमाड़ी तथा पढारनी गाँव में।

अधिकार क्षेत्र : फगवाना, पढारनी, शमाड़ी तथा कई अन्य गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, पालसरा, भंडारी, कायथ, कठैला और धामी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, पूछ डालकर, लड्डू और अक्षत से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पुजारी द्वारा जो राजपूत खानदान से है। कभी-कभी ब्राह्मण भी पूजा करता है।

रथ : चीमू नामक वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ जिसका निचला भाग सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजाया होता है। मध्यभाग में मोहरे स्थापित होते हैं और शीर्ष पर रजत-छत्र लगता है।

मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा अन्य चाँदी के।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को *फागली* उत्सव। इसके अतिरिक्त देवता बड़ा छमाहूँ के प्रत्येक मेले-त्योहार में खरीड़ू देऊ उपस्थित रहता है।

जनश्रुति : प्राचीन समय में कोठी बुंगा के गाँव कंडी की एक वृद्धा समीपस्थ जंगल में प्रतिदिन अपनी गायों को चराने के लिए ले जाती थी। वहीं डनोला नामक स्थान पर

दोपहर के समय उसकी एक गाय शिऊना की झाड़ी के पास खड़ी हो जाती। शाम को जब बुढ़िया उसे दूहने लगती तो उसके थन बिल्कुल खाली होते। एक दिन तंग आकर उसने गाय का पहरा देना शुरू किया। दिन के समय वह यह देख कर दंग रह गई कि जिस झाड़ी के पास गाय चुपचाप खड़ी है, उसके नीचे से सात नाग गाय का दूध पी रहे हैं। बुढ़िया ने क्रोध में आव देखा न ताव और झाड़ी में आग लगा दी, परन्तु आग के जलने से पहले ही वे सातों नाग उड़ कर अलग-अलग दिशा में चले गए और बुढ़िया को इस बात का एहसास भी न हुआ। उसने यह सोचकर कि कोई नाग बच न जाए, सारी झाड़ी को पूरी तरह से राख कर दिया और उस राख को एकत्र कर खरीड़ कोड़ी नामक स्थान में एक पेड़ के नीचे फेंक दिया। तभी वहाँ उसे एक देवता के दर्शन हुए और बुढ़िया ने उसका नाम खरीड़ू रख कर उससे वचन लिया कि वह उसके परिवार और वंश को कोई क्षति नहीं पहुँचाएगा। इसके बदले उसने प्रत्येक मास की संक्रांति और विशेष पर्वों पर उसके पास आने का वादा किया। देवता की शक्ति से प्रभावित होकर आस-पास के गाँवों में भी इसकी मान्यता बढ़ी और वहाँ इसके निमित्त मंदिर बनाए गए। इन्हीं में से एक मंदिर फगवाना में भी है। बाद में हारियान ने रथ और मोहरों का निर्माण भी किया। यह शक्तिशाली देवता लोगों की खोई हुई वस्तु ढूँढ निकालता है और यदि चोरी हो गई हो तो रात को सीटी बजाते हुए चोर के पास पहुँचकर वस्तु को वापिस करने के लिए बाध्य करता है। यदि चोर वस्तु न लौटाए तो दंड देता है। खरीड़ू देवता बड़ा छमाहूँ की चाकरी करता है और साँकल के रूप में वहाँ रहता है।

खुडी जहल

गाँव : पढारनी, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पढारनी।
स्थापत्य : देवता दलित वर्ग के किसी व्यक्ति के घर में रहता है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव पढारनी तथा शऊँला का दलित वर्ग।
न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, अक्षत और लड्डू विधि से, प्रश्न पूछकर।

पूजा : प्रतिदिन धूप-दीप से। केवल 'नरोल' के समय पूजा नहीं होती।
रथ : छत्र एवं सुंदर वस्त्राभूषण युक्त खड़ा रथ।
मोहरे : आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का तथा सात पीतल के।
मेले-त्योहार : देवता बड़े छमाहूँ का विशेष दूत होने के कारण यह उसके सभी मेले-त्योहारों में साथ रहता है। बारह वर्ष के अंतराल में जब छमाहूँ गढ़ यात्रा पर जाता है तो यह मुख्य भूमिका निभाता है।
जनश्रुति : यह देवता बड़ा छमाहूँ का सेवक है।

खोड़ू देऊ : कमरू नाग

गाँव : चकुरठा, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : मंडी ज़िला में एक ऊँचे स्थान पर स्थित कमरू झील।
मंदिर एवं भंडार : चकुरठा।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से बना एक मंज़िल का मंदिर, जिसकी चारों ओर को ढलानदार छत पर स्लेट बिछे हैं। शिखर पर 'कोर' स्थापित है।
अधिकार क्षेत्र : चकुरठा, खराल आदि गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी, मेहता व पालसरा की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, प्रश्न पूछ कर, लड्डू या पर्ची डाल कर।

पूजा : प्रातः की पूजा पुजारी द्वारा की जाती है और सायंकाल में मधेऊलू द्वारा आरती गाई जाती है। जब देवता 'नरोल' में हो तब पूजा नहीं होती।
रथ : खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर चाँदी का छत्र शोभित है।
मोहरे : कुल आठ, जिनमें मुख्य मोहरा अष्टधातु का है तथा शेष चाँदी के, जो रथ के चारों ओर सुशोभित होते हैं।
मेले-त्योहार : बड़ा छमाहूँ के सभी मेले-त्योहारों में सम्मिलित होता है। इसके अतिरिक्त *नाहुली* और *हूम* खोड़ू देऊ के त्योहार हैं।
जनश्रुति : कमरू नाग किसी समय अपने मूल स्थान कमरू झील से भ्रमण के लिए निकला और घूमते-घूमते चकुरठा फाटी के खोड़ू गाँव में पहुँचा। इस क्षेत्र में बड़े छमाहूँ का वर्चस्व था। कमरू उनके दरबार में जाकर उनका सहायक बन कर रहने लगा।

खोड़ू देऊ : महावीर

गाँव : फगवाना, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : रामपुर बुशैहर।
मंदिर : फगवाना।
भंडार : गाँव चकुरठा।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में बना एक मंज़िल का गर्भगृह युक्त मंदिर, काष्ठ स्तंभों पर आधारित जिसकी ढलवाँ छतें स्लेटों से आच्छादित हैं।
अधिकार क्षेत्र : गाँव हुरला, फगवाना, चकुरठा।
शाखा मंदिर : चकुरठा।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में उपप्रधान व सचिव की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, अक्षत और लड्डू विधि से, पूछ डाल कर।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं। प्रातः-पूजा पुजारी द्वारा की जाती है, जबकि शाम के समय आरती गूर द्वारा की जाती है।
रथ : खड़ा रथ, जिसके निचले भाग में सुन्दर वस्त्र, उससे

ऊपर मोहरे और शिखर पर सुनहरी टोप पर रजत निर्मित छत्र सुशोभित है।

मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का, अन्य चाँदी के।

मेले-त्योहार : *नाहुली, शाणनू हूम* और *फागली*। इसके अतिरिक्त देवता का *हवारी* नामक त्योहार प्रसिद्ध है, जिसमें देवता की ओर से लोगों को घी पिलाया जाता है।

जनश्रुति : खोड़ू देवता कदाचित् शिमला ज़िला के रामपुर बुशैहर क्षेत्र से किसी व्यक्ति के साथ उसकी कंठी में विराजित होकर फगवाना आया। यह स्थान देवता बड़ा छमाहूँ के अधिकार क्षेत्र में था। अतः उसने बड़ा छमाहूँ से अपने लिए स्थान माँगा। देवता ने उसे वहाँ रहने की अनुमति दे दी और वह बड़ा छमाहूँ की चाकरी करने लगा। तब खोड़ू देवता की स्थापना लोहे की शांगल (शृंखला) में की गई जो सदा बड़ा छमाहूँ के साथ रहती है। लोग इसे राम-भक्त हनुमान मानते हैं। जब खोड़ू देवता लोगों के कष्ट हरने लगा और भूत-प्रेत बाधा से छुटकारा दिलाने लगा तो कालांतर में उन्होंने उसके निमित्त अलग मंदिर और रथ-मोहरे बनाए।

खोड़ू देऊ

गाँव : बंदल, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : बंदल गाँव का रोलहा भंडार।

मंदिर एवं भंडार : बंदल।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से मेरु संयोजन शैली में बना ढाई मंज़िल का मंदिर, जिसकी छत पर स्लेटों का आच्छादन है। दूसरी मंज़िल में चौतरफा मेहराबदार बरामदा है। मंदिर के प्रवेशद्वार पर सुन्दर नक्काशी हुई है।

अधिकार क्षेत्र : तीन कोठी शर्ची, नुहांडा व तुंग।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी, दरोगा की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान है। प्रातः पंचोपचार विधि से पूजा और सायंकाल में आरती होती है।

रथ : अंगाह की लकड़ी का बना खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर छत्र तथा शेष भाग में सुन्दर वस्त्राभूषण सज्जित हैं।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : देवी गाड़ा दुर्गा बंदल के मेले-त्योहारों में सम्मिलित होता है। इसके अतिरिक्त उसके अपने सात मेले व दो त्योहार हैं।

जनश्रुति : देवता खोड़ू महादेव की उत्पत्ति रोलहा भंडार में स्थापित रंढग पाट से हुई मानी जाती है। वहाँ

Ghadbalu

से वह हँसा नामक स्थान पर गया और हँस कुंड व कालकुंड में एक मच्छर बनकर घुसा और गरुड़ के रूप में बाहर आया। वहाँ से वह गणेश बागा होते हुए सैंज खुडी पहुँचा और कुछ समय वहीं रहने के पश्चात् वह शिलेवासु, नुहांडा, आगशे थाच, गोरचं, घाट, रोपा, तिंदर होते हुए फरैडी गाँव में पहुँचा और वहाँ के एक क्षत्रिय से मित्रता की। तत्पश्चात् उसने झुटली और फिर बुसारी गाँव पहुँच कर भेखल वृक्ष को अपना निवास बनाया। कुछ काल बाद वह बंदल पहुँचा और चीमू वृक्ष में निवास किया। देवता जिस-जिस स्थान से गुज़रा वहाँ के लोगों को अपने चमत्कारों से प्रभावित किया और अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

गढ़वालू देऊ

गाँव : सिधवां, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : सिधवां।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर-सीमेंट से पहाड़ी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर, जिसकी दो ओर को ढलवाँ छत पर स्लेट बिछे हैं।

शाखा मंदिर : गाँव जोगणधार तथा कोठी।

अधिकार क्षेत्र : ढोरू रोपा से खुंदन पुल तक।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, कठियाला की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, पर्ची व लाडू डालकर तथा पासा फेंक कर।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप के साथ पुष्प व नैवेद्य भेंट करके शंख, घंटी तथा नरसिंगा की ध्वनि के बीच स्तोत्र गायन कर पूजा होती है।

रथ : खड़ा।

मोहरे : आठ। इनमें से सात मोहरे स्वर्ण निर्मित हैं और एक चाँदी का है।

मेले-त्योहार : 5 बैसाख को जोगिनी के मंदिर में देवता का मेला लगता है, भाद्रपद मास की संक्रांति की पूर्व रात्रि को *सिद्धो हूम* नाम से यज्ञ होता है, आश्विन मास
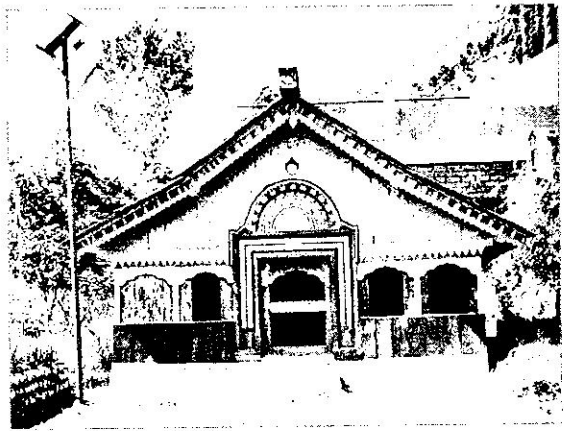
की संक्रांति को देव कार्रवाई होती है, पौष मास में गढ़वालू देऊ देवराज इंद्र की सभा में स्वर्गलोक चला जाता है और फाल्गुन संक्रांति को वापिस आकर मंदिर में प्रवेश करता है। गूर अभिमंत्रित सरसों व गोबर से दिग्वंधन करता है। बजंत्री फागुली का बाजा बजाते हैं और गूर ढाई फेरे नाचता है। इसके बाद गूर दौड़ता हुआ एक वृक्ष के पास जाता है और वहाँ कुछ देव-कार्रवाई निभाता है। इसके लिए गूर को महिला के शृंगार से सज्जित किया जाता है। मानते हैं कि किसी समय देवी भउण ने एक असुर को मार कर इस वृक्ष के पास धनुष रखा था। उसी की स्मृति में देवता द्वारा यह प्रक्रिया निभाई जाती है।

जनश्रुति : किसी समय सिधवां गाँव तथा आसपास के क्षेत्र में महामारी फैल गई थी। तब एक दिन गरेहड़ खानदान के हरज़ी नामक व्यक्ति ने हवा में उड़कर आती एक लकड़ी को गाँव के समीप एक चट्टान पर गिरते देखा। इससे चट्टान फटने पर वहाँ एक प्रस्तर प्रतिमा निकली। गाँव के लोग उस स्थल पर पहुँच कर अभी इसके बारे में चर्चा कर रहे थे कि हरज़ी में देव शक्ति का प्रवेश हुआ। उसने कहा कि वह गढ़वालू देव है और यहाँ फैली महामारी को दूर करने के लिए प्रकट हुआ है। तब लोगों ने देव रूप में प्रतिमा को स्थापित किया और हरज़ी को इसका गूर बनाया। इससे क्षेत्र में फैली महामारी समाप्त हो गई और सुख-शांति की वृद्धि हुई।

गहरी देऊ

गाँव : घाट, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : कुल्लू तहसील का थाच गाँव।
मंदिर एवं भंडार : घाट।
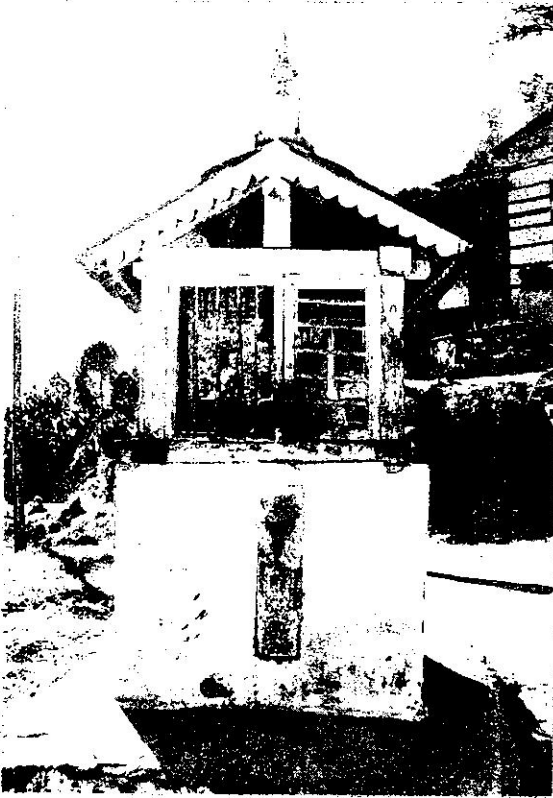
स्थापत्य : पाँच फुट वर्गाकार चबूतरे पर चार स्तम्भों पर खड़ा मंदिर, जिसकी दो ओर को ढलानदार छत स्लेटों से आच्छादित है। शिखर पर कलशयुक्त बदोर लगा है।
अधिकार क्षेत्र : घाट।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप जला कर।
रथ : नहीं है।
मोहरा : अष्टधातु का एक मोहरा मंदिर में स्थापित है।
मेले-त्योहार : अपना कोई मेला नहीं होता। देवता का गूर अनंत बालूनाग के हर मेले में हाज़री देता है।
जनश्रुति : देवता के सम्बंध में यहाँ एक कहावत प्रचलित है सराज़ा मंज़े सराज़ी, कुल्लू मंज़े गहरी अर्थात् सराज में सराज़ी देवता और कुल्लू में गहरी देवता सबसे प्राचीन माने जाते हैं। एक बार गहरी देवता कुल्लू छोड़कर किसी गड़रिये के साथ घाट पहुँचा। यहाँ देव शक्ति ने गड़रिये के शरीर में प्रवेश कर बताया कि वह अनंत बालूनाग गाँव तांदी की सेवा के लिए आया है और उसे घाट में स्थापित किया जाए। तब लोगों ने गाँव में मंदिर का निर्माण कर इसे पूजना आरम्भ किया।

गाड़ा दुर्गा

गाँव : गोशैणी, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : गाँव देथवा।
मंदिर एवं भंडार : गोशैणी।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी दो ओर को ढलानदार छत स्लेटों से ढकी है। शिखर पर 'कोर' लगा है। काष्ठ पर विष्णु के चौबीस अवतार, नाग, गणेश, फूल-बेल आदि उकेरे गए हैं। गर्भगृह में दुर्गा माँ की प्रस्तर की प्राचीनतम प्रतिमा स्थापित है।
शाखा मंदिर : बंदल, तिंदर, शरची।
अधिकार क्षेत्र : कोठी नोहांडा, शरची और तुंग।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर, रथ, लाडू, हीठ द्वारा।
पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से। शिवरात्रि की पूर्व रात्रि को विशेष पूजा होती है। कारदार, गूर, पुजारी व भंडारी इस दिन से तीन दिनों तक उपवास रखते हैं। शिवरात्रि से 15 दिन पूर्व से देवी के वाद्ययंत्र चारों प्रहर बजाए जाते हैं, लेकिन पूजा केवल प्रातः-सायं ही होती है। यहाँ देवी का प्रस्तर धड़छ है, जिससे विशेष अवसरों पर पूजा होती है।
रथ : नहीं है।

मेले-त्योहार : रथ न होने के कारण देवी कहीं नहीं जाती। इसके तथा देवी गाड़ा दुर्गा बंदल के मेले-त्योहार एक ही हैं।

जनश्रुति : किसी समय नोहांडा कोट में एक ठाकुर परिवार रहता था। वे पाँच भाई थे। इनमें से सबसे बड़े भाई की कोई संतान नहीं थी। वह वर्ष में दो बार आषाढ़ और मार्गशीर्ष मास में भगवान् आदि ब्रह्मा की पूजा करने हंस कुंड तीर्थ में जाया करता था। एक बार उसने वहाँ जाकर संतान प्राप्ति की प्रार्थना की। तब भगवान् के आशीर्वाद से उसकी दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं। ठाकुर ने उन कन्याओं का नाम जौ और सौ रखा और उनका लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से किया। एक बार प्राकृतिक आपदा के कारण उनका गाँव बाढ़ की चपेट में आ गया। इससे पूरा गाँव नष्ट हो गया, केवल ठाकुरों का परिवार बचा। तब ठाकुर उस स्थान को छोड़ कर अन्यत्र चले गए। उनमें से एक भाई तिंदर में, दूसरा सैंज देहुरी के दुसाहड़ गाँव में और तीसरा जमाला में जा बसा। चौथा भाई ब्राह्मण बन कर टिप्परी में रहने लगा और सबसे बड़ा भाई अपनी दो कन्याओं जौ और सौ के साथ देथवा के कोट नामक स्थान में रहने लगा। एक बार उसने अपना नया मकान बनाने के लिए शरची गाँव से मिस्त्री को बुलाया। मकान का काम पूरा होने पर ठाकुर ने मिस्त्री को इसके पारिश्रमिक स्वरूप कुछ लेने को कहा। मिस्त्री ने ठाकुर से उसकी बेटी जौ को माँगा। ठाकुर ने उसे अपनी बेटी सौंप कर अपना वचन निभाया। मिस्त्री जौ के साथ अपने घर की ओर चल पड़ा। सराहन नामक स्थान में पहुँचकर उन्हें एक साँप मिला, जिसने उनका मार्ग रोका। जौ ने मिस्त्री को पीछे धकेल कर तेगा निकाल कर उस साँप को मार दिया। वहाँ से वे बशलेऊ जोत होते हुए गोशैणी नामक स्थान में पहुँचे। यहाँ उन दोनों ने विश्राम किया और भोजन के लिए ठाकुर द्वारा दिए गए सत्तू निकाले। जौ भोजन करने से पूर्व पानी पीने के बहाने तीर्थन नदी की ओर चली गई और उसने नदी में छलाँग लगा दी। काफी देर तक जौ के न आने पर मिस्त्री उसे ढूँढने निकल पड़ा। उसे वह कहीं नज़र नहीं आई। तभी आकाशवाणी हुई कि मैं दुर्गा के रूप में अवतरित हुई हूँ। मेरा मंदिर गोशैणी में बनाया जाए। तब लोगों ने यहाँ मंदिर का निर्माण कर इसमें देवी की प्रस्तर प्रतिमा को स्थापित किया। इसे नदी यानी स्थानीय बोली गाड़ से उत्पन्न होने के कारण गाड़ा दुर्गा के नाम से पूजा जाने लगा।

गाड़ा दुर्गा

गाँव : बंदल, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : गाँव गोशैणी।

मंदिर एवं भंडार : बंदल।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर। तीसरी मंज़िल में मेहराबदार बरामदा है और छत स्लेटों से ढकी है। प्रवेश द्वार के सामने सिंह की प्रतिमा
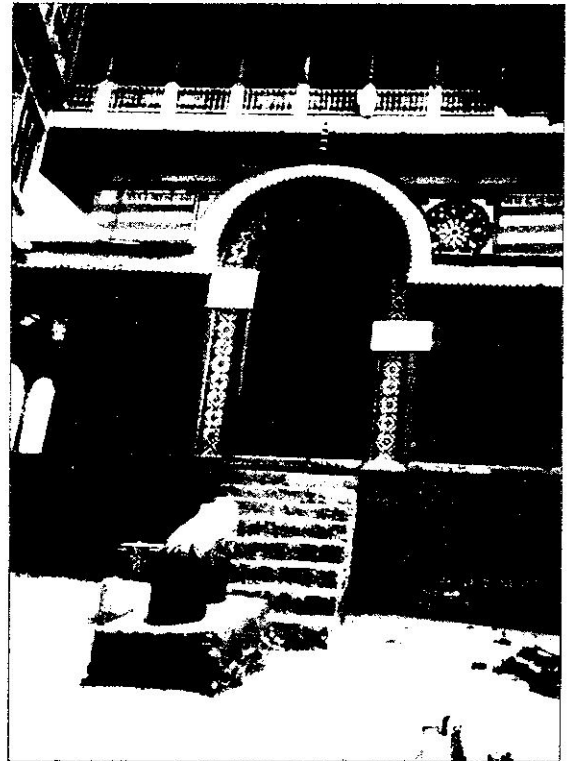
प्रतिष्ठित है। मंदिर में काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है।

शाखा मंदिर : गाँव शरची एवं तिंदर।

अधिकार क्षेत्र : शरची, नोहांडा व तुंग कोठियाँ।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी तथा दरोगों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर, लाड़ू, मरोहड़ी द्वारा।

पूजा : देवी द्वारा चयनित खठाणी खानदान का ब्राह्मण प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से पूजा करता है।

रथ : शिखर पर छत्र से शोभित खड़ा रथ।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : 5 वैसाख को गाँव शरची में *ध्वजा आरोहण,* 6-7 वैसाख को गाँव बंदल में मेला, 10 प्रविष्टे आश्विन को गोशैणी में एक दिवसीय मेला। बैसाख, आश्विन, भादों तथा फाल्गुन मास में देवी का रथ गाड़ा दुर्गा गोशैणी के मंदिर में आता है। यहाँ माँ का तीन कोठी के मुख्य देवताओं से मिलन होता है। इसमें देवी के अधिकार क्षेत्र तीनों कोठी के लोग शामिल होते हैं।

प्रतिवर्ष भादों मास की संक्रांति को यह देवी छोटे फेरे पर निकलती है। यह फेरा गाँव झुटली से शुरू होता है और फरयाड़ी, मणौणी, तिंदर, डिंगचा, खोड, नाही, पेखड़ी, छामणी तथा वाड़ीरोपा होते हुए अंत में नागणी जाच में खत्म होता है। काफी समय के बाद श्रावण मास में देवी का बड़ा फेरा होता है। यह फेरा बशीर, धारा, चैहणी, बिहार, सेरी, सरठी, सलौणू, सजवाड़, फरयाड़ी से बंदल तक होता है।

जनश्रुति : दे. गाड़ा दुर्गा गोशैणी की जनश्रुति। उक्त जनश्रुति के अनुसार गाड़ा दुर्गा की स्थापना गोशैणी में की गई। कालांतर में देवी की एक कला शलवाड़ नामक स्थान में प्रकट हुई। यहाँ दलित वर्ग का एक व्यक्ति खेत में काम कर रहा था। वहाँ उसे एक मोहरा मिला। वह मोहरे को अपनी झोली में डालता जाता लेकिन वह बार-बार बाहर निकलता। तभी आकाशवाणी हुई कि वह गाड़ा दुर्गा है। उसे मुँह के बाजे के साथ पहले गहीगाड़ तक पहुँचाया जाए फिर वहाँ से शरची के मुख्य पालसरे को आवाज़ लगा कर जेठा बाजा ढाखलू और भाणा मंगवाया जाए और उनकी ध्वनि के साथ उसे गाँव शरची ले जाया जाए। इस तरह गाड़ा दुर्गा को शरची पहुँचाया गया। इस स्थान में शेषनाग का शासन था। तब माता दुर्गा ने शेषनाग से आग्रह किया कि वह उसके लिए यह स्थान छोड़कर झुटली नामक स्थान में चला जाए और कहा कि उसके सभी देवकार्यों की देख-रेख शेषनाग ही करे। तब शरची में देवी की मान्यता हुई। इसकी पूजा के लिए बंदल से पुरोहित आते थे। कालांतर में देवी का मंदिर बंदल में ही बनाया गया और इसकी पूजा के लिए खडाणी नामक खानदान के ब्राह्मण को चुना गया। आज भी इसी खानदान के ब्राह्मण इसकी पूजा करते हैं।

घटोत्कच

गाँव : सिद्धमा, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान एवं मंदिर : सिद्धमा।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित कोट शैली का दो मंज़िला मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है और शिखर पर 'कोर' स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : सिद्धमा।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, कठियाला और कायथ की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं बेठर व गुग्गुल धूप से।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ जिसके शीर्ष पर छत्र शोभित है।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : ज्येष्ठ मास की संक्रांति से तीन दिन तक *बंजार मेला* लगता है। इसके अतिरिक्त देवता के आदेशानुसार *हूम* का आयोजन होता है।

जनश्रुति : कदाचित् सिद्धमा गाँव के गरेहड़ू खानदान के एक व्यक्ति को कभी एक कन्या हवा में उड़ती नज़र आई। तभी उसने देखा कि वह एक बड़ी शिला पर उतरी

और उतरते ही शिला दो भागों में विभक्त हो गई। चट्टान के फटने से एक मूर्ति प्रकट हुई। यह चमत्कार देखकर उसने गाँव के अन्य लोगों को भी वहाँ एकत्र कर लिया। जिसने कन्या को उड़ते देखा था उसे खेल आई और उसने कहा कि वह घटोत्कच है तथा यहाँ पर प्राकृतिक प्रकोपों से लोगों की रक्षा करने के लिए अवतरित हुआ है। तव लोगों ने उस स्थान पर उसे देवरूप में स्थापित किया।

चलाहणू जहूल : जल देवता

गाँव : चलाहण, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान एवं मंदिर : चलाहण।
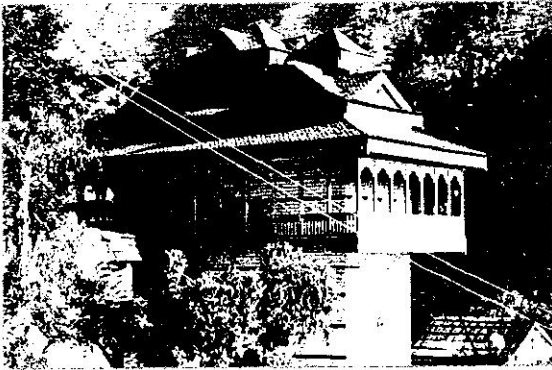
भंडार : थाच।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित कोट शैली का मंदिर जिसकी ऊपरी मंज़िल में चारों ओर को मेहराबदार वरामदा है। स्लेटों से ढकी छत कई खंडों में विभाजित है, जिनपर बदोर लगे हैं।
अधिकार क्षेत्र : केवल शिल्ह चलाहण। परन्तु अनंत वालूनाग का वज़ीर होने के कारण इसकी 5 गढ़ और 2 हार में मान्यता है।
प्रबंध : कारदार, गांठीदार, पुजारी, ग्रोगे, भंडारी, काईथ की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर, पूछ, लाडू, पांसे द्वारा।
पूजा : लोक रीति के अनुसार प्रातः पूजा और सायं आरती होती है।
रथ : देव वस्त्रों और मोहरों से सज्जित दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ।
मोहरे : कुल आठ। इनमें से सात स्वर्ण निर्मित तथा एक अष्टधातु का है।
मेले-त्योहार : श्रावण मास की संक्रांति से दो दिवसीय मेला, सात बैसाख को गोहर चेथर में अनंत बालूनाग के साथ मिलन। इसके अतिरिक्त अनंत बालूनाग की समस्त हार-यात्रा में इसकी गज़ शामिल होती है। बला मार्कण्डेय की यात्रा में भी गज़ साथ जाती है। मार्गशीर्ष की प्रतिपदा को *दियाली* उत्सव मनाया जाता है।
जनश्रुति : देवता ने बाह्य सराज के देहुरी नामक स्थान से राघुपुर, गुशैणी, दाड़ी, पलाहच, सैंज देहुरी, लाहुल, नग्गर, सुनारू, बरखोल, बछूट, बाहु, बालो, खमारड़ा, छांजणी, घाट, बगाण, बथोगी होते हुए चलाहण में देवता अनंत बालूनाग के क्षेत्र में पदार्पण कर उससे रात्रि ठहराव के लिए स्थान माँगा। बालूनाग ने इसे स्थान देने के लिए इनकार कर दिया। लेकिन जहूल देवता के पुनः आग्रह करने पर उसने उसे केवल एक रात के लिए पड़ाछे (खलियान) में रहने की इजाज़त दी। किन्तु प्रातः देवता ने पड़ाछा छोड़ने से मना कर दिया और बालूनाग से विनती की कि वह उसका वज़ीर बन कर यहीं रहेगा। अनंत बालूनाग इसके लिए राज़ी हो गया और शिल्ह चलाहण का क्षेत्र जहूल देवता को प्रदान किया किन्तु अपना प्रभुत्व बनाए रखा। अतः इसे बालूनाग के मुख्य पर्वों में सम्मिलित होकर अपनी उपस्थिति देनी होती है। आज भी जहूल देवता की डाहुली (गज़) के बिना बालूनाग अपने क्षेत्र से वाहर नहीं जाता।

चोरल देवता : शेषनाग

गाँव : शिल्ह, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : गाँव धराज।

मंदिर एवं भंडार : धरयाल।
भंडार : परवाड़ी।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से कोट शैली में निर्मित साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर, जिसकी तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। ढलवाँ छत पर स्लेट आच्छादित हैं और शिखर पर बदोर लगा है।
अधिकार क्षेत्र : शिल्ही फाटी के सभी गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी आदि की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : अंगाह की लकड़ी का खड़ा रथ जो स्वर्ण एवं रजत के आभूषणों से सज्जित होता है। शीर्ष पर छत्र रहता है।
मोहरे : आठ। इनमें से छह मोहरे स्वर्ण के तथा दो अष्टधातु के हैं।
मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में *फागली,* वैशाख में *बिरशू,* आषाढ़ मास में देवता की कुजी फूल से पूजा की जाती है और सभी हारियान भी जंगल से फूल लाकर देव मंदिर में चढ़ाते हैं। श्रावण में *रक्षाबंधन* मेला, मार्गशीर्ष में *दयाली* का आयोजन।

चौरासी सिद्ध

गाँव : घाट, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : घाट।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित कोट शैली का साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर, जिसकी तीसरी मंज़िल में चौतरफा आवरणयुक्त बरामदा है। ढलानदार छत स्लेटों से ढकी है और छत के शिखर पर बदोर स्थापित है।
शाखा मंदिर : टलींगा व नांही गाँव।
अधिकार क्षेत्र : पूरी कोठी नुहांडा।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, गोबर के लाडू डालकर, देवता के रथ से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : छत्रयुक्त शीर्षवाला खड़ा रथ जो स्वर्ण व रजत निर्मित आभूषणों से सज्जित होता है।
मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का है।
मेले-त्योहार : वैशाख मास में बिरशू, ज्येष्ठ मास में उत्सव का आयोजन, आषाढ़ में शाड़णू मेला, कार्तिक मास में दियाली, 10 प्रविष्टे असौज को बरेलंगा तथा फाल्गुन मास में फागली।
जनश्रुति : किसी युग में यह देवता स्वर्ग से धरती पर उतर आया। पहले यह डुलगा-पुलगा नामक स्थान में प्रकट हुआ। वहाँ से पटंत आया। यह झीथनु-बिथनु (बहुत छोटे कद के लोग) का देश था। यहाँ से हासणू नामक तीर्थ स्थल में पहुँचा, जहाँ गुरु-चेले में वचन हुआ। आगे गड़-गणासण में आकर सोने की देहुरी (छोटा मंदिर) और सरोवर के चारों ओर भेखल की बूटियाँ (छोटे पेड़) उगा आया और गोरचा पहुँच कर अठारह स्थानों में अठारह देहुरियाँ बना बैठा। वहाँ इसकी एक कला से तीन कलाएँ उत्पन्न हुईं। उनमें से एक कला घाट में प्रकट हुई और कालांतर में जब एक स्त्री नाले में पानी लाने गई तो उसे वहाँ अष्टधातु का एक मोहरा मिला, जिसे वह अपने घर ले आई। घर पहुँच कर उसने देखा कि उसके घर में अन्न के ढेर लगे हुए थे। उसी समय मोहरे ने स्त्री से कहा कि वह देवता चौरासी सिद्ध है। यदि वह उसकी सेवा करेगी तो वह उसका हर तरह से कल्याण करेगा।

छमाहूँ नाग

गाँव : बड़ाग्राँ, **तहसील** : बंजार।
मूल स्थान : दलियाड़ा।
मंदिर एवं भंडार : बड़ाग्राँ।
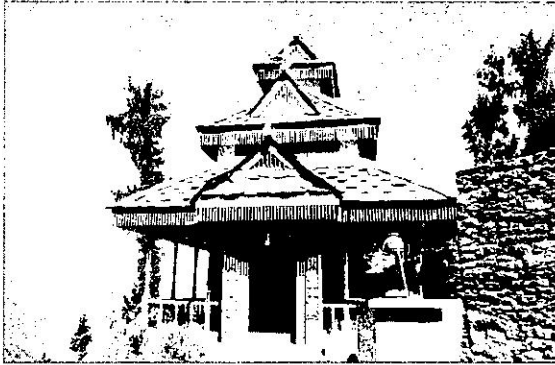
स्थापत्य : अठारहवीं शताब्दी में काष्ठ प्रस्तर से पैगोड़ा शैली में बना मंदिर, जिसकी ढलवाँ छतें स्लेटों से आच्छादित हैं। मंदिर के बाहर प्रदक्षिणापथ है। एक ओर शिवलिंग की स्थापना है।

शाखा मंदिर : कलिऊन, बूँग, सराजगढ़, मरूली तंद, जरुआले आरन, शलाईर, थाटी बीड़, मरऊड़।

अधिकार क्षेत्र : थाटी बीड़, सेउली फाटी, जऊरी फाटी, बड़ाग्राँ।

प्रबंध : दो कारदार तथा देवता की हार के चार परिवारों- दुमच, मधेऊलू, ठाकुर तथा कलिऊनू से एक-एक सदस्य।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से, इसके अतिरिक्त छोटी समस्याओं के समाधान के लिए देवता के सामने पासा फेंककर भी न्याय किया जाता है।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से पुजारी द्वारा पूजा की जाती है।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ जिसका शीर्ष भाग छत्रयुक्त है।

मोहरे : अष्टधातु निर्मित दस मोहरे। रथ में सामने की ओर चार तथा शेष तीन ओर दो-दो मोहरे सजाए जाते हैं। अग्र भाग में लगे चार मोहरों में से दो मोहरे करथनाग व वासुकी नाग के हैं। बुजुर्गों के कथनानुसार छमाहूँ नाग इन दोनों मोहरों के बिना किसी भी स्थान या मंदिर में प्रवेश नहीं करता।

मेले-त्योहार : फाल्गुन व चैत्र संक्रांति को *गढ़जात्रा,* आषाढ़ संक्रांति को *नाऊली मेला,* आश्विन संक्रांति को *शौयरी मेला*। प्रतिमास एक बार देवता का रथ अपने प्राकट्य स्थल दलियाड़ा अवश्य जाता है। जहाँ-जहाँ देवता के मंदिर हैं, वर्ष में सब मंदिरों में एक बार जाकर छमाहूँ नाग परिक्रमा करता है और उपस्थित जनों को देवता की ओर से भोजन कराया जाता है। कुछ वर्षों के अंतराल में छमाहूँ पराशर ऋषि और जगतसुख में जगती पौट की यात्रा करता है। वहाँ से लौटने पर कलिऊन के मंदिर में यज्ञ का आयोजन कर लोगों को भंडारा दिया जाता है।

जनश्रुति : छमाहूँ नाग को कुछ लोग शेषनाग तथा कुछ कार्तिक स्वामी मानते हैं। देवता का प्राकट्य दलियाड़ा नामक स्थान पर एक पिंडी के रूप में हुआ। वहाँ अपने चमत्कारों से देवता ने गाँववालों को प्रभावित किया तो उनकी देवता के प्रति आस्था बढ़ी और अन्य गाँवों में भी देवता की स्थापना हुई। एक बार वह घूमते हुए पौलधी घाटी पहुँचा जहाँ मार्कण्डेय ऋषि का अधिकार था। देवता ने अपना मंगलौर स्थित स्थान ऋषि को देते हुए उससे पौलधी घाटी प्राप्त कर ली और वहाँ के बड़ाग्राँ में अपनी मान्यता स्थापित की।

छांजणू : घटोत्कच

गाँव : धार घाट, **तहसील** : बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : धार घाट।

स्थापत्य : पाँच फुट वर्गाकार प्रस्तर के चबूतरे के ऊपर चार काष्ठ स्तम्भों पर आधारित छत वाला तीन ओर से खुला मंदिर। इसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है।

अधिकार क्षेत्र : धार घाट।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से पूजा व आरती।
रथ : दो अर्गलाओं से उठाया जानेवाला खड़ा रथ।
मोहरे : आठ।
जनश्रुति : देवता को भीम तथा हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच का प्रतिरूप माना जाता है। एक बार घाट गाँव के किसी व्यक्ति को छांजणी नामक स्थान में एक मोहरा मिला। उसने मोहरे को घर लाकर प्रातः-सायं उसकी नियमित पूजा करनी शुरू की। एक दिन देवता ने उसे स्वप्न में बताया कि वह हिडिम्बा पुत्र घटोत्कच है और उसकी स्थापना गाँव में की जाए। तव लोगों ने मंदिर का निर्माण करके देवता को छांजणी नामक स्थान से उत्पन्न होने के कारण छांजणू नाम से पूजना आरम्भ किया।

छांजणू देऊ

गाँव : लोहारडा, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : लोहारडा।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है।
अधिकार क्षेत्र : फाटी शरची व फाटी पेखड़ी के सभी गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, दरोगा, मेहता, जेलता आदि की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, रथ द्वारा, हिठ, परची और गोबर के लाडू बनाकर।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : छत्र व बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से युक्त खड़ा रथ।
मोहरे : आठ।
मेले-त्योहार : 10 प्रविष्टे माघ को देवता का *तुआर दिवस, फागली, बिरशू* तथा *शौयरी* आदि। इसके अतिरिक्त लोमश ऋषि, पेखड़ी के सभी मेले त्योहारों में उसके साथ रहता है।
जनश्रुति : किसी समय छामणीगढ़ का कोई व्यक्ति मंडी ज़िला में नमक लेने गया और वापसी में वहाँ के छाँजण गाड़ से एक पुष्प लाया। जब वह घर पहुँचा तो उस पुष्प ने चमत्कार दिखाने शुरू किए। यह देखकर उसने किसी गूर के पास पूछ डाली तो पता चला कि वह छांजणू देऊ है। उसे देवता जानकर उसने उसकी पूजा आरम्भ की। बाद में कारदार ने देवता के निमित्त मंदिर का निर्माण किया। नौ गढ़ों मुराहेगढ़, नीरूगढ़, यूजरी गढ़, बशगढ़, बागी थाच गढ़, मंगलौर गढ़, योच्छी गढ़, छांजणी गढ़ और छामणी गढ़ में इसका प्रभुत्व है।

जगथम

गाँव : बागी कशाड़ी, **तहसील :** वंजार।
मूल स्थान : गाँव बरशैणी।
मंदिर : बागी कशाड़ी।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से पहाड़ी शैली में बना डेढ़

मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है और शिखर पर बदोर स्थापित है।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी और कुठियाला की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है, केवल विशेष अवसरों पर ही बेठर धूप से पूजा होती है।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर छत्र सुशोभित है।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : आश्विन और मार्गशीर्ष की संक्रांतियों को देवता अपनी हार के हरेक घर में धूप ग्रहण करने जाता है।

जनश्रुति : देवता का मूलस्थान मणिकर्ण घाटी के बरशैणी गाँव में है। किसी समय बरशैणी की एक लड़की का विवाह बागी कशाड़ी गाँव में हुआ। जगथम उसका इष्ट देवता था, इसलिए वह अपने साथ उसका एक निशान ले आई और वहाँ उसकी पूजा करने लगी। कालांतर में देवता के चमत्कारों से प्रभावित होकर गाँव के अन्य लोगों ने भी उसे पूजना आरम्भ किया और मंदिर, रथ और मोहरों का निर्माण किया।

जमलू

गाँव : शरची, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : कुल्लू का मलाणा गाँव।

मंदिर एवं भंडार : शरची।

स्थापत्य : प्रस्तर निर्मित पैगोड़ा शैली का मंदिर।

अधिकार क्षेत्र : फाटी शरची के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर, पुजारी, लाडू तथा पगल द्वारा।

पूजा : प्रातः-सायं बेठर धूप से पूजा होती है।

रथ : नहीं है।

मेले-त्योहार : स्वेच्छा से यह कभी-कभी 'जोत' दौरे पर

जाता है और वापिस आकर *भाती* (भोज) दी जाती है।

जनश्रुति : यह देवता भूटान में तपस्या करने के बाद लाहौल-स्पीति, हामटा होते हुए मलाणा पहुँचा। उस समय मलाणा में एक राक्षस का शासन था। जमलू ने उस राक्षस को मारकर मलाणा में अपना आधिपत्य स्थापित किया। कुछ समय बाद यहाँ से जमलू देवता की एक कला कनाईल नामक स्थान में प्रकट हुई। तब कलवारी और पलाहच के लोग मलाणा गए और वहाँ जमलू देवता के नित-नियम पूछ कर वैसे ही नियम यहाँ पर लागू किए। जमलू देवता की स्थापना के बाद शरची गाँव का पालसरा खानदान का एक व्यक्ति हर नवरात्रे में कनाईल आकर डांढू नामक पुरोहित के साथ जमलू का पूजन करता था। एक बार इस पूजन के बाद यह देवता उन दोनों के साथ शरची आ गया। तब पालसरे ने शरची के लोगों को इकट्ठा करके जमलू देवता की स्थापना की और पूजा का कार्य अपने पास रखा। बाद में देवता ने थैवल खानदान के व्यक्ति को भी पूजा के लिए चुना और पूजा का अधिकार इन दोनों खानदानों को दिया।

जहल देवता

गाँव : कटौहड़ी, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कटौहड़ी।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से कोट शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का मधेऊल, जिसकी चारों ओर को ढलानदार छत पर स्लेटों का आच्छादन है। शिखर पर 'कोर' स्थापित है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव कोटला तथा कटौहड़ी।
न्याय प्रणाली : देवता से प्रश्न पूछ कर, पासा फेंककर।
पूजा : प्रतिदिन धूप से।
रथ : चीमू नामक वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ, जो सुन्दर वस्त्राभूषण एवं छत्र से सुसज्जित है। इसके चारों ओर मोहरे लगे हैं।
मोहरे : कुल आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का और सात चाँदी के।
मेले-त्योहार : आश्विन मास के सात प्रविष्टे को *शयरी* मेले का आयोजन।
जनश्रुति : यह कटौहड़ी गाँव के दलितों का इष्ट देवता है और इसकी उत्पत्ति इसी स्थान में हुई है। यह देवता बड़ा छमाहूँ का सहायक है।

तोतला देवी

गाँव : धाराखरी, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : नाऊली।
मंदिर एवं भंडार : धाराखरी।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित साढ़े तीन मंज़िल का मधेऊल, जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है। शिखर पर 'कोर' स्थापित है।
अधिकार क्षेत्र : फाटी कोटला-चकुरठा के समस्त गाँव।
न्याय प्रणाली : देवी द्वारा स्वयं या गूर के माध्यम से, प्रश्न या लाडू विधि से।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से। लेकिन जब देवी 'नरोल' में चली जाती है, तब पूजा नहीं होती।

रथ : खड़ा रथ, जिसके चारों ओर मोहरे सज्जित होते हैं। रथ का शिखर गुम्बदाकार है।
मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा सात रजत निर्मित। इनके अतिरिक्त एक मोहरा बड़ा छमाहूँ कोटला की कमर में हर पल रहता है। माता हमेशा अपने बड़े भाई छमाहूँ नाग के साथ विराजमान रहती है।
मेले-त्योहार : देवी बड़े छमाहूँ के सभी उत्सवों में देवता के साथ रहती है।
जनश्रुति : देवी का प्रादुर्भाव फाटी चकुरठा के नाऊली नामक स्थान में हुआ। वहाँ से वह फाटी कोटला में आई और देवता बड़ा छमाहूँ को अपना धर्मभाई बनाया। छमाहूँ ने देवी को धाराखरी गाँव में स्थान दिया। वहाँ वह लोगों को जादू-टोने और भूत बाधा से मुक्ति दिलाने के लिए प्रसिद्ध होकर उन द्वारा पूजी जाने लगी।

त्रिपुर बाला सुंदरी व मार्कण्डेय ऋषि

गाँव : बलागाड़, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान एवं मंदिर : बलागाड़।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर द्वारा पैगोड़ा शैली में निर्मित त्रिछतीय भव्य मंदिर के मुख्य द्वार पर बनी विभिन्न कलाकृतियों के आधार पर इसे लगभग 3000 वर्ष पूर्व का माना जाता है। यह त्रिपुरबाला सुन्दरी व मार्कण्डेय जी का संयुक्त मंदिर है। मंदिर के शिखर पर कलश स्थापित

1

2

3

4

5

6

9
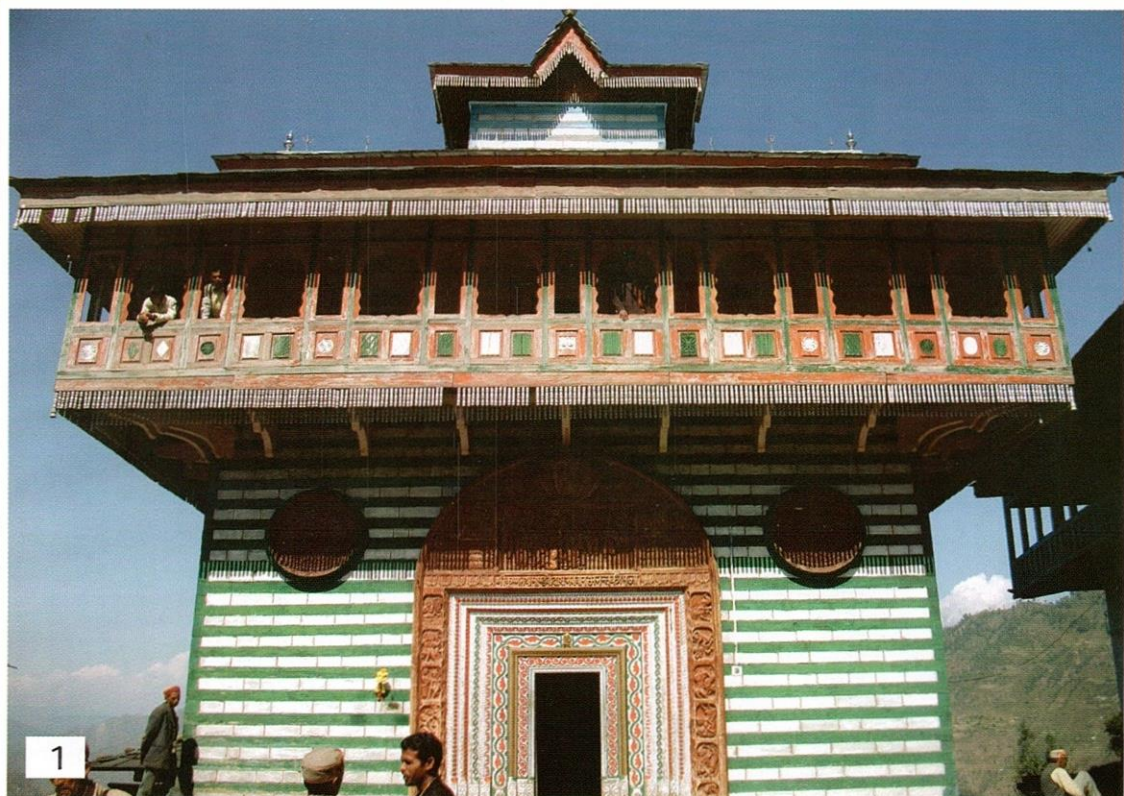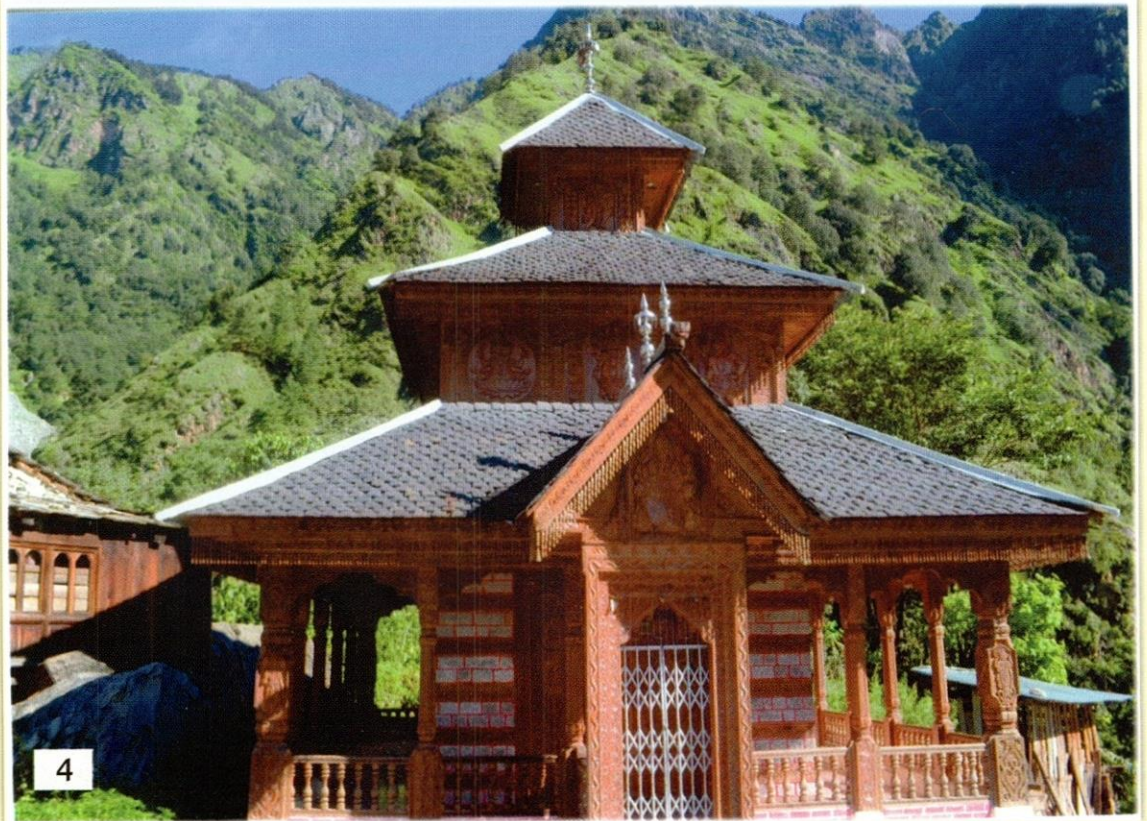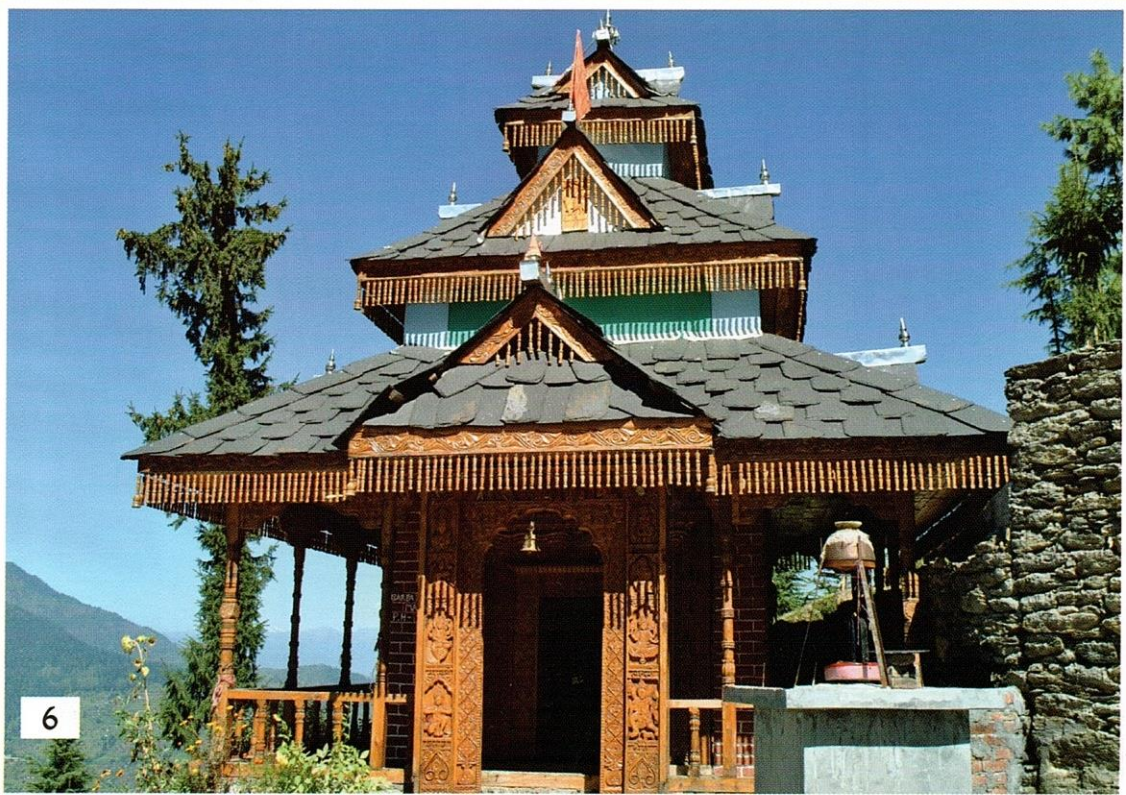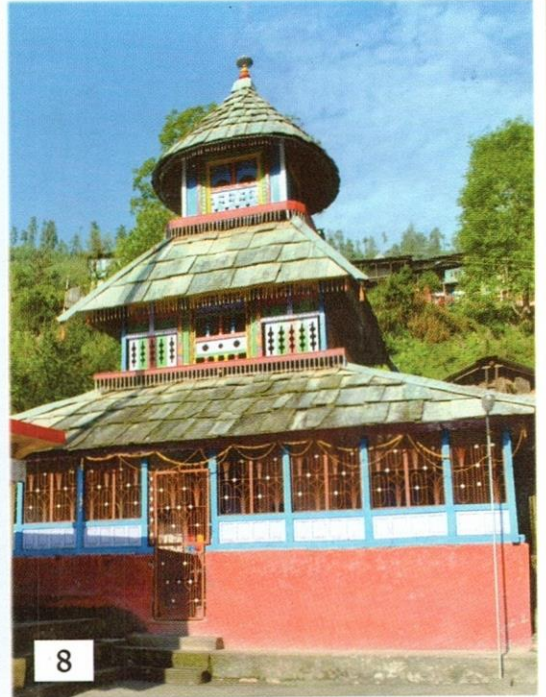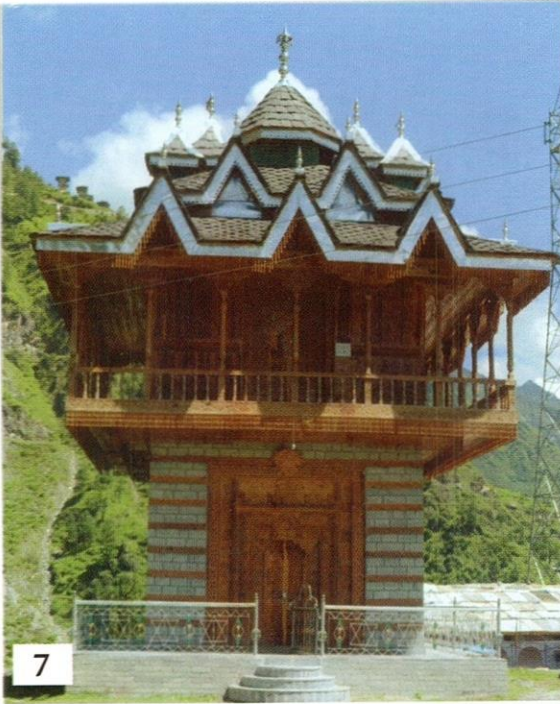
फोटो फीचर : 1

1. अनंत बालू नाग तांदी 2. तोतला देवी धाराखरी 3. बड़ा छमाहूँ दलियाड़ा (कोटला) 4. रींगू नाग भूपन 5. चलाहणू जह्ल : जल देवता चलाहण 6. छमाहूँ नाग बड़ाग्राँ 7. लक्ष्मी नारायण रैला 8. वीरनाथ हुरला 9. धामणी देवता : छमाहूँ नाग धामण
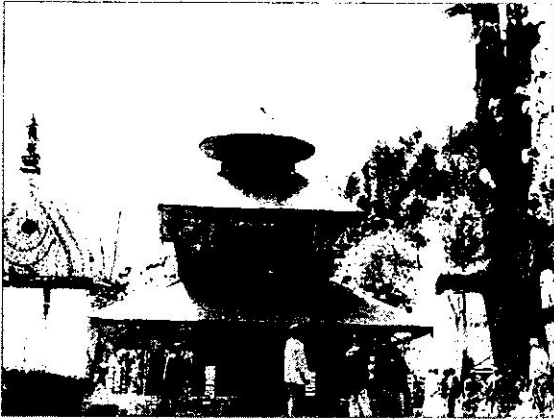
है। गर्भगृह में भगवान् शंकर का दिव्य लिंग स्थापित है। कहते हैं कि मंदिर बनाते समय इसका मुख्य द्वार पूर्व दिशा की ओर था परन्तु जब यह बनकर तैयार हुआ तो रातों-रात स्वयं घूमकर यह पश्चिम दिशा की ओर हो गया। 4 बीघा, 3 बिस्वा के क्षेत्रफल में फैले मंदिर परिसर में मुख्यमंदिर के दायें-बायें भाग में बने छोटे-छोटे मंदिरों में भगवान् शंकर, श्री गणेश तथा हनुमान जी की मूर्तियाँ स्थापित हैं।

शाखा मंदिर : बला, लाहुँड।

अधिकार क्षेत्र : बलागाड़ और बाहु पंचायतें। देवी-देवता के अधिकार क्षेत्र को चार 'बढ़' में विभाजित किया गया है, जिसे जेठा बढ़, उपरला बढ़, जिला बढ़ तथा ब्राह्मण बढ़ कहते हैं। इसमें लगभग 450 परिवार आते हैं, जो इनके देवकार्यों व पर्वों में सामूहिक रूप से देवपरम्परा व नियमों का निर्वहन करते हैं।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में भंडारी, काईथ, गांठीदार, दरोगा, बढ़ुकारदार व जेलता की समिति। कारदार के दिशा-निर्देशों के अनुसार देवकार्य का संचालन होता है। भंडारी के पास देवी-देवता के वस्त्राभूषण रहते हैं। काईथ देवकार्य, नियम एवं देवता की आमदनी इत्यादि का लेखा-जोखा रखता है। देवता की आमदनी गांठीदार के पास रहती है। दरोगे हारियान द्वारा चयनित किए जाते हैं। देवकार्य हेतु सामान खरीदना, खाद्यसामग्री का प्रबंध तथा बाँटने की व्यवस्था इनके ज़िम्मे होती है। बढु कारदार भी जनता द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। इनका कार्य अपने क्षेत्र से चंदा एकत्र करना, देवकार्य में सहयोग देना, देवता की जलेब हेतु वाद्यों की व्यवस्था तथा संदेशवाहक बनकर देव संदेश यथा स्थान पहुँचाना है।

न्याय प्रणाली : पासे द्वारा, गूर मुख से, लाडू और पर्ची डालकर। छोटी समस्याओं का समाधान देवता के सम्मुख पासा फेंककर किया जाता है। कुछ जटिल समस्याओं का समाधान देवता गूर द्वारा करता है। उस समय गूर में देवशक्ति का प्रवेश होता है और जो कुछ वह कहता है, वह सर्वमान्य होता है। अति जटिल समस्याओं का समाधान करने के लिये गोबर के लड्डू बनाकर, उनमें एक में जौ, दूसरे में फूल तथा तीसरे को खाली रखते हैं। फिर बैठे हुए देवरथ के सामने पाथे में उन लड्डुओं को घुमाकर उलटा कर देते हैं। प्रश्नानुसार जो लड्डू कतार से अलग निकलता है, उसी को देवता का निर्णय मानते हैं। यदि देवता का रथ अर्गलाओं पर उठाया हुआ हो तो तीन पर्चियों को प्रश्नानुसार लिख कर अलग-अलग स्थान पर छुपाते हैं और देवता स्वयं न्याय वाली पर्ची ढूँढकर न्याय करता है।

पूजा : पुजारी प्रतिदिन नित्य क्रिया के पश्चात् माँ का पंचामृत से स्नान करवाता है। फिर चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप-दीप एवं नैवेद्य अर्पण किया जाता है। उसके बाद शंख ध्वनि करते हुए मोरपंख और चंवर डुलाए जाते हैं। सायंकालीन आरती में धूप-दीप जलाया जाता है।

रथ : देवी तथा देवता दोनों के खड़े रथ हैं, जिन पर स्वर्ण-छत्र सुशोभित हैं।

मोहरे : दोनों के आठ-आठ मोहरे हैं। मुख्य मोहरे अष्टधातु के तथा अन्य स्वर्ण निर्मित हैं।

मेले-त्योहार : प्रतिवर्ष फाल्गुन मास की पूर्व संध्या पर माता बाला सुंदरी एवं मार्कण्डेय जी के प्राचीन मोहरों को करड़ू में सजाकर हारियान द्वारा कोठी से मंदिर तक लाया जाता है। मंदिर प्रांगण में पहुँचकर देवभारथा और बर्शोहा सुनाई जाती है। फाल्गुन 5 प्रविष्टे को माँ बाला सुंदरी का *विजयघोष* मेला मनाया जाता है। सजवाड़ क्षेत्र की 64 योगिनियों को जब पता चला कि त्रिपुर बाला सुंदरी

मार्कण्डेय ऋषि को बलागाड़ ले गई है तो उन्होंने ऋषि को वापिस लाने के प्रयत्न किए परन्तु उनकी योजना के विफल होने पर माँ की जीत की खुशी में यह मेला मनाया जाता है। वैशाख संक्रांति की पूर्व संध्या और रक्षाबंधन की पूर्व संध्या पर रात्रि के समय समूचे बलागाड़ क्षेत्र के बाल-वृद्ध व अनेक श्रद्धालु पूरी निष्ठा के साथ घर से हाथ में मशाल लिए मंदिर पहुँचते हैं, जहाँ देवी-देवता की पूजा होती है। रात भर जागरण होता है और प्रातः चार बजे लगभग 8 से 14 फुट लम्बी बनी मशाल को प्रज्वलित कर लोगों द्वारा समूचे बलागाड़ क्षेत्र की परिक्रमा की जाती है। तत्पश्चात् मंदिर प्रांगण में पहुँचकर जलती मशाल को अग्निकुंड में डाल दिया जाता है। वैशाख प्रविष्टे 2 से 10 तक *झीहरू* एवं *ठोहरू* मेले का आयोजन। 12 वैशाख को देवी तथा देवता गढ़ नामक स्थान पर बाजे-गाजे व हारियान के साथ जाते हैं तथा गढ़-मंदिर में पहुँचकर देवकार्यवाही और भंडारे का आयोजन होता है। इस स्थान से माँ और ऋषि ओलावृष्टि का निवारण करते हैं।

ज्येष्ठ मास के 2 प्रविष्टे को केवल मार्कण्डेय ऋषि पूरे हार-शृंगार और वाद्ययंत्रों सहित बंजार के शृंगा ऋषि से मिलने जाता है। इसे *मिलन मेला* बंजार के नाम से जाना जाता है। हर तीसरे वर्ष आषाढ़ मास में देवता अपनी प्राचीन तपःस्थली सजवाड़ नामक स्थान पर देवी के साथ जाता है। वहाँ एक विशाल चट्टान पर देवकार्यवाही होती है। लोगों का मानना है कि इस चित्रशिला पर बैठ कर ऋषि ने साठ वर्षों तक शिव जी की घोर तपस्या की थी, जिसके प्रभाव से यह दैविक चमत्कारों से युक्त है। हर तीसरे वर्ष श्रावण 7 प्रविष्टे को माँ अपने स्थान बलागाड़ से प्राचीन स्थान चैहणी जाती है। तदुपरांत घुराली नामक स्थान पर जाती है जहाँ माता का मंदिर व पिंडी विराजमान है। उसके बाद विहार नामक स्थान पर जाती है, जहाँ माता का प्राचीन मोहरा है। वहाँ पर देवी की कार्यवाही होती है।

रक्षाबंधन से भाद्रपद जन्माष्टमी तक दोनों पूरे हार-शृंगार के साथ अपनी हार में जाते हैं, जहाँ मेलों का आयोजन होता है। इन्हें *फेरा-री-जाच* के नाम से जाना जाता है।

जनश्रुति : शंकर की कृपा से मार्कण्डेय ऋषि का जन्म भृगुकुल में मृकंडु ऋषि के घर हुआ। दैववश बालक की आयु सोलह वर्ष की थी और आयु की समाप्ति पर जब काल उसे लेने आया तो बालक मार्कण्डेय शिवलिंग से लिपट गया। लिंग में से शंकर प्रकट हुए और काल को पीछे हटाकर मार्कण्डेय को दीर्घायु का वरदान दिया। इसके बाद उसने शंकर की घोर तपस्या कर सात कल्पों तक की आयु पाई।

कलिकाल में लोकानुग्रह के निमित्त ब्रह्मा जी से आज्ञा पा कर मार्कण्डेय भूमंडल पर काशी क्षेत्र में अवतरित हुए। तपस्या के लिए उपयुक्त स्थान खोजते हुए मार्कण्डेय भरमौर होते हुए लाहुल पहुँचे और त्रिलोकीनाथ नामक स्थान पर भगवान् शिव की स्थापना की। वहाँ से कुल्लू घाटी को पार करते हुए वर्तमान थरास नामक स्थान पर विराजमान हुए। कुछ काल बाद वहाँ से सराज क्षेत्र के बलागाड़ नामक स्थान में आए। यहाँ देवी पार्वती ने एक दिव्य शिवलिंग की स्थापना कर बाल्यावस्था से ही शंकर भगवान् को वर रूप में प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या की थी। देवी का यही बाल रूप यहाँ त्रिपुर बालासुंदरी के नाम से विख्यात हुआ। बलागाड़ में अपने आराध्य देव भगवान् शंकर के दिव्य लिंग को देखकर मार्कण्डेय आत्मविभोर हो उठे। उसकी परिक्रमा करते ही मार्कण्डेय की प्रमुख कला अन्य चार कलाओं में विभक्त हो गई और उनमें से प्रमुख कला बंजार से लगभग 25 कि.मी. दूर सजवाड़ के गिरिगढ़ में प्रकट होकर एक चट्टान पर बैठ तपस्या में लीन हो गई। उधर त्रिपुर बाला सुंदरी मार्कण्डेय के साथ घनिष्ठ सम्बंध होने के कारण बलागाड़ में व्याकुल रहने लगी और एक दिन सजवाड़ के किसी कुलीन ब्राह्मण परिवार में स्त्री-रूप में अवतरित होकर वहाँ ध्यान-मग्न मार्कण्डेय को अपनी शक्ति से बलागाड़ ले आई। ऋषि की सेवा में तत्पर चौंसठ योगिनियों को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने महर्षि को वापिस

लाने की योजना बनाई। उन्होंने स्त्रियों का रूप बनाकर सुन्दर वस्त्रालंकार धारण किए और बलागाड़ मेले में आ पहुँचीं। वहाँ देवी को अपनी शक्ति से उनके आने का पता चल गया। देवी का आदेश पाकर गणेश जी ने मूषक रूप धारण कर मेले में बैठी उन स्त्रियों के घाघरे कुतर दिए। मेला समाप्त होने पर जब वे मार्कण्डेय जी को ले जाने के लिए उठीं तो कुतरी हुई जगह से घाघरे शरीर से नीचे गिर गए और अपने नग्न शरीर का प्रदर्शन हुआ जानकर सभी योगिनियाँ मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं और उनकी मार्कण्डेय ऋषि को सजवाड़ ले जाने की योजना विफल हो गई। तब से मार्कण्डेय ऋषि यहीं बलागाड़ में भगवती त्रिपुर बाला सुंदरी के साथ संयुक्त मंदिर में विराजमान है।

दुधण देवी : दोग्धी

गाँव : घाट, **तहसील :** बंजार।
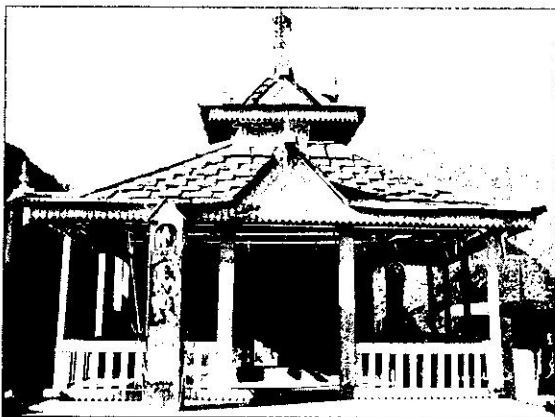
मूल स्थान : शिल्ह क्षेत्र के आलीगाड़ नामक स्थान में।
मंदिर : घाट।
भंडार : घाट में कोट शैली का, जिसमें देवरथ रहता है।
स्थापत्य : कंकरीट से बना एक मंज़िल का मंदिर है।
अधिकार क्षेत्र : केवल घाट क्षेत्र।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में भंडारी, गूर, पुजारी की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।
रथ : खड़ा रथ, जिसे दो अर्गलाओं की सहायता से उठाया जाता है।
मोहरे : आठ।
मेले-त्योहार : अपना कोई मेला नहीं होता।
जनश्रुति : यह देवी सप्तमातृकाओं में से सबसे छोटी देवी मानी जाती है। समस्त विश्व को अपना दूध पिलाने वाली यह देवी विश्वपालिका के रूप में पूजी जाती है। देवी ने सर्वप्रथम आलीगाड़ में पहुँच कर अपना स्थान अधिग्रहण किया और वहाँ से घाट पहुँच कर लोगों को दृष्टांत देकर अपने निवास की इच्छा प्रकट की। तब लोगों ने वहाँ इसे पूजना आरम्भ किया।

दुर्गा माता : बगाण दुर्गा

गाँव : तरंगाली, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : गाँव बगाण।
मंदिर एवं भंडार : तरंगाली।
स्थापत्य : पहाड़ी शैली का डेढ़ मंज़िल का मंदिर काष्ठ-प्रस्तर निर्मित है। इसकी ढलानदार छत पर स्लेट आच्छादित हैं और शिखर पर क्रोंशा स्थापित है।
अधिकार क्षेत्र : बगाण, तरंगाली गाँव।
प्रबंध : कारदार, गूर, भंडारी, पालसरा, कठियाला, काईथ, जेलता की समिति।
न्याय प्रणाली : रथ द्वारा, पर्ची डालकर, पासा फेंक कर, गोबर के लड्डू बना कर।
पूजा : प्रातः पंचोपचार विधि से पूजा होती है तथा सायं घी या तेल का दीपक जला कर आरती की जाती है। आरती में नरसिंघा, शंख, घंटी, चंवर व मोर मुट्ठे का प्रयोग होता है।
रथ : शिखर पर मंडपवाला खड़ा रथ जो वस्त्राभूषणों से सज्जित रहता है और चारों ओर मोहरे सजाए जाते हैं।

मोहरे : आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का तथा सात चाँदी के।

मेले-त्योहार : बैसाख संक्रांति, भ्याली जाच, वगाण मेला, श्रावण संक्रांति तथा तरंगाली हूम।

जनश्रुति : किसी समय बुँगड़ महादेव गोशाला को तंग करने के उद्देश्य से काले नाग ने महादेव के मंदिर में पत्थर फेंका। तब दुर्गा माता ने कन्या का रूप धारण करके बुंगड़ू महादेव को अपना धर्म भाई बना कर उसकी सहायता करनी चाही और झाड़ू व फंगड़ (अंजीर की प्रजाति का एक पेड़) की टहनी से लगभग एक हज़ार टन का पत्थर नाले के दूसरी ओर काले नाग पर फेंक कर उसका वध किया। यह पत्थर आज भी वहाँ विद्यमान है, जिस पर फंगड़े की डाली व उतना ही घास उगा है, जिससे एक झाड़ू बन सकता है। इस उपकार के बदले में बुँगड़ू महादेव ने दुर्गा माता को तरंगाली व बगाण का क्षेत्र दिया और यह लोगों द्वारा पूजी जाने लगी।

देव छोई

गाँव : बेहलो, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान एवं मंदिर : बेहलो।

भंडार : गूर के घर में।

स्थापत्य : आरम्भ में साँकल रूप में पूजा जाता था। अब लोगों ने छोटे से मंदिर का निर्माण किया है।

अधिकार क्षेत्र : बेहलो नारायण का सेवक होने के कारण पूरी बलागाड़ फाटी में इसकी मान्यता है।

प्रबंध : कारदार, भंडारी, काईथ, गांठीदार, गूर व पुजारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः पूजा तथा सायं आरती होती है।

रथ : पहले साँकल रूप में पूजा जाता था। अब खड़े रथ का निर्माण किया गया है, जो देव वस्त्रों व मोहरों से सजा होता है।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : बेहलो नारायण के सभी मेले-त्योहारों में सम्मिलित होता है।

जनश्रुति : बेहलो नारायण के साथ सेवक के रूप में रहता है।

देवी पजालक : पुजाली भगवती

गाँव : पुजाली, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान एवं मंदिर : पुजाली।

भंडार : गाँव थोगी में कोट शैली का।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से कोट एवं पैगोड़ा शैली में बना मंदिर, जिसकी तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। इसकी चारों ओर की ढलवाँ छतें स्लेटों से आच्छादित हैं, जिनके किनारे लकड़ी की झालरें लगी हैं। मंदिर के प्रवेशद्वार पर सुन्दर नक्काशी हुई है।

शाखा मंदिर : फागुधार घाट में वर्ष 2011 में मंदिर बनाया गया।
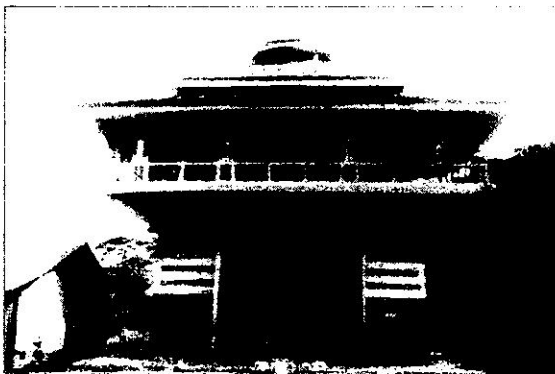
अधिकार क्षेत्र : फाटी खाबल सालम।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, काईथ, कठियाला, भंडारी की समिति।

न्याय प्रणाली : रथ द्वारा पर्ची को स्पर्श कर, लाड़ू, गूर तथा पांसा से।

पूजा : प्रातः-सायं गुग्गुल धूप द्वारा पूजा तथा घी या तेल के दीपक से आरती की जाती है। आरती में घंटी, धड़छ, शंख, मोरमुट्ठा, चंवर, नरसिंघा का प्रयोग होता है।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ, जिसमें मोहरे तथा रंग-बिरंगे देव वस्त्र सजे होते हैं।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : 12 बैसाख को पुजाली *हूम*। देवी तांदी व बागी के फरिआउत मेले में भी शामिल होती है।

जनश्रुति : पुजाली गाँव का दोघरू ब्राह्मण एक बार नमक लाने के लिए द्रंग गया। वापसी में महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति उसके किलटे में बैठ गई। इससे उसका नमक का किलटा बहुत हलका हो गया और वह अपने साथियों में सबसे आगे निकल गया। थोगी दोघरी पहुँच कर जब उसने आराम किया तो आकाशवाणी हुई कि उसके किलटे में देवी आई है, लोगों के कल्याण के लिए उसकी यहाँ स्थापना की जाए। दोघरू ब्राह्मण ने तुरंत किलटा उलटा कर देखा तो उसमें से महिषासुर मर्दिनी की विशाल मूर्ति निकली। तब लोगों ने थोगी में भंडार का निर्माण करके गाँव पुजाली में मंदिर बनाया और वहाँ मूर्ति की स्थापना कर उसे पूजना आरम्भ किया।

नरसिंह

गाँव : वाड़ी रोपा, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : वाड़ी रोपा।

स्थापत्य : कंकरीट से बना लघु मंदिर।

शाखा मंदिर : गाँव बारशीधार, चनालड़ी, हामणी, मुंगला।

अधिकार क्षेत्र : चनालड़ी, मुंगला, नगलाड़ी, दुर्गापुर, भड़याच, बारशीधार, हामणी।

प्रबंध : देवता द्वारा चयनित कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी व अन्य कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।

रथ : शीर्ष पर स्वर्ण छत्र से युक्त करड़ू।

मोहरे : तीन।

मेले-त्योहार : बैसाख मास की संक्रांति से तीन दिन पूर्व तथा ज्येष्ठमास में जब देवी गाड़ा दुर्गा यहाँ आती है तो पर्व मनाया जाता है।

जनश्रुति : यह देवता इंद्रप्रस्थ से कुल्लू पहुँचा और सुलतानपुर राजमहल में प्रकट होकर राजगुरु बना। कुल्लू में स्थान प्राप्त करने के बाद यह लाहौल-स्पीति, चम्बा, किन्नर कैलास, श्रीखंड होते हुए पुनः कुल्लू ज़िला की तीर्थन घाटी के ऐतिहासिक स्थल तुंग गढ़ गया। वहाँ हंस कुंड तीर्थ में तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं, चौंसठ योगिनियों और बावन वीरों से वार्ता के पश्चात् गोशैणी में पहुँच कर इसने देवी गाड़ा दुर्गा बंदल से भेंट की, फिर शाम को बारशीधार नामक स्थान में विश्राम किया। वहाँ से वाड़ीरोपा क्षेत्र में म्लेच्छों द्वारा पीड़ित लोगों का हालचाल जानने के लिए गाँव के पीछे एक गुफा में महात्मा के रूप में प्रकट हुआ। प्रातः जब किसी व्यक्ति ने महात्मा को गुफा में देखा तो उसने उसका परिचय पूछा। महात्मा ने बताया कि वह म्लेच्छों के विनाश के लिए भ्रमण पर निकला है। तब उस व्यक्ति ने महात्मा को कहा कि हामणी नामक स्थान में हामणाक्ष नाम का म्लेच्छ मुंगला से नगलाड़ी तक के क्षेत्र के लोगों को आतंकित करता है। यह सुनकर
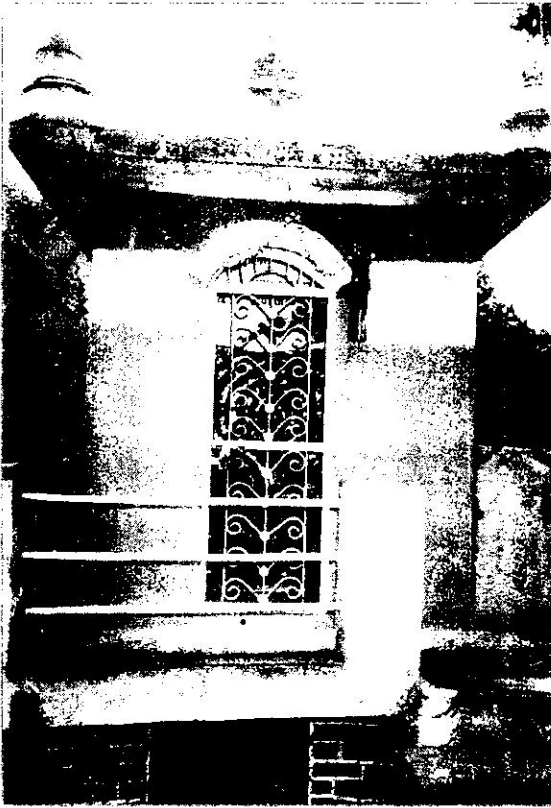
महात्मा वहाँ से अदृश्य होकर साधु रूप में हामणी पहुँचा। वहाँ हामणाक्ष दैत्य से मिला और उससे वार्तालाप किया। दैत्य अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए कभी तालाब में लुप्त हो जाता तो कभी तालाब से बाहर निकल कर अनेक चमत्कार दिखाता। साधु भेसधारी नरसिंह यह सब देखता रहा। जब शाम हुई तो उसने अपना उग्र रूप धारण किया और अपने त्रिशूल से तालाब के पीछे की पहाड़ी को गिरा कर तालाब बंद कर दिया। तब जैसे ही दैत्य वहाँ से भागने लगा वैसे ही नरसिंह ने उसे पकड़ कर अपने नाखूनों से उसका वध कर दिया। उसके पश्चात् साधु पुनः गुफा में आया और गाँववासियों को आवाज़ लगा कर बताया कि उसने हामणाक्ष का वध कर दिया है। तब लोगों ने साधु से विनती की कि वह वहीं रह कर उनकी रक्षा करे और वे उसे यहीं स्थान देकर उसकी पूजा-अर्चना करते रहेंगे। साधु ने उन्हें कहा कि वह नरसिंह देवता है और उसका काम अब पूरा हो गया है इसलिए वह कुल्लू राजदरबार से होते हुए बैकुंठ धाम चला जाएगा। जब भी वे उसे सच्चे मन से याद करेंगे तो वह उनकी रक्षा व इच्छा पूर्ति के लिए प्रकट हो जाएगा। ऐसा कह कर वह अदृश्य हो गया। तभी देवी गाड़ा दुर्गा प्रकट हुई और कहा कि वह यह स्थान नरसिंह को छोड़ देगी। उसने लोगों को आदेश दिया कि वे नरसिंह को स्थान देवता के रूप में पूजें। तब लोगों ने वहाँ लकड़ी का देहुरा बनाकर इसमें त्रिशूल और मूर्ति स्थापित कर इसे नरसिंह देवता के रूप में पूजना और हर तीसरे वर्ष उसे भेड़-बकरी की बलि चढ़ाना आरम्भ कर दिया।

सन् 1970 में दीनबंधू दास नाम का एक बालयोगी श्रीखंड कैलास पर्वत से होते हुए इस गुफा में आया और यहाँ धूना रमाकर राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान जी की मूर्ति और शिवजी की पिंडी स्थापित करके तपस्या में लीन हो गया। कालांतर में स्थानीय लोगों व भक्तों की सहायता से यहाँ सीता राम गुफा मंदिर का निर्माण किया गया।

नारायण

गाँव : देऊ खोला, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : थाच।
मंदिर : देऊ खोला।
भंडार : गाँव धाट में डूम खलु नाम के परिवार में।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर-सीमेंट से निर्मित तीन मंज़िल का मंदिर जिसकी दूसरी मंज़िल में मेहराबदार चौतरफा बरामदा है तथा मंदिर की डिज़ाइनदार छत के शिखर पर कलश सुशोभित है। गर्भगृह में जय-विजय व लक्ष्मी सहित गरुड़ारूढ़ भगवान् विष्णु की प्रस्तर प्रतिमा स्थापित है।
शाखा मंदिर : गाँव थाच व शोझाधार।
अधिकार क्षेत्र : निआह से तांदी तक का क्षेत्र।
प्रबंध : कारदार, मेहता, कायथ, कठियाला, पालसरा की समिति। इनमें से मेहता की विशेष भूमिका रहती है। यह
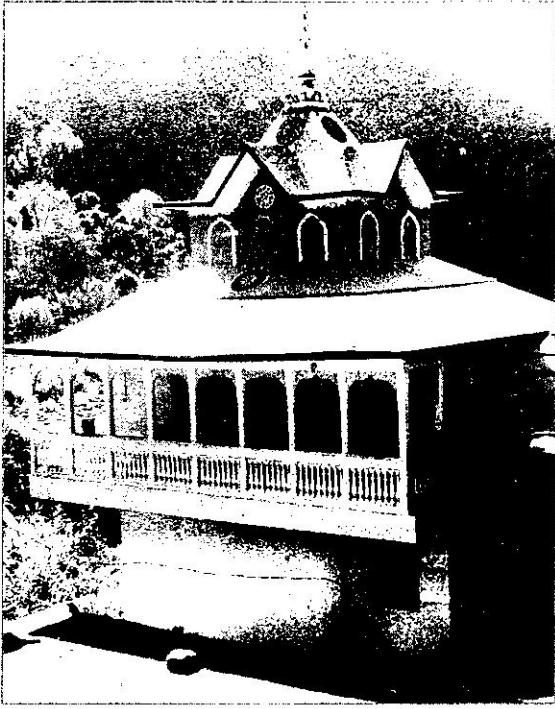
देवता का मुख्य वक्ता और देव भंडार का संरक्षक होता है। 'कारदार' पंसरू खानदान से ही होता है।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से व पूछ डाल कर। गूर हमेशा धारा गाँव के धरुआलों में से ही होता है। देवता स्वयं पर्ची द्वारा इस खानदान से गूर को चुनता है।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से। आरती में शंख, घंटी, धड़छ, चंवर और मोरमुट्ठे का प्रयोग होता है।

रथ : खड़ा। इसके शीर्ष पर टोप के ऊपर छत्र लगा होता है। मुख भाग में मोहरे और उसके निचले भाग में देववस्त्र ओढ़ाये जाते हैं।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति से तीन फाल्गुन तक *फागुली* मेला लगता है। हर तीसरे वर्ष देवता गाँव तांदी से घाट, सनाड़ और निआह तक फेरे पर जाता है। घाट पहुँच कर देऊलू *मंढयाले चिकणी जाण* नाम की शिला को पत्थर मारते हैं। इसके पीछे लोक धारणा है कि किसी समय जब देवता फेरे के लिए घाट की ओर आता था तो देऊलुओं के लालमाटे नामक स्थान के पीछे पहुँचते ही घाट गाँव की एक कुतिया उन्हें काटने आती थी। तब नारायण ने उसे शाप दे कर एक शिला बना दिया, जिसे 'मंढयाले चिकणी जाण' नाम से जाना जाता है। इस शिला को आज भी देऊलू पत्थर मारकर अपनी पुरानी परम्परा को निभाते हैं।

इनके अतिरिक्त देवता अनंत बालूनाग के लक्ष्मण रेखा पर्व को छोड़ कर इसके अन्य सभी पर्वों में नारायण शामिल होता है।

जनश्रुति : किसी समय कुछ व्यक्ति खेत में काम कर रहे थे। उन्हें भूमि से एक प्रस्तर प्रतिमा मिली। वे अभी इसके बारे में अनुमान ही लगा रहे थे कि उनमें से एक व्यक्ति को खेल आई। उसने बताया कि वह नारायण देवता है और वैकुंठ से जनकल्याण के लिए अवतरित हुआ है। उसकी स्थापना गाँव में की जाए। तब आरम्भ में लोग प्रतिमा को ही पूजते रहे और बाद में मंदिर का निर्माण कर इसे मंदिर में स्थापित किया गया।

नारायण

गाँव : बेहलो, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बेहलो।

स्थापत्य : पहाड़ी शैली के प्राचीन मंदिर के स्थान पर वर्ष 2011 में पहाड़ी व मेरु संयोजन शैली में नए मंदिर का निर्माण किया गया है। मंदिर में सुन्दर काष्ठ कलाकृतियाँ उकेरी गई हैं।

शाखा मंदिर : गाँव वीरवान।

अधिकार क्षेत्र : पूरी बलागाड़ फाटी।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, दरोगे की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर, लाडू व पांसे द्वारा।

पूजा : लोकरीति अनुसार प्रातः पूजा तथा सायं आरती होती है।

रथ : छत्र से शोभित करडू है।

मोहरे : तीन। मोहरे करडू के अन्दर विराजमान रहते हैं।

देवता इन्हें रथ में लगाने की अनुमति नहीं देता।

मेले-त्योहार : देवता का मुख्य एक ही उत्सव होता है, जिसे *फागुली* कहते हैं। यह फाल्गुन मास की संक्रांति से तीन फाल्गुन तक होता है। इसमें कृष्णलीला का अधिक व्याख्यान होता है। कृष्ण चरित को लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। इसमें एक विशेषता है कि फागुली की रस्म का मेरुदंड व्यक्ति चेथर के खमरोड़ नामक स्थान का वह व्यक्ति होता है जो अनंत बालूनाग के लक्ष्मण-रेखा के स्मृति उत्सव में देवकार्य करता है। इस उत्सव की एक विशेषता है कि यहाँ फागुली का बाजा पूरे वर्ष भर बजता है, जबकि क्षेत्र के अन्य नारायणों की फागुली का बाजा निश्चित अवधि के बाद बंद हो जाता है। इस नारायण को अनंत बालूनाग अपना गुप्त नरोल (कला) बताते हैं। अतः नारायण केवल बालूनाग के सम्मान में बाहर आकर मिलन करता है, अन्य देवता के लिए यह बाहर नहीं निकलता।

जनश्रुति : यह फाटी तांदी से नराहां में आकर पूजित हुआ। फिर भूमियाँ होते हुए देवकला वीरवान में पहुँची। वीरवान में मंदिर निर्माण के लिए जब नास काटा गया तो देवशक्ति से यह स्वयं बेह्लो गाँव में पहुँचा। तब लोगों ने यहाँ मंदिर का निर्माण करके देवता को पूजना आरम्भ किया।

पज़हारी देऊ

गाँव : भूमिहाँ, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : कांगलगढ़ (कुमारसेन)।
मंदिर एवं भंडार : भूमिहाँ।
स्थापत्य : पत्थर के चबूतरे पर छह नक्काशीदार स्तम्भों पर लगी चौखट के ऊपर आधारित दो ओर को ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है और शिखर पर 'कोर' स्थापित है।
अधिकार क्षेत्र : फाटी बाहु।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में काईथ, दरोगा, मेहता, कठियाला, जेलता और भंडारी की समिति।
न्याय प्रणाली : सभी मामले ग्राम-सभा में तय होते हैं।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः पंचोपचार विधि से पूजा तथा शाम को आरती होती है, जिसमें गाँव के लोग भी सम्मिलित होते हैं।
रथ : रजत छत्र से युक्त खड़ा रथ, जिसे उठाने के लिए चाँदी से मढ़ी दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं।
मोहरे : आठ। एक अष्टधातु का तथा सात सोने के।
मेले-त्योहार : फाल्गुन मास के एक प्रविष्टे को देवता का अवतार दिवस। वैशाख के 7 प्रविष्टे को पज़हारी जिभी देवता के अनुष्ठान में सम्मिलित होने के लिए जिभी जाता है। ज्येष्ठ मास के 2 प्रविष्टे से पाँच दिन तक बंजार मेले में भाग लेता है।

आषाढ़ मास के तीसरे रविवार को जलोड़ीगढ़ में स्थित जोगणियों के स्थान पर होने वाले यज्ञ में सम्मिलित होता है। श्रावण में भूमिहाँ में *झढ़ाच* मेला तथा भादों में *हूम*। हूम में देव-प्रांगण में देव कार्यवाही के बाद लोग जलती मशालें हाथ में लेकर गाँव की परिक्रमा करते हैं।

आश्विन मास के 12 प्रविष्टे को देवता शृंगा
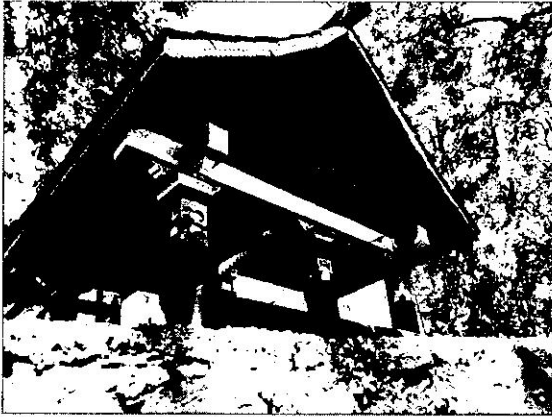
ऋषि बाहु आते हैं और पज़हारी देवता इस उपलक्ष्य में जोगणियों के पास अनुष्ठान में सम्मिलित होता है। इसके अतिरिक्त अपनी हार में वर्ष में वैशाख, श्रावण और मार्गशीर्ष मास में परिक्रमा करने जाता है, जो संक्रांति से आरम्भ होकर पाँच दिन तक चलती है।

जनश्रुति : देवता पज़हारी को भगवान् लक्ष्मी नारायण का अवतार माना जाता है। प्राचीन काल में कोई व्यक्ति काँगलगढ़ से पज़हारी देव का गुर्ज ले आया। जब वह लुहारी नामक स्थान पर पहुँचा तो पुल न होने के कारण उसे सतलुज नदी को पार करना मुश्किल हो गया। अकस्मात् देवता की कृपा से उसमें ऐसी शक्ति आई कि वह शीघ्र ही नदी पार कर गया। वहाँ से वह कई गाँवों से होता हुआ बाहु पहुँचा और वहाँ देवता की स्थापना कर मंदिर, भंडार और रथ बनवाए।

पटरूणू देऊ

गाँव : कोटला, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : पटरूणू जान जो बंजार से काफी ऊँचाई पर जलोड़ी जोत के समीप है।

मंदिर एवं भंडार : कोटला।

स्थापत्य : कंकरीट से बने एक कक्षीय मंदिर के बाहर प्रदक्षिणा-पथ है। देवता का रथ मधेऊल में रहता है, जो साढ़े तीन मंज़िल का कोट शैली में बना होता है।

अधिकार क्षेत्र : कोटला, फगवाना, हुरला, शलैऊड़ी आदि गाँवों के दलित।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से। परन्तु पौष मास की संक्रांति को जब देवता नरोल में जाता है, तब तीन मास तक पूजा नहीं होती।

रथ : चाँदी के छत्र से सुसज्जित खड़ा रथ।

मोहरे : आठ। सात चाँदी के तथा एक अष्टधातु का।

मेले-त्योहार : आषाढ़ या श्रावण मास में *मलेढ़े* का मेला तथा देवता बड़ा छमाहूँ के प्रत्येक मेले-त्योहार में भागीदारी।

जनश्रुति : बंजार से काफी ऊँचाई पर जलोड़ी जोत में स्थित पटरूणू जान को देवता का उद्गम स्थल माना जाता है। वहाँ से भ्रमण करते हुए वह नीचे गाँव कोटला, फगवाना और शलैऊड़ी आया। यहाँ अपने चमत्कारों के प्रभाव से उन गाँवों के लोगों में अपनी मान्यता बनाई। तब प्रत्येक गाँव में देवता के निमित्त रथ, मोहरे और मंदिर बनाए गए। देवता शक्ति संचय हेतु समय-समय पर जलोड़ी जोत जाता है। देवता पटरूणू को बड़ा छमाहूँ कोटला का वजीर माना जाता है। अतः कोटला, फगवाना और शलैउड़ी के देव-गूर सदा बड़े छमाहूँ की सेवा में तत्पर रहते हैं। छमाहूँ के सारे कार्य पटरूणू के गूरों द्वारा किए जाते हैं।

पटरूणू देऊ

गाँव : फगवाना, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : पटरूणू जान।

मंदिर एवं भंडार : फगवाना।

स्थापत्य : पत्थर के चबूतरे पर काष्ठ से निर्मित तीन ओर से खुला देहरा जिसकी ढलवाँ छत के शिखर पर बदोर लगा है। इसमें देवता केवल मेले-उत्सवों के दौरान आता है। यूँ देवरथ मधेऊल में रहता है।

अधिकार क्षेत्र : फगवाना के दलित।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, पालसरा मधेऊलू, भंडारी और कठैला की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं। लेकिन पौष से फाल्गुन संक्रांति तक जब देवता नरोल में रहता है, तब पूजा नहीं होती।

रथ : रजत-छत्र से सुशोभित खड़ा रथ।

मोहरे : आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का तथा सात चाँदी के हैं।

मेले-त्योहार : देवता बड़ा छमाहूँ के सभी मेले त्योहारों में भागीदारी।

जनश्रुति : देखें पटरूणू देऊ, कोटला की जनश्रुति।

पटरूणू देऊ

गाँव : शलैऊड़ी, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : पटरूणू जान।

मंदिर एवं भंडार : शलैऊड़ी।

स्थापत्य : काष्ठ स्तम्भों पर बना चारों ओर से खुला देहरा। इसकी दो ओर को ढलवाँ छत पर स्लेट लगे हैं।

अधिकार क्षेत्र : शलैऊड़ी, चकुरठा के राजपूत।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं।

रथ : छत्रयुक्त खड़ा रथ।

मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा अन्य चाँदी के।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में *फागली* उत्सव। इसके अतिरिक्त बड़ा छमाहूँ का वजीर होने के कारण उसके सभी मेले-उत्सवों में साथ रहता है।

जनश्रुति : देखें पटरूणू देऊ, कोटला की जनश्रुति।

पराशर ऋषि

गाँव : डोघर, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : डोघर गाँव से ऊपर देथला नामक स्थान।

मंदिर एवं भंडार : डोघर।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से कोट शैली में बना साढ़े तीन

मंज़िल का मधेऊल, जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेट बिछे हैं। शिखर पर 'कोर' स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : डोघर, शंऊला आदि गाँव।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, पूछ डालकर, लड्डू विधि से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः पंचोपचार विधि से पूजा तथा सायंकाल में आरती।

रथ : करडू शैली का ताम्र निर्मित रथ, जिसे बाहर से बहुमूल्य वस्त्रों से सजाकर उस पर पुष्प व रजत माला पहनाई जाती है। ऊपर अष्टधातु का कलश सुशोभित होता है।

मेले-त्योहार एवं जनश्रुति : देखें पराशर ऋषि, गाँव लौल।

पराशर ऋषि

गाँव : लौल, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : गाँव लौल के साथ लगते रोपी तांदी जंगल में।

मंदिर : लौल, रोपी तांदी में डेहरा।

भंडार : बनाहू गाँव।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से कोट शैली में निर्मित साढ़े तीन मंज़िल का मधेऊल, जिसकी तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है। शिखर पर 'कोर' स्थापित है। इसके अतिरिक्त चारों ओर को ढलानदार दो छतों वाला एक मंज़िल का मंदिर है, जिसके चारों ओर अर्ध आवरणयुक्त बरामदा है।

अधिकार क्षेत्र : लौल, बनाहू, सपांगणी, सगेहड़, बिहाली इत्यादि।

प्रबंध : अस्थायी प्रबंध समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, पासा फेंक कर, अक्षत व सरसों द्वारा, लड्डू डालकर।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं। देवता का मधेऊलू पूजा के लिए प्रातः कुएँ से जल लाता है। किसी सुहागिन या कन्या द्वारा मंदिर में गोमूत्र का चौका लगाया जाता है। तत्पश्चात् पुजारी पंचोपचारपूर्वक देवता की पूजा करता है। शाम के समय आरती की जाती है।

रथ : करडू शैली जिसके शीर्ष पर कलश लगा होता है।

मोहरे : पाँच। चार अष्टधातु के व एक पत्थर की पिंडी। किसी भी प्रकार की अशुद्धि होने पर या प्राकृतिक आपदा की आशंका से पिंडी भारी हो जाती है।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को देवता के कपाट खुलते हैं। देवता को नरोल से बाहर लाया जाता है। इससे दो दिन पूर्व हारियान व्रत रखते हैं और देवता के पास हाज़री देते हैं। संक्रांति को देऊली के बाद देवता पंचघर नामक स्थान पर जाता है, जहाँ ऋषि और माता भगवती का मुख्य गण तुदाला नामक देवता रहता है। यहाँ एक बड़े वृक्ष में तुदाला के निमित्त लोग लोहे से बना सामान चढ़ाते हैं। छड़ी के रूप में यह पराशर ऋषि के अंग-संग रहता है। पंचघर के बाद ऋषि अपने सभी वाद्यों और हारियान के साथ रोपी तांदी डेहरी में जाता है। वहाँ देऊली के बाद गूर भारथा सुनाता है। तुदाला, बनशीरा, नाग देवता, खोडू व उनके गूर भी इस समय उपस्थित

रहते हैं। इसी दिन सभापूजन पर्व के लिए तिथि निश्चित की जाती है। इस पर्व में देऊली की रस्म निभाई जाती है और तुदाला का गूर जोगणी माता के पास जाकर माता के नरोल को अनावृत करता है। भंडारे की व्यवस्था होती है। शाम के समय देवता अपने मधेऊल में लौट आता है।

ज्येष्ठ संक्रांति को पराशर लौल गाँव से बनाहू गाँव जाता है। वहाँ हर घर में देवता को कुज्जी पुष्प की मालाएँ पहनाई जाती हैं और घी के दीपक से पूजा की जाती है।

भाद्रपद मास में बारी-बारी से हारियान रोपी तांदी जाकर घी का दीपक जलाते हैं। ऐसा पूरे मास किया जाता है क्योंकि इसे काला महीना मानते हैं। आश्विन संक्रांति को हारियान देवता के पास फूल, प्रसाद और दूर्वा चढ़ाते हैं।

मार्गशीर्ष मास में शुभ दिन निश्चित करके देवता अपने कार्यकर्ताओं, वाद्यों व हारियान सहित लौल गाँव से सगेहड़ा गाँव जाता है। इस पर्व को *फेरा* कहा जाता है। इसके बाद सपांगणी जाता है। वहाँ भी गूर देवभारथा सुनाता है। अंत में देवता बनाहूँ गाँव आता है और वहाँ भी घर-घर जाकर लोगों को आशीर्वाद देता है। वहाँ से अपने स्थान लौल गाँव आकर दो मास 'नरोल' में रहता है।

जनश्रुति : देऊ पड़ासर के नाम से विख्यात पराशर ऋषि की कुल्लू जनपद के कई गाँवों में मान्यता है। एक बार ऋषि आध्यात्मिक साधना के लिए मनोरम स्थल खोजते हुए गाँव डोघर से कुछ ऊपर देथला नामक स्थान पर आया। वहाँ देवता से एक अन्य शक्ति प्रकट हुई और लौल गाँव के साथ लगते रोपा तांदी जंगल में चली गई। वहाँ तपस्या के साथ-साथ जब देवता लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण करने लगा तो वहाँ के लोगों ने देवता के निमित्त डोघर और लौल में करड़ू रथ तथा मंदिर का निर्माण किया।

पाँचवीर

गाँव : चिपणी, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : चिपणी।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का मंदिर।

शाखा मंदिर : नगढार।

अधिकार क्षेत्र : फाटी चिपणी के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी, दरोगे की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से पूजा व आरती होती है।

रथ : अंगाह की लकड़ी का बना खड़ा रथ।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : चार मेले तथा दो त्योहार मनाये जाते हैं।

जनश्रुति : देव भारथा के अनुसार यह देवता लाकड़-काकड़ नामक स्थान से बड़ा भंगाल होकर लाहुल पहुँचा। वहाँ देवता घेपङ् के साथ वचन बाँध बैठा। वहाँ से आते हुए रोहतांग में काली नाग और मनाली में हिडिम्बा से मिला और आगे काईस, सुलतानपुर, बिजली महादेव, हामटा, मलाणा, कोटकंढी, दयार, घड़ैन कुणी, थरास, भरयाउड़ी, दलासणी, लारजी, मंगलौर, ठमोठी, देऊरी, जांवले, नाईणी आदि स्थानों से होकर गाँव चिपणी में पहुँच गया। यहाँ लोगों को अनेक चमत्कार दिखाकर पूजनीय बना और अपने लिए एक धनेरा (पूजा पात्र), एक पुजारी व एक गूर चुना।

पाँचवीर

गाँव : नणौत, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : नणौत।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित साढ़े तीन मंज़िल का कोट शैली का मंदिर, जिसकी तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। चारों ओर को ढलवाँ छत पर स्लेट लगे हैं और शिखर पर 'कोर' स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : पूरे कलवारी क्षेत्र के राजपूतों और दलितों का देवता।

प्रबंध : देवता के कारिंदों द्वारा।

न्याय प्रणाली : लड्डू, प्रश्न विधि से, देवता द्वारा रथ के माध्यम से।

पूजा : दैनिक पूजा धूप-दीप से।

रथ : सुन्दर वस्त्राभूषणों तथा रजत छत्र से सुशोभित खड़ा रथ।

मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा अन्य पीतल के।

मेले-त्योहार : 4 फाल्गुन को *फागली* उत्सव। भाद्रपद मास में *भाद्रु जाच*। इसके अतिरिक्त देवता लक्ष्मीनारायण कलवारी के सभी मेले त्योहारों में शांघल (साँकल) रूप में उपस्थित रहता है।

जनश्रुति : देवता पाँचवीर गड़गड़ासर नामक स्थान से भदरेड़े जाति के किसी व्यक्ति के साथ कलवारी आया जहाँ लक्ष्मी नारायण ने उसे स्थान देकर अपना सहायक बनाया। यह वजीर के रूप में लक्ष्मीनारायण के साथ रहता है और उनकी चार 'बढ़ों' के लोगों में पाँचवीर की भी मान्यता है।

पाँज़ुवीर

गाँव : बाल़ो, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान एवं मंदिर : बाल़ो।

स्थापत्य : 10 फुट वर्गाकार प्रस्तर-पीठिका के ऊपर लकड़ी की चौखट व चार स्तम्भों पर आधारित दो ओर को ढलानदार छत वाला खुला मंदिर जिस पर स्लेटों का
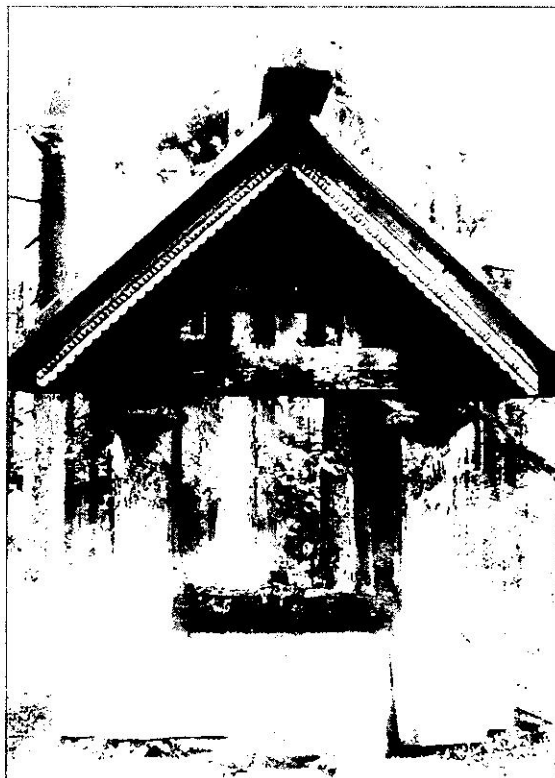
आच्छादन है और शिखर पर 'क्रोंशा' स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : केवल बाल़ो गाँव। लेकिन देऊ अनंत बालूनाग के अधिकार क्षेत्र के लोग भी इसे मानते हैं और मंदिर में भोग चढ़ाने आते हैं।

प्रबंध : गाँव जगेहड़, फाटी खाबल, कोठी फतेहपुर के लोग।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा स्वयं।

पूजा : जंगल में मंदिर स्थापित होने के कारण केवल संक्रांति आदि विशेष अवसरों पर ही पूजा होती है। देवता का अपना कोई पुजारी नहीं है, अतः अनंत बालूनाग का पुजारी ही पूजा करता है।

रथ : नहीं है।

जनश्रुति : हिमालय यात्रा के दौरान पांडव जहाँ-जहाँ जाते थे, वहाँ वे रातों रात बड़े-बड़े कार्य करते थे। वे पुण्यस्थली बाल़ो में भी आए और लोगों ने इनकी शक्ति से प्रभावित होकर यहाँ मंदिर का निर्माण कर इन्हें पूजना आरम्भ किया।

पाथरू देऊ : घटोत्कच

गाँव : नणौत, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : शपणील गाँव से ऊपर शजाहू नामक स्थान।
मंदिर : नणौत।
भंडार : नणौत में प्रीतम सिंह के घर में।
अधिकार क्षेत्र : फाटी कलवारी के गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी, काईथ और जेलता की समिति।
न्याय प्रणाली : प्रश्न एवं पूछ डालकर, देवता द्वारा खड़े रथ से।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से। नरोल के समय पूजा नहीं होती।
रथ : वस्त्राभूषण व छत्र से शोभित खड़ा रथ।
मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा शेष पीतल के हैं।
मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में लक्ष्मी नारायण के साथ हाज़री।
जनश्रुति : यह देवता शपणील गाँव से ऊपर शजाहू नामक स्थान से किसी व्यक्ति के साथ नणौत आया और वहाँ के मूल देवता वीर से अपने लिए स्थान प्राप्त कर वहाँ के लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण करने लगा। तब लोगों ने देवता के निमित्त रथ का निर्माण किया।

पाली नाग

गाँव : मोहनी, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : मोहनी।
स्थापत्य : पाँच वर्ष पूर्व लकड़ी व पत्थर से बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर है। छत स्लेटों से आच्छादित है और शिखर पर 'क्रोंशा' स्थापित है।
अधिकार क्षेत्र : पूरा मोहनी क्षेत्र। देव रियालू नाग के हारियान भी इसे मानते हैं।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर 'मिटकर', पांसा फेंक कर तथा रथ द्वारा पर्ची स्पर्श करके।
पूजा : प्रातः धूप जला कर घंटी व शंख ध्वनि के साथ स्तोत्र गाकर पूजा होती है और सायं घी या तेल का दीपक जला कर आरती गाई जाती है।
रथ : रंगीन वस्त्रों व मोहरों से सज्जित खड़ा रथ।
मोहरे : आठ।
मेले-त्योहार : यह रियालू नाग, मोहनी के समस्त मेले-त्योहारों में शामिल होता है। 5 श्रावण को *बाड़ा री जाच* में गूर 'मिटकर' पाली नाग की गज़ से नागणी नामक स्थान पर रेखा खींचता है। मोहनी की महिलाएँ इस रेखा के पीछे नाचती हैं।
जनश्रुति : किसी समय यह देवता सैंज क्षेत्र के रइला नामक स्थान से बछूटी नेगियों के साथ आए दलित लोगों के साथ मोहनी क्षेत्र में आया। यहाँ पहले से रियालू नाग का स्थान था। तब पाली नाग ने रियालू नाग का सेवक बनकर यहाँ रहने की इच्छा व्यक्त की। यह जानकर लोगों ने देवता को मोहनी में स्थापित कर इसकी पूजा-अर्चना आरम्भ की।

बंगा देवता

गाँव : चनौन, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : चनौन गाँव का मठैणा नामक स्थान।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित कोट शैली का मधेऊल जिसमें साढ़े तीन मंज़िले हैं। तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है और शिखर पर 'कोर' स्थापित है। इसके अतिरिक्त तीन ओर से खुली एक डेहरी है जिसकी सपाट छत के मध्य में कलशयुक्त गुंबद बना है।

अधिकार क्षेत्र : चनौन।

प्रबंध : गूर द्वारा।

न्याय प्रणाली : देव-रथ से पूछ कर।

पूजा : प्रतिदिन पंचोपचार पूर्वक।

रथ : ऊपर से मंडपाकार खड़ा रथ।

मोहरे : आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का, सात पीतल के।

मेले-त्योहार : अपना कोई मेला नहीं। बुँगड़ू महादेव का सहायक होने के कारण उनके सभी मेले-त्योहारों में शामिल रहता है।

जनश्रुति : बंगा देवता बुँगड़ू महादेव, चनौन का सहायक है।

बीमू नाग

गाँव : बरींगचा, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : गाँव बाहु।

मंदिर : बरींगचा।

भंडार : गाँव झनियार।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से बना साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर, जिसकी छत स्लेटों से ढकी है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव झनियार, फरयाड़ी, तिंदर (कोठी तुंग व नोहांडा), बरींगचा।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं प्रतिदिन पूजा व आरती।

रथ : अंगाह की लकड़ी का बना खड़ा रथ।

मोहरे : कुल आठ। इनमें से एक सोने का, दो 'री' धातु के तथा पाँच रजत निर्मित।

मेले-त्योहार : श्रावण मास में मेला।

जनश्रुति : यह देवता सर्वप्रथम हिडब माथा नामक स्थान से बाहु में पहुँचा। इसका आज भी बाहु में आना-जाना रहता है और यहाँ के हारियान को इसकी पूज-पुजाई यानी बकरे की बलि का खर्चा वहन करना पड़ता है। बाहु से यह बीमू नामक स्थान में पहुँचा। यहाँ प्राचीन समय में जंगल के मध्य में इसका मंदिर भी था, जो बाद में आग से जल कर राख हो गया। उसके बाद देवता ने इस स्थान पर मंदिर बनाने से इनकार कर दिया, लेकिन इस जगह आज भी देवता की मान्यता है। यहाँ से चल कर यह बखाड़ी जोत में योगिनियों से मिलने के पश्चात् वासु नामक स्थान में पहुँच कर वासुकि नाग से मिला। इन दोनों स्थानों में यह आज भी जाता है और बखाड़ी में योगिनियों को 'पूज-पुजाई' दी जाती है तथा वासु में भंडारे का आयोजन किया जाता है। यहाँ से यह देवता ढींगू व तिंदर नामक स्थानों से होते हुए बरींगचा पहुँचा

और यहाँ नाग रूप में प्रकट हो कर इसने किसी को दर्शन देकर कहा कि इस स्थान में उसकी स्थापना की जाए तो वह हर प्रकार से प्रजा की रक्षा करेगा। तब लोगों ने यहाँ मंदिर का निर्माण करके इसे पूजना आरम्भ किया।

बुँगड़ू महादेव

गाँव : चनौन, **तहसील** : बंजार।

मूल स्थान एवं मंदिर : गाँव गोशाला।

भंडार : पूर्व समय में कड़ाहिला गाँव में हुआ करता था परन्तु लगभग साठ-सत्तर वर्ष से गाँव देऊठा में है।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से कोट शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का मधेऊल, जिसकी तीसरी मंज़िल के चारों ओर बरामदा है। इसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है और शिखर पर 'कोर' स्थापित है। इसके अतिरिक्त कंकरीट से हाल ही में नए मंदिर का निर्माण किया गया है।

शाखा मंदिर : देऊठा, देऊरी, शेगली, चनौन तथा तरंगाली।

अधिकार क्षेत्र : चनौन, कड़ाहिल, देऊठा तथा तरंगाली 'बढ़ों' के लगभग 750 परिवार।

प्रबंध : चारों 'बढ़ों' पर आधारित पारम्परिक समिति देवता के आय-व्यय तथा अन्य सभी कार्यों का प्रबंध करती है।

न्याय प्रणाली : रथ द्वारा, पर्ची या लाडू डालकर, प्रश्न एवं पांसे से।

पूजा : षोडशोपचार विधि से प्रतिदिन प्रातः-सायं ब्राह्मणों द्वारा।

रथ : मंडप शैली का रथ। यह चिमू नामक वृक्ष की लकड़ी से बनाया जाता है। इसके निम्न भाग को जगहलू कहते हैं, जिसमें बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहनाए जाते हैं। रथ के मध्य भाग को देह कहते हैं, जिसमें मोहरे लगाए जाते हैं तथा पुष्प और स्वर्ण हार पहनाए जाते हैं। शीर्ष भाग पर गुंबदाकार छत्र लगाया जाता है, जो अंदर से लकड़ी और बाहर चाँदी से मढ़ा होता है।

मोहरे : आठ। प्रमुख मोहरा अष्टधातु का तथा सात मोहरे स्वर्ण के हैं।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को देवता के कारकुन और हारियान प्रातः ही मंदिर में एकत्र होते हैं और मुख्य मोहरे से थोड़ा-सा पर्दा हटाया जाता है, फिर पूजा की जाती है। देवता के सहयोगी देवताओं के गूर देऊखेल करते हैं क्योंकि बुँगड़ू महादेव का गूर महाशिवरात्रि तक देऊखेल नहीं कर सकता। बाद दोपहर कड़ाहिल गाँव के लोग बाजे-गाजे के साथ, लकड़ी के प्राचीन मुखौटे और शड़ूली नामक घास विशेष के चोले पहन कर आते हैं और पूरे मंदिर परिसर की परिक्रमा करते हैं। इसके बाद बारी-बारी से चनौन, देऊठा गाँव के मुखौटाधारी यह रस्म निभाते हैं।

महाशिवरात्रि पर्व गोशाला मंदिर में धूमधाम से मनाया जाता है। देवता को नरोल से बाहर निकाला जाता है और स्नान आदि कराकर श्रृंगार किया जाता है। सभी हारियान जो लगभग 740 घर हैं, यहाँ अपनी हाज़री देते हैं। यह पर्व फाल्गुन मास की चतुर्दशी व अमावस्या को मनाया जाता है। देवता को जनता के दर्शनार्थ मंदिर में लाया जाता है और गूर देऊखेल करता है। बाद दोपहर अन्य देवताओं के गूरों द्वारा देऊखेल की जाती है। रात्रिजागरण होता है। अगले दिन प्रातः की पूजा के बाद देवता की ओर से सभी हारियान को भोज दिया जाता है। शिवरात्रि के तीन दिन बाद फाग उत्सव आरम्भ होता है

जो बारह दिन तक चलता है। इन दिनों रोज़ रात को नौ बजे से बारह बजे तक वाद्ययंत्रों की ध्वनि की जाती है और बजंतरियों को तथा बाहर से आए श्रद्धालुओं को खाना खिलाया जाता है। ग्यारह दिन के जागरण व 'झूणा' के बाद बारहवें दिन *होली उत्सव* का आयोजन होता है। देवता के रथ को मंदिर से बाहर निकाला जाता है। बझीयार पंडित देवता की पूजा करते हैं, फिर देवता की *चकहर* की कार्यवाही होती है। सभी गूर अपने देवताओं के पद एवं वैदिक मान्यता के आधार पर पंक्ति में बैठते हैं और देऊखेल करते हैं। लोग अपने दुःखों के निवारण के लिए गूरों से प्रश्न पूछते हैं और *शेष* प्राप्त करते हैं। भोजन के बाद होली खेली जाती है। सर्वप्रथम बुँगड़ू महादेव और देवी हिडिंबा को गुलाल लगाया जाता है, तत्पश्चात् सभी आपस में रंग लगाते हैं।

फाग उत्सव के दसवें दिन देवरथ गोशाला गाँव से गोपालपुर गढ़ जाता है। यहाँ सभी हारियान के लिए कड़ाहिल और चनौन वालों की ओर से भंडारे का प्रबंध होता है। सभी लोग अपने-अपने घरों से घी की कुंधड़ी (एक पात्र विशेष) लाते हैं, जिससे हलवा बनाकर सबको प्रसाद रूप में बाँटा जाता है। शाम को देवता गाँव जाता है। तीसरे दिन केलतांदी नामक गढ़ जाता है जो चनौन गाँव से लगभग 6-7 कि.मी. दूर ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। यहाँ जोगिनियों की पूजा के बाद देवता का धामी कला एकत्र करने की कार्यवाही करता है। देऊखेल के बाद देवता चनौन लौटता है। चनौन से देवता शरोह धार की यात्रा पर जाता है। वहाँ देऊखेल होती है। शक्ति संचय किया जाता है। यहाँ तीन दिन का उत्सव होता है।

वर्ष में दो बार वैशाख और श्रावण पूर्णिमा को *हूम* का आयोजन होता है। देवता के कार्यकर्ता पहले तीन दिन उपवास रखते हैं। हूम की पूर्व संध्या को जगराता होता है। अगले दिन यज्ञ होता है जिसमें बुँगड़ू महादेव के सहयोगी देवताओं और अन्य आमंत्रित देवताओं के गूर भाग लेते हैं। हारियान के प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं। मंदिर में भोग लगाने के बाद सर्वप्रथम व्रतधारियों को भोजन कराया जाता है, तत्पश्चात् अन्य लोग धाम खाते हैं।

आषाढ़ या श्रावण मास के शुक्ल पक्ष के रविवार या मंगलवार को देवता तीन दिवसीय बुँगा यात्रा पर जाता है। साथ में हज़ार से भी अधिक हारियान जाते हैं। बुँगा माता का मंदिर चनौन से लगभग 15-20 कि.मी. दूर ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। वहाँ का रास्ता विकट होने के कारण देवरथ केवल गलून गाँव तक ही जाता है। यहाँ से देवता के मोहरे को पूरे बाजे-गाजे के साथ बुँगा ले जाया जाता है। वहाँ पहुँचने पर देवकार्यवाही होती है। गूर सभी को सरसों के दाने देता है। भोजन करने के बाद देवता के धामी द्वारा देवशक्ति का संचय किया जाता है। वह तुला में देवता का शंख एवं घंटी रखता है और कारकुन देवता से वापिस चलने का आग्रह करते हैं। उसी समय धामी में देव प्रवेश होता है और देवता को वापिस जाने के लिए उठाया जाता है। गलून में मोहरा पुनः देवरथ पर लगाया जाता है और ऊपर घूँघट डाल दिया जाता है। देवता को चनौन होते हुए गोशाला लाया जाता है। तीसरे दिन बुँगा माता की प्रतीक डोरी को मंदिर में स्थापित कर देवरथ को बाँगे गाड़ नामक स्थान पर ले जाया जाता है। यहाँ देवता के गूँगे वीर रहते हैं। वहाँ देवकार्यवाही होती है। वीर का गूर देवता के रथ की जमाण को एक हाथ से पकड़ता है और उससे छुड़ाने के लिए सैकड़ों लोग देवता को ऊपर की ओर खींचते हैं। शाम को देवता लौट आता है।

आषाढ़ में ही देवता थीहणी माता के पास जाता है। देऊठा मंदिर से लगभग 22 कि.मी. दूर ऊँची पहाड़ी पर स्थित होने के कारण एक दिन में वहाँ नहीं पहुँचा जाता है। बुँगड़ू महादेव के साथ उनका सहयोगी देवता डोरू नारायण भी करंडू में जाता है। थीहणी माता के स्थान में पहुँचकर देवकार्यवाही होती है। हारियानों के लिए सामूहिक भोज की व्यवस्था होती है।

जनश्रुति : किसी समय कोट पंचायत के गाँव अनाह का एक व्यक्ति नमक लेने के लिए मण्डी सुकेत गया। मार्ग में उसे बार-बार यह आवाज़ सुनाई देने लगी कि मुझे उठा ले, मैं तुझे मालामाल कर दूँगा। निर्बल दास नाम का वह

व्यक्ति चकित हो चारों ओर देखने लगा कि यह आवाज़ कहाँ से आ रही है। तभी उसे एक पिंडी दिखाई दी जिसमें से यह आवाज़ आ रही थी। वह पिंडी के पास गया और कहने लगा कि मैं तुम्हें नहीं उठा पाऊँगा क्योंकि मेरा किलटा पहले ही नमक से भरा हुआ है। तब पिंडी रूपी देवता ने कहा-तुम मुझे उठाकर तो देखो। निर्वल ने पिंडी उठाई तो वह उसे फूल-सी हल्की लगी। उसने उसे अपने नमक के किलटे में डाल दिया। ऐसा करते ही उसका किलटा भी हल्का हो गया। मार्ग में गोशाला नामक स्थान पर विश्राम करने के लिए उसने किलटा नीचे उतारा और पिंडी को बाहर निकाल कर देखने लगा। पिंडी के बाहर आते ही किलटे में आग लग गई और नमक गायब हो गया। यह देखकर निर्वल बड़ा चिंतित हुआ। तभी पिंडी से पुनः आवाज़ आई-घबरा मत, नमक सहित तेरा किलटा घर पहुँच गया है। तू मेरी यहीं पर स्थापना करके घर चला जा। उसने समीप की एक झाड़ी के पास खुदाई कर पिंडी को वहीं स्थापित कर दिया। वहाँ से वह घर की ओर चल दिया। गोशाला से कुछ ऊपर मठियाणा गाँव पहुँच कर वह दयार के एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर अपने गाँव को देखने की कोशिश करने लगा परन्तु उसे कुछ दिखाई न दिया। वह मन में देवता को याद करने लगा कि तभी वह वृक्ष ऊँचा और ऊँचा होता गया और उसे अपने गाँव की अनाहधार नज़र आई। इसे देवता का चमत्कार जानकर वह पुनः पिंडी के पास पहुँचा और कृतज्ञता व्यक्त कर घर जाने की अनुमति माँगी। घर पहुँच कर उसने देखा कि एक पूरा कमरा नमक के किलटों से भरा है। इसे देवता की कृपा मानकर वह देवता को अपने कुलज के रूप में पूजने लगा। निर्वलदास के वंशज आज भी देवता बुँगड़ू के मेहते कहलाते हैं और गोशाला मंदिर में जब भी कोई कार्य करना हो तो उसका आरम्भ यही लोग करते हैं।

जब गोशाला में देवता की स्थापना हुई तब यहाँ पर चेड़ू नारायण का प्रभाव था। चेड़ू नारायण ने अपनी चार 'वढ़' बुँगड़ू को दे दीं और स्वयं एक बढ़ में ही सीमित हो गया। इस के बदले में इन सभी वढ़ों के लोग तथा बुँगड़ू देवता स्वयं भी प्रत्येक शुभ कार्य का मुहूर्त चेड़ू नारायण से ही निकलवाते हैं और यह प्रथा आज तक चल रही है।

देवता जब गोशाला आया था उस समय उन चार वढ़ों चनौन, कड़ाहिल, टिलरू और दंऊठा के ठाकुरों को स्वप्न हुआ कि गोशाला में कोई देवता आया है, उसकी मानता करो। तब वे चारों ठाकुर गोशाला गए और वहाँ से एक पिंडी चनौन में स्थित मंदिर में लाए। उसे वहाँ स्थापित कर देवता के प्रत्येक कार्य को पूर्ण करने की जिम्मेवारी ली।

बूढ़ी नागण

गाँव : घियागी, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : सरेऊलसर।
मंदिर एवं भंडार : घियागी।
स्थापत्य : गाँव के एकांत स्थान में चार काष्ठ-स्तम्भों पर आधारित छतवाला चारों ओर से खुला मंदिर। ढलानदार छत लकड़ी के तख्तों से छाई है और शिखर पर बदोर लगा है। इसके अतिरिक्त कोट शैली में बना दुमंज़िला भंडार है जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेट बिछे हैं।
अधिकार क्षेत्र : घियागी, सरेऊलसर।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी, कठियाला की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।

रथ : शिखर पर रजत-छत्रयुक्त खड़ा रथ, जिसमें दो अर्गलाएँ लगी हैं।

मोहरे : आठ, जो रथ के चारों ओर सज्जित होते हैं।

मेले-त्योहार : सात वैशाख को घियागी में *बिरशू* मनाया जाता है। समय-समय पर देवी का रथ स्नान करने हेतु सरेऊलसर जाता है।

जनश्रुति : प्राचीनकाल में एक लड़की ज़िला शिमला के सुग्गा-सरपारा नामक सरोवर के पास भेड़-बकरियाँ चराने आती थी। एक दिन सरोवर के किनारे उसे नौ विचित्र फूल दिखाई दिए और वह उन्हें तोड़ने के लिए सरोवर के किनारे गई। उसने आठ फूल तो तोड़ लिए पर जब नौवें फूल को तोड़ने लगी तो जल देवता भ्रमर के रूप में उसके इर्द-गिर्द मंडराने लगा, जिससे डर कर वह सरोवर में गिर गई। जल देवता उसे अपने साथ ले गया। काफी समय तक वह उसके साथ रही और जब घर लौटी तो उसने नागों के रूप में नौ बच्चों को जन्म दिया। वह सबसे छिपाकर उनको पालने लगी। एक दिन किसी कार्यवश जब वह घर से बाहर गई हुई थी तो उसकी माँ ने नागों को देख लिया और उसने उनपर गर्म-गर्म राख फेंक दी जिससे डरकर सभी नाग वहाँ से भाग गए। जब उनकी माँ वापिस आई तो बच्चों को न पाकर अत्यंत दुःखी मन से उन्हें ढूँढने चल पड़ी। जहाँ-जहाँ उसे नाग मिले वहाँ-वहाँ उन्हें प्रजाक्षेत्र प्रदान कर स्वयं बूढ़ी नागण के नाम से घियागी में रहने लगी। कहते हैं कि यहाँ ऊदू बरड़ा नामक तांत्रिक ने नागिन को अपने वश में कर लिया। वह उससे विवाह करना चाहता था, परन्तु किसी प्रकार उसके चंगुल से छूटकर वह जलोड़ी जोत की ओर चली गई। उसके पास पानी की एक तूंबी थी। जब वह कान्वा छोह नामक स्थान पर पहुँची तो वहाँ एक गड्ढे में तूंबी का जल उड़ेलकर उसने सरोवर का निर्माण किया और उसमें समा गई। वह सर सरेउलसर कहलाया। लोगों ने वहाँ माता का छोटा-सा मंदिर बनाया और घियागी में मंदिर और भंडार का निर्माण किया, जहाँ देवी का रथ रहता है।

ब्रह्म विठ

गाँव : शाक्टी, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान एवं मंदिर : शाक्टी।

भंडार : नहीं है।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से पहाड़ी शैली में बना 26ग26 फुट वर्गाकार का डेढ़ मंज़िला मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है और शिखर पर 'वदोर' लगा है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव शाक्टी, मरौड़, शुगड़ा।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, कायथ, कठियाला की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पुजारी द्वारा। विशेष अवसरों पर शैंशर के ब्राह्मण आकर पूजा करते हैं। पूजा में केवल बेठर धूप का ही प्रयोग किया जाता है।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ जिसके शीर्ष पर छत्र सुशोभित है।

मोहरे : नौ।

मेले-त्योहार : प्रथम वैशाख को *हूम* का आयोजन, आश्विन संक्रांति को *शौयरी* मेला, बारह वर्ष के अंतराल में देवता चलियाड़ा बंजार की *हारगी* पर जाता है।

जनश्रुति : ब्रह्म विठ को भगवान् राम का गुरु वशिष्ठ माना जाता है। यह अयोध्या से हिमालय की ओर आए और पर्वतों को लाँघकर कुल्लू ज़िला के गड़सा नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ माहून वृक्ष के नीचे कई वर्ष तक तपस्यारत रहे। वहीं वशिष्ठ ने दुर्वासा ऋषि के साथ धर्म का सम्बंध बनाया। गड़सा में *बिठ* और *दयाउली* जाच का शुभारम्भ किया। तत्पश्चात् भलाण, गोही, शैंशर होते हुए शाक्टी पहुँचा और यहाँ के लोगों द्वारा पूजित हुआ।

भंडप : विभांडक ऋषि

गाँव : सोझा, **तहसील** : बंजार।
मूल स्थान एवं मंदिर : सोझा के समीप मंढार नामक स्थान।
भंडार : सोझा।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित ढाई मंज़िल का मेरु संयोजन शैली का मंदिर, जिसकी दूसरी मंज़िल में चारों ओर ग्लेज़्ड बरामदा है।
शाखा मंदिर : सोझा से ऊपर फ्रुट्ट नामक स्थान पर।
अधिकार क्षेत्र : सोझा।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में दरोगा, गूर, पुजारी, काईथ और कठियाला की समिति।
न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पूजा व आरती। परन्तु गाँव में किसी की मृत्यु हो जाने की दशा में दसकर्म पूरे होने तक देवता की पूजा नहीं होती।
रथ : रजत छत्र से सुशोभित खड़ा रथ।
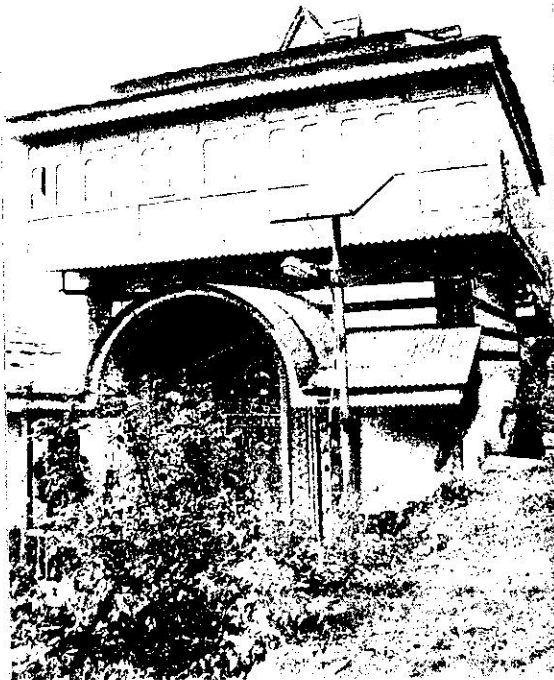
मोहरे : छह मोहरे रजत के, एक स्वर्ण का तथा एक अष्ट धातु का।
मेले-त्योहार : प्रथम चैत्र को देवता का अवतार दिवस मनाया जाता है। इस दिन देवता का गूर, पुजारी, कारदार, दरोगा और हारियान के प्रति परिवार का एक सदस्य व्रत रखता है। देवता का गूर इस दिन भारथा सुनाता है। वर्शोहा देता है। लोग दूर-दूर से देवता की चाकरी करने आते हैं। श्रावण में सोझा में *देऊगी* / मार्गशीर्ष में *जागरा*। देवता लगभग बारह वर्ष में एक बार रुद्रनाग तथा खीरगंगा का दौरा करता है, जिसमें लगभग पंद्रह दिन लगते हैं। दूसरी यात्रा काली मंदिर लंभरी की होती है। चार-पाँच साल के अंतराल में तीसरा दौरा काली माता जलोड़ी का होता है।
जनश्रुति : भंडप ऋषि को शृंगी ऋषि का पिता माना जाता है। पूर्व काल में वह हिमालय की सुरम्य घाटियों में भ्रमण करते हुए बंजार के सोझा गाँव में पहुँचे तो वहाँ के घने वन में एकांत स्थान देखकर वह तपस्या में लीन हो गए। कालांतर में किसी व्यक्ति को लकड़ियाँ लाते हुए उस जंगल में एक मोहरा मिला। उसे उठाते ही आकाशवाणी हुई कि यह भंडप देवता है। इसकी अपने गाँव में स्थापना करोगे तो तुम्हें किसी भी चीज़ की कमी नहीं रहेगी। यह सुनकर उसने मोहरे को गाँव पहुँचाया और आकाशवाणी की बात गाँववासियों को सुनाई तो उन्होंने मिलकर सोझा में मंदिर बनाया और उसमें देवता की स्थापना की। भंडप ऋषि के प्रति सोझा की जनता में अटूट आस्था एवं विश्वास है और वे उसे अपना पालनहार मानते हैं।

भरयाड़ू देऊ

गाँव : घाट, **तहसील** : बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : घाट।
स्थापत्य : आरम्भ में केवल एक काष्ठ-स्तम्भ तथा प्रस्तर प्रतिमा थी, जिन्हें देवरूप में पूजा जाता था। लगभग पाँच वर्ष पूर्व काष्ठ-प्रस्तर से डेढ़ मंज़िल के मंदिर का निर्माण

किया गया, जिसके भीतर प्रतिमा की स्थापना की गई है। इसकी चारों ओर को ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है। छत के चारों कोनों और मध्य में धातु कलश स्थापित हैं।

अधिकार क्षेत्र : केवल घाट गाँव, परन्तु देव अनंत बालूनाग के सेवक के रूप में यह पाँच गढ़ और दो रियासतों में पूजित होता है।

प्रबंध : कारदार, पुजारी, भंडारी, जेलता की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : अपना कोई मेला नहीं होता, लेकिन अनंत बालूनाग के सभी मेलों में सम्मिलित होता है।

जनश्रुति : यह तीर्थन नदी के साथ ऊँचे पहाड़ के भरयाड़ा नामक स्थान से आया माना जाता है। इस स्थान पर एक छोआ (जल प्रपात) है, जिसे भरयाड़ू छोआ कहते हैं। घाट क्षेत्र में पहुँच कर इसने अनंत बालूनाग देवता का सेवक बनना स्वीकार किया। अतः यह अनंत बालूनाग के प्रजा क्षेत्र-पाँच गढ़ और दो रियासतों में इनके सेवकों में सर्वप्रथम पूजा जाता है। भरयाड़ू शब्द भैरव का अपभ्रंश रूप है। भैरव शिव के अवताररूप माने जानेवाले शिव के अंग विशेष हैं। लोक में इन्हें देवता का सेवक माना जाता है।

भरयाड़ू देऊ

गाँव : पेखड़ी, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : रुपा जानी (पेखड़ी)।

मंदिर एवं भंडार : नहीं है।

स्थापत्य : देवता कारदार के घर में रहता है।

अधिकार क्षेत्र : शरची तथा नुहांडा फाटियाँ।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी, दरोगा व जेलता आदि की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : अंगाह की लकड़ी का दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ, जिसके शिखर पर छत्र शोभित है।

मोहरे : आठ, जिनमें से मुख्य मोहरा अष्टधातु का है।

मेले-त्योहार : 20 माघ को *देव तुआर*। इसमें भारथा सुनाई जाती है। यह लोमश ऋषि पेखड़ी का सहायक देवता है, अतः उनके सभी मेले-त्योहारों में सम्मिलित रहता है।

जनश्रुति : यह देवता शुआकमरू से चिमटी, वशलेऊ, कलवारी होते हुए भरयाड़ा गाँव पहुँचा। कुछ समय वहाँ रहने के बाद वह छमाहण से होते हुए पेखड़ी गाँव में आया और वहाँ एक पुजारी और गूर का चयन कर स्थायी रूप से वहीं रहने लगा। भरयाड़ू देवता मार्ग में जिस-जिस गाँव में ठहरा, वहाँ-वहाँ उसने दिव्य शक्ति से लोगों को प्रभावित कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

भुमासी देऊ

गाँव : अलवाह, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : रामपुर बुशैहर।

मंदिर : गाँव गाड़ा गुशैणी।

भंडार : अलवाह।

स्थापत्य : पैगोड़ा शैली में निर्मित मंदिर।

अधिकार क्षेत्र : गाँव अलवाह, पाटन, थाचीधार, रामपुर,

वाड़, शालड़, जौली (मंडी ज़िला)।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में भंडारी, पुजारी, काईथ, कठियाला और जेलता की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः पंचोपचार पूर्वक पूजा तथा शाम के समय आरती।

रथ : छत्रयुक्त खड़ा रथ।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : श्रावण के 14 प्रविष्टे से गाड़ा गुशैणी में तीन दिन का मेला लगता है। कार्तिक संक्रांति की पूर्व संध्या को जागरा होता है, जिसमें हारियान मशालें लेकर मंदिर की परिक्रमा करते हैं। हर तीसरे वर्ष देवता अपनी 'हार' की यात्रा पर जाता है। फाल्गुन मास में निश्चित तिथि को देवता का अवतार दिवस मनाया जाता है। गूर भारथा सुनाने के उपरांत वर्शोहा देता है।

जनश्रुति : प्राचीन समय में रामपुर बुशैहर से कोई व्यक्ति अलवाह गाँव में आकर बस गया। भुमासी देव उसका इष्ट था अतः वह देवता का निशान अपने साथ लाया था और घर में उसकी स्थापना करके उसे पूजता था। जब परिवार का विस्तार हुआ तो उन्होंने देवता के निमित्त मंदिर और रथ का निर्माण किया।

भूहणी देऊ : घटोत्कच

गाँव : जवाहड़, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : जवाहड़।

स्थापत्य : पैगोड़ा शैली में बना त्रिछतीय मंदिर। शिखर पर कलश स्थापित है। काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी है और छतों पर स्लेट बिछे हैं।

अधिकार क्षेत्र : जवाहड़ के आस-पास का क्षेत्र।

प्रबंध : कारदार, पुजारी, गूर, जेलता, काईथ, कोषाध्यक्ष, कठियाला, कटीसर, पालसरा की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा तथा पांसा फेंक कर।

पूजा : प्रातः धूप जलाकर रणसिंघा, शंख व घंटी की ध्वनि के साथ तथा सायं घी या तेल का दीपक जला कर पूजा होती है।

रथ : मोहरों व छत्र से शोभित दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा को *नया संवत्* मनाया जाता है, माघ मास के नौ प्रविष्टे को देवता का जन्मोत्सव, कार्तिक मास में दीपावली। इनके अतिरिक्त बला के मार्कण्डेय व त्रिपुर बाला सुन्दरी के पर्वों में भी शामिल होता है।

जनश्रुति : यह देवता बालक का रूप धारण करके प्रतिदिन भूहणीधार में एक ग्वाले के साथ खेलता व बातचीत करता था। इस तरह इन दोनों में मित्रता हुई। वे पूरा दिन खेलते रहते और गउएँ इधर-उधर भटक जातीं। शाम को यह देव बालक ग्वाल बाल की गउएँ

एकत्र कर उससे विदा होकर अदृश्य हो जाता। कालांतर में ग्वाले ने उससे इसका रहस्य जानना चाहा। उसने बताया कि वह देव घटोत्कच है और उसके गाँव जवाहड़ में स्थापित होकर लोगों का कल्याण करना चाहता है। गाँववासियों को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने मंदिर का निर्माण कर इसे भूहणी धार में प्रकट होने के कारण भूहणी देव के नाम से पूजना आरम्भ किया।
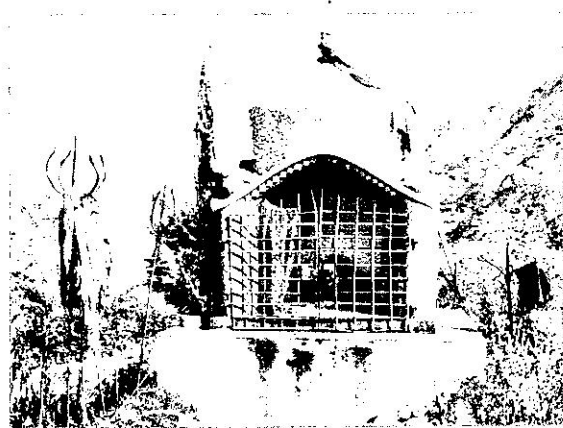
भूहणी भगवती

गाँव : घाट, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : घाट।
स्थापत्य : लगभग 15 वर्ष पूर्व कंकरीट से निर्मित एक लघु मंदिर, जिसके भीतर देवी की मूर्ति तथा मोहरा स्थापित है।
अधिकार क्षेत्र : केवल घाट।
प्रबंध : भंडारी एवं पुजारी द्वारा। कारदार एवं गूर नहीं हैं।
न्याय प्रणाली : देवी द्वारा स्वयं।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से पूजा व आरती होती है।
रथ : नहीं है।
मोहरे : केवल एक, जो मंदिर में रखा जाता है।
मेले-त्योहार : अपना कोई मेला नहीं होता। भादों के प्रथम प्रविष्टे को अनंत बालूनाग अपने हारियानों के साथ देवी के मंदिर में आता है और यहाँ उत्सव मनाया जाता है।
जनश्रुति : दुर्गा रूप भूहणी भगवती घाट क्षेत्र के ठाकुरों की कुलदेवी मानी जाती है। कहते हैं कि क्रूर ठाकुर लोगों पर अत्याचार करते थे और इन्हें मारने के लिए देवी के मंदिर के पास 'रखो' नामक स्थान से नीचे धकेल देते थे। तब देवी ने देव अनंत बालूनाग की सहायता से ठाकुरों का वध किया। ठाकुरों के अत्याचारों से निजात पाकर लोगों द्वारा देवी की पूजा की जाने लगी। कालांतर में इन्होंने देवी के मंदिर का निर्माण किया।

भैरो : ठाहरो भैरो

गाँव : बागी, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : बाह्य सराज का ठाहरा नामक स्थान।
मंदिर : मंदिर नहीं है। देवता का निवास रियालू नाग की बागी गाँव की 'कोठी' में ही है। कोठी की दूसरी मंज़िल में देवता भैरो का रथ और तीसरी मंज़िल में रियालू नाग का रथ रखा जाता है।
भंडार : बागी गाँव में भंडारी के घर में। भंडार में देवता के केवल कीमती वस्त्राभूषण ही रखे जाते हैं।
अधिकार क्षेत्र : देवता रियालूनाग का सम्पूर्ण प्रजा क्षेत्र।
प्रबंध : देवता रियालूनाग की प्रबंध समिति।
न्याय प्रणाली : देवता द्वारा। यह पापी, दुराचारी और अन्याय करने वालों का वंश ही समाप्त कर देता है। कुछ लोग हताश होकर जब देवता की शरण में जाते हैं तो देवता उनका साथ देता है और अपनी शक्ति से दोषी को दंड देता है। मनोकामना पूर्ण होने पर श्रद्धालु को यहाँ बलि देकर पूजा करनी होती है।
पूजा : रियालू नाग का पुजारी ही यहाँ प्रातः पूजा और सायं आरती करता है।
रथ : नहीं है।
मोहरे : नहीं हैं। प्रतीक चिह्न त्रिशूल हैं। मन्नत पूर्ण होने पर देवता को त्रिशूल भेंट किए जाते हैं।
मेले-त्योहार : अपना कोई विशेष उत्सव नहीं होता।

रियालू नाग, मोहनी के हर मेले-त्योहार में शामिल होता है।

जनश्रुति : देवता बाह्य सराज के ठाहूरा नामक स्थान से मोहनी क्षेत्र में आया। यहाँ पहुँच कर देव शक्ति ने किसी व्यक्ति में प्रवेश करके बताया कि वह भैरो है और यहाँ रियालू नाग का सहयोगी बन कर रहना चाहता है। तब लोगों ने रियालू नाग की अनुमति से इसकी वागी गाँव की कोठी में इसे स्थापित कर पूजना आरम्भ किया।

भौइरा देऊ

गाँव : बलागाड़, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : भुआड़ाधार।

मंदिर : बलागाड़।

भंडार : बलागाड़ में कारदार के घर में।

स्थापत्य : पत्थर के चबूतरे पर बनी काष्ठ की चौखट के ऊपर चार स्तम्भों पर आधारित ढलानदार छतवाला मंदिर।

अधिकार क्षेत्र : गाँव कंढेरी व बेह्लो।

प्रबंध : कारदार, भंडारी, काईथ, दरोगों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः पूजा तथा सायं आरती होती है।

रथ : दो अर्गलाओं से उठाया जानेवाला खड़ा रथ।

मोहरे : आठ।

जनश्रुति : यह देवता थाटा, नीरू, मंडी सराज से होता हुआ इस क्षेत्र में आया और यहाँ अपने चमत्कारों से लोगों को प्रभावित करके इनमें पूजित हुआ।

मनु ऋषि

गाँव : धारा देहुरा, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : पटाहरा।

मंदिर : धारा देहुरा।

भंडार : तूंघ, तल्याहरा, बजाहरा, खायण।

स्थापत्य : पत्थर-लकड़ी व लोहे का बना पाँच छतों वाला पैगोड़ा शैली का मंदिर जिसकी ऊँचाई लगभग 65 फुट है।

शाखा मंदिर : गाँव शैंशर।

अधिकार क्षेत्र : गाँव शैंशर, पटाहरा, नीऊली, मझाण, तल्याहरा, बनाऊगी, तूंघ, खायण, बजाहरा। यह देवता पूरी कोठी शैंशर का गढ़पति है।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गोंठीदार, भंडारी, कठियाला, काईथ, गूर, पुजारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ, जिसे दो आदमी आगे-पीछे से उठाते हैं तथा दो अन्य दायीं-बायीं ओर से सहारा देते हैं। शिखर पर स्वर्ण छत्र लगाया जाता है।

मोहरे : आठ। एक अष्टधातु का तथा सात स्वर्ण निर्मित। ये रथ के चारों ओर सजाए जाते हैं।

मेले-त्योहार : 1 प्रविष्टे फाल्गुन तथा 1 प्रविष्टे वैशाख को धारा देहुरा मंदिर में भारथा होती है। फाल्गुन में बकरे की बलि चढ़ाई जाती है। 2 वैशाख को देवता के जन्मदिन के रूप में मनाया जाता है। इसमें हार के सभी लोग मंदिर में एकत्र होते हैं। इसके बाद देवता 9 प्रविष्टे तक सभी गाँवों में जाकर उनका कुशल क्षेम पूछता है तथा आशीर्वाद देता है। वैशाख में ही किसी रविवार को देवता संवा कंढा नामक ऊँची चोटी पर जाकर काली पूजन करता है। कुछ वर्षों के अंतराल में देवता पलदी, फतेहपुर, नग्गर तथा मनाली हारगी पर जाता है। दो या तीन सालों के बाद शाक्टी-मरौड़ तथा रक्तिसर भी जाता है। बारह वर्ष के अंतराल में देवता समूची सैंज घाटी के फेरे पर निकलता है।

जनश्रुति : प्रलय के बाद परब्रह्म ने अपनी इच्छानुसार

विराट रूप धारण कर उससे दो आत्माएँ सृजित कीं जो मनु और शतरूपा के नाम से विख्यात हुए। वे दिल्ली, आगरा, उत्तराखंड होते हुए मनाली आए और उन्होंने नग्गर में जगतीपट्ट लाने में विशेष भूमिका निभाई। वहाँ से शाँघड़ फिर सैंज पहुँचे। धारा देहुरा में देवता के आने के सम्बंध में कथा है कि किसी समय शैंशर के हूल नामक ठाकुर को एक बार बुशैहर के राजा ने बंदी बना लिया। हूल ठाकुर मनु ऋषि का परम भक्त था। उसने जेल में मनु ऋषि से प्रार्थना की कि यदि वह उसे जेल से मुक्त करवाएगा तो वह उसका मंदिर बनवाएगा।

मनु ने उसकी पुकार सुनकर मधुमक्खी का रूप धारण किया और ठाकुर की बेड़ियाँ तथा कारागृह के ताले खोल दिए। हूल ठाकुर ने सकुशल शैंशर पहुँचकर धारा देहुरा में ऋषि का मंदिर बनवाया।

मनु ऋषि

गाँव : सुजाड़, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : सुजाड़ (सजवाड़)।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर, जिसकी तीसरी मंज़िल में ढाई फुट का चौतरफा वरामदा है। चारों ओर को ढलानदार इसकी छत स्लेटों से ढकी है और शिखर पर बदोर लगा है।

शाखा मंदिर : गाँव गणसौर, रोपा, दियाड़ी।

अधिकार क्षेत्र : सुजाड़ गाँव के लगभग 80-85 घर।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में काईथ, पुजारी, दरोगा आदि की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता स्वयं गूर के माध्यम से न्याय करता है।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से। पौष मास में जब देवता के कपाट बंद होते हैं तथा गाँव में पातक होने पर पूजा नहीं होती।

रथ : बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित खड़ा रथ जिसके शिखर पर रजत-छत्र शोभित है।

मोहरे : स्वर्ण निर्मित आठ।

मेले-त्योहार : माघ मास में जब देवता के कपाट खुलते हैं तो पूरे गाँव के लोग देवमंदिर में एकत्र होते हैं और इस अवसर पर बकरे की बलि दी जाती है।

वैशाख संक्रांति को लोग मशालें लेकर मनु ऋषि

के दलित वर्ग के गूर के पीछे-पीछे पूरे गाँव की परिक्रमा करते हैं। ज्येष्ठ संक्रांति को देवता गणसौर के मंदिर में जाता है। इस दिन लोग यहाँ अपने बच्चों के मुंडन करवाते हैं। श्रावण संक्रांति से तीन प्रविष्टे तक देवता की सौह में मेला लगता है। इसमें जब तक घियागी गाँव की बूढ़ी नागिन नहीं आती तब तक मेले का आरम्भ नहीं होता।

मार्गशीर्ष संक्रांति को मेला लगता है। फाल्गुन मास में देवता का गूर प्रांगण में भारथा सुनाता है और हारियान के प्रश्नों के उत्तर देता है।

जनश्रुति : देवता मनुऋषि हिमालय की पर्वतशृंखलाओं में कई स्थानों पर तपस्यारत रहा। वह बशीर दियाड़ी नामक स्थान से चलकर विहार, बीणी होते हुए ताँदी गाँव पहुँचा और उसे अपनी तपस्स्थली बनाया। कुछ समय बाद वहाँ से वह सेरी, सांझा और फिर हिडब नामक स्थान में गया। कालांतर में वह गणसौर गया और वहाँ के लोगों द्वारा पूजित हुआ। गणसौर से देवता सुजाड़ आया और इस गाँव को ही अपना स्थायी निवास बनाया।

मार्कण्डेय

गाँव : पेड़चा, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : थरास का मकराहड़ नामक स्थान।

मंदिर : पेड़चा क्षेत्र का सरंढी गाँव।

भंडार : गाँव बलकेहड़।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पैगोड़ा शैली का मंदिर, जिसकी ढलानदार छतें स्लेटों से ढकी हैं। छत के शिखर पर 'कलश' लगा है।

अधिकार क्षेत्र : पेड़चा व अलवाह।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी, काईथ की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर, रथ, लाड्डू, पांसे, पर्ची द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः पंचोपचार विधि से। पुजारी शंख, घंटी, धड़छ, नरसिंघा की ध्वनि के साथ स्तोत्र गायन करता है।

रथ : शिखर पर छत्रवाला खड़ा रथ।

मोहरे : कुल आठ। इनमें से सात सोने के और एक अष्टधातु का है।

मेले-त्योहार : बैसाख मास की संक्रांति को *हूम* होता है। यह तीन दिनों तक चलता है। 3 बैसाख को 'पड़ियाई' खड़ी की जाती है, श्रावण मास की संक्रांति से 5 दिनों तक देवता सरंढी मंदिर में रहता है। 14-15 श्रावण को *गाड़ा गुशैणी* मेला मनाया जाता है। श्रावण मास की शुक्ल चतुर्दशी को 'हूम' का आयोजन होता है, जिसे *पेड़चा हूम* के नाम से जाना जाता है। फाल्गुन मास की संक्रांति को देवता वर्षफल सुनाता है। यह देवता का मुख्य त्योहार होता है।

जनश्रुति : थरास के मकराहड़ नामक स्थान में राऊल खानदान की एक महिला को खेत में निराई करते समय एक मोहरा मिला। इसे व्यास में स्नान करवा कर मकराहड़ में स्थापित किया गया। वहाँ से देवकला पेड़चा क्षेत्र में पहुँची। पेड़चा के पाटन गाँव में एक निःसंतान वृद्धा रहती थी। एक दिन मार्कण्डेय ऋषि ने साधु का भेस धारण करके इस वृद्धा से दूध माँगा। वृद्धा ने घर में गाय न होने के कारण दूध देने में असमर्थता व्यक्त की। साधु ने उसे गोशाला में जाकर देखने को कहा। वृद्धा जब गोशाला में गई तो वह छह मास की बछड़ी को ब्याई देखकर आश्चर्य चकित हुई। उसने उसे दुहा तो उसके मन में लालच आ गया और उसने उसमें पानी मिलाकर साधु को आधा दूध दिया। तब देवता ने उस वृद्धा को शाप दिया-'ताएं गांईं

रांगा माएं गोंईं खादा।' इससे पाटन गाँव उजड़ गया। तब देवता पेड़चा क्षेत्र के सरंढी गाँव आया। कुछ समय बाद कुल्लू के राजा मान सिंह का इधर से आना हुआ। तब देवता ने राजा को अपना चमत्कार दिखाया, जिससे प्रभावित होकर राजा कोठी मंगलौर के मम्ज़ाँ गाँव से एक ब्राह्मण परिवार को देवता की पूजा-अर्चना के लिए यहाँ लाया। कालांतर में मंदिर व रथ का निर्माण किया गया।
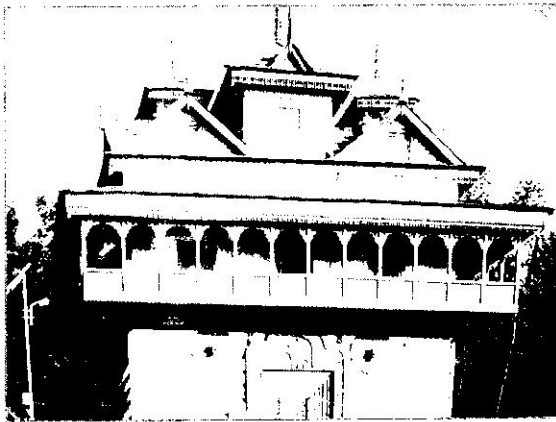
मार्कण्डेय

गाँव : बला, **तहसील** : बंजार।
मूल स्थान एवं मंदिर : बला।
भंडार : खड़वाली।
स्थापत्य : कई खंडों में विभाजित छतों वाला कोट शैली का मंदिर, जिसके प्रवेशद्वार पर सुन्दर नक्काशी हुई है। इसकी दूसरी मंज़िल में चौतरफा अर्ध आवरणयुक्त मेहराबदार बरामदा है।
अधिकार क्षेत्र : फाटी बलागाड़ का बिओं से भलाग्रां तक का क्षेत्र।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, गांठीदार, भंडारी, द्रोगा की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर, रथ, पांसे व लाडू द्वारा।
पूजा : धूप, दीप, अक्षत, चंदन, पुष्प, नैवेद्य चढ़ाकर नरसिंघा, घंटी व शंख ध्वनि तथा चंवर, मोरमुट्ठे के साथ धड़छ द्वारा प्रातः पूजा तथा सायं आरती होती है।
रथ : शिखर पर छत्र तथा मध्य भाग में मोहरों से सजा खड़ा रथ।
मोहरे : कुल आठ। इनमें से सात स्वर्ण निर्मित और एक अष्टधातु का है।
मेले-त्योहार : देव अवतार के रूप में 5 फाल्गुन को मंदिर में उत्सव मनाया जाता है, जिसे *बले तुआर* के नाम से जाना जाता है। श्रावण मास की पूर्णिमा को *हूम* (यज्ञ) होता है। इसी पूर्णिमा से आठ दिनों तक *फेरा री जाच* का आयोजन होता है। इस मेले की एक विशेषता है कि इसमें बारह पारम्परिक लोकगीत गाये जाते हैं। लोग गाँव-गाँव में जाकर लोकनृत्य करते हैं। पौष मास के अंतिम सप्ताह से फाल्गुन मास की संक्रांति तक देवता नरोल में रहता है।
जनश्रुति : यह चंबा ज़िला के भरमौर क्षेत्र से लाहुल स्पीति के त्रिलोकीनाथ स्थान से होते हुए थरास में पहुँचा। वहाँ इसकी चार प्रमुख कलाएँ प्रकट हुईं। मकराहड़ (थरास) की कला को निर्विवाद ज्येष्ठ कला माना गया। थरास से आगे बढ़ कर देवता सजवाड़ में जाकर तपमग्न हुआ। वहाँ से देवता को बला गाँव में स्थापित देवी त्रिपुर वाला सुंदरी अपने साथ लाई और दोनों यहाँ इकट्ठे रहने लगे।

मार्कण्डेय

गाँव : मंगलौर, **तहसील** : बंजार।
मूल स्थान एवं भंडार : गाँव मम्ज़ाँ।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी चारों ओर को ढलानदार छत स्लेटों से आच्छादित है। छत के शिखर पर बदोर लगा है। मार्कण्डेय ऋषि आदि शक्ति के अनन्य भक्त थे, अतः मंदिर में माँ की अष्टभुजा वाली प्राचीन मूर्ति स्थापित है।
शाखा मंदिर : गाँव कढेरी।
अधिकार क्षेत्र : कोठी मंगलौर।
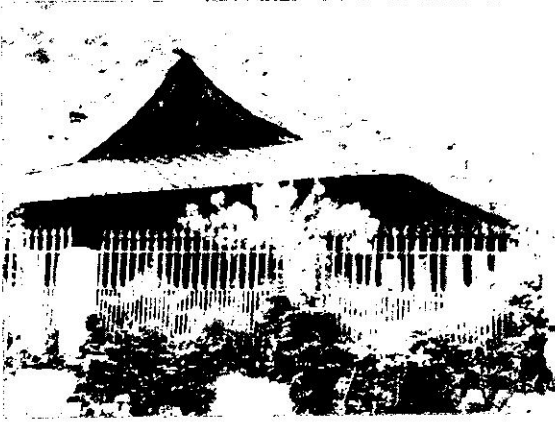
प्रबंध : ज़िलाधीश द्वारा नियुक्त कारदार प्रबंध समिति का मुखिया होता है। देवता की चल-अचल सम्पत्ति की देखरेख कारदार ही करता है। इसमें वह प्रबंध समिति के अन्य सदस्यों-भंडारी, पालसरा, कायथ, कठियाला, जेलता की सहायता भी लेता है।

न्याय प्रणाली : देवरथ, गूर, पौगल, पाँसा, पर्ची तथा कार द्वारा। दोनों पक्षों की सहमति से इनमें से कोई एक प्रणाली अपनाई जाती है। देवता द्वारा किया गया न्याय अंतिम एवं सर्वमान्य होता है। गूर देवता का मुख्य वक्ता होता है। इसका चुनाव गाँव तरंगाली की भगवती गाँव मम्ज़ाँ आकर एक विशेष खानदान से करती है। तब गूर को देवरथ सहित पलदी क्षेत्र के बड़ाग्राँ नामक स्थान पर ले जाया जाता है। वहाँ देवता शेषनाग के माध्यम से गूर में देवकला का समावेश कराया जाता है।

पूजा : मंदिर में तथा देवरथ की पूजा प्रतिदिन प्रातः-सायं की जाती है। पुजारी नित्य कर्म के पश्चात् पूजा के लिए जल, गंध, अक्षत, दुग्ध, पुष्प, धूप-दीप एवं नैवेद्य आदि आवश्यक सामग्री तैयार करता है। तब दूध, गंगाजल एवं सामान्य जल को मिश्रित करके देव प्रतिमाओं को स्नान करवाया जाता है। ततः पाद्य, अर्घ्य एवं आचमन प्रदान किया जाता है।

सायंकाल धूप एवं दीप जला कर पूजा करने के बाद आरती की जाती है। आरती में मोरपंख, चंवर एवं शंख का प्रयोग किया जाता है। अंत में शयन करा कर प्रणाम किया जाता है। विशेष उत्सवों में पंचामृत से विधिवत् स्नान करवा कर चंदन, कुंकुम, अक्षत, पुष्प एवं पुष्पमाला अर्पण की जाती है। तदुपरांत धूप, दीप, नैवेद्य प्रदान किए जाते हैं और चंवर, मोरपंख एवं शंख ध्वनि के साथ आरती के बाद परिक्रमा एवं प्रणाम किया जाता है।

रथ : टोप, छत्र, मोहरों और देववस्त्रों से सजा खड़ा रथ।

मोहरे : कुल आठ। इनमें से मुख्य मोहरा अष्टधातु का, छह सोने के और एक चाँदी का है।

जनश्रुति : मार्कण्डेय ऋषि भृगु नंदन मृकंडु ऋषि के पुत्र माने जाते हैं। इन्होंने एकांत एवं पावन स्थलों में कई-कई वर्षों तक तपस्या की। इन्हीं स्थलों में से मार्कण्डेय ऋषि ने इस क्षेत्र में सर्वप्रथम मम्ज़ाँ और फिर मंगलौर में तपस्या की। बाद में इन स्थानों में भक्तों द्वारा मंदिरों का निर्माण कर इनकी पूजा की जाने लगी।

मुरली मनोहर

गाँव : चैहणी, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : चैहणी।

स्थापत्य : कोट शैली में पत्थर की चौकी पर बना पाँच मंज़िल का पुरातन मंदिर, जिसकी तीसरी व पाँचवीं मंज़िल में चौतरफा बरामदा है जिसमें लगे लकड़ी के स्तम्भों के साथ जंगला लगा है। छत पर स्लेटों का आच्छादन है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव चैहणी तथा विहार।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी और नीहर की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार पूर्वक।

रथ : नहीं है।

मोहरे : केवल मूर्ति है।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में *होली* तथा भाद्रपद मास में *कृष्ण जन्माष्टमी* का पर्व धूमधाम से मनाए जाते हैं। वर्ष में तीन बार यहाँ शृंगा ऋषि आते हैं और *देऊगी* होती है।
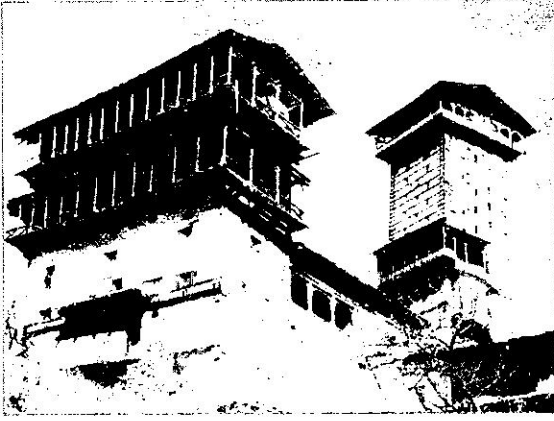
जनश्रुति : किसी समय राजा मंडी ने मंगलौर में भगवान् कृष्ण की मूर्ति स्थापित की थी। बाद में कुल्लू के राजा ने मंडी नरेश को रघुपुर में हराकर मंगलौर से कृष्ण जी की मूर्ति को लाकर चैहणी में स्थापित किया।

रियालू नाग

गाँव : मोहनी, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : कोठी खाड़ागाड़ में रेली़ नामक स्थान।

मंदिर : मोहनी के रियालू जंगल में।

भंडार : गाँव ग्राहों में भंडारी के घर में भंडार है। यहाँ देवता के कीमती वस्त्र-आभूषण रहते हैं तथा गाँव बागी में साढ़े तीन मंज़िल की कोठी है, जिसकी तीसरी मंज़िल में सुसज्जित देवरथ रखा जाता है।

स्थापत्य : पहाड़ी शैली का डेढ़ मंज़िल का मंदिर। इसकी दो ओर को ढलानदार छत स्लेटों से ढकी है और शिखर पर क्रोंशा लगा है।

अधिकार क्षेत्र : मोहनी, धार लशवाल, खूहण खणाला, विरनधार।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी, द्रोगे की समिति।

न्याय प्रणाली : रथ, लाड़ू, पांसे, पर्ची द्वारा।

पूजा : प्रातः पूजा, सायं आरती होती है। पूजा नरसिंघा, घंटी व शंख ध्वनि के साथ पंचोपचार विधि से होती है।

रथ : खड़ा।

मोहरे : कुल आठ। इनमें से एक अष्टधातु का और सात स्वर्ण निर्मित हैं।

मेले-त्योहार : 20 बैसाख को *नागणी जाच,* 20 आषाढ़ को *बैल भिड़ंत,* 5 श्रावण को *बाड़ा री जाच,* भाद्रपद मास की अमावस्या को *हूम,* मार्गशीर्ष मास की अमावस्या को *जागरा* होता है। 12 वर्ष तक अनंत बालू के साथ रहने के कारण देवता कभी-कभी नाग पंचमी के एक दिन पूर्व बालूनाग से मिलने बालो़ जाता है।

जनश्रुति : सर्वप्रथम यह देवता कोठी खाड़ागाड़ के रेली़ नामक स्थान में प्रकट हुआ। यहाँ इसका प्राचीन मंदिर आज भी विद्यमान है। वहाँ से यह मंडी ज़िला के माहूँनाग और शयाटधार से होकर कुल्लू ज़िला के खूहण खणाला तथा विरनधार होता हुआ कोठी शिकारी के गाँव बालो़ में पहुँचा। यहाँ यह देव अनंत बालूनाग के साथ 12 वर्ष तक रहा। तब बालूनाग ने इसे बालो़ के दिव्य शेष सरोवर से जल की तुंबड़ी (लौकी को सुखा कर बनाया एक पात्र) के साथ केलो़ (देवदार) की बूटियाँ (छोटे पेड़) देकर विदा किया। इन्हें लेकर रियालू नाग जब बाहू नामक स्थान में पहुँचा तो वहाँ जोगणियों के साथ द्यूत क्रीड़ा में प्रवृत्त होकर पराजित हुआ। तब जोगणियों ने रियालू नाग की दिव्य जल की तुंबड़ी और केलो़ की बूटियों पर अपना अधिकार कर लिया। आज भी बाहू में जल सरोवर और केलो़ के वृक्ष देखे जा सकते हैं। यहाँ से रियालू नाग ने वापिस बालो़ में आकर पूरी घटना अनंत बालूनाग को सुनाई। तब बालूनाग ने इसे शेष सरोवर के दिव्य जल से भरकर एक अन्य तुंबड़ी और केलो़ के स्थान पर रई वृक्ष की बूटियाँ दीं। प्रसन्नचित्त देव रियालू नाग वहाँ से उन्हें ले कर गाँव मोहनी से ऊपर एक सुन्दर टीले पर जा बसा और वहाँ रई की बूटियों का आरोपण किया और तुंबड़ी के जल से एक सरोवर उत्पन्न किया, जो आज भी यहाँ विद्यमान है। कहते हैं कि इस सरोवर का जल फाटी खाबल के 'थोगी' नामक स्थान में निकलता है। कालांतर में लोगों ने देवशक्ति से प्रभावित होकर गाँव मोहनी के रियालू जंगल में मंदिर का निर्माण किया।

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार मोहनी का क्षेत्र पेड़चा के मार्कण्डेय देव के अधिकार में था। तब टील-बछूट के देवता शंगचूल ने रियालू नाग की सहायता की और मार्कण्डेय को सरंढी नामक क्षेत्र में भेजकर यह स्थान रियालू नाग को प्रदान किया। इसके सम्मान में आज भी *बाड़ा री जाच* में देवता शंगचूल को प्रमुख स्थान दिया जाता है। 'बाड़ा' की रस्म का सीधा सम्बंध देव शंगचूल से माना जाता है।

रुद्रनाग

गाँव : चनालड़ी, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : चनालड़ी।

स्थापत्य : बहुत पुराने चिमू के पेड़ के नीचे कंकरीट का बना एक कक्षीय लघु मंदिर।

अधिकार क्षेत्र : गाँव चनालड़ी, बाड़ी रोपा तथा फाटी शरची के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से तथा गोबर के लाडू द्वारा।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से पूजा तथा आरती।

रथ : मोहरों से सजी करडी।

मोहरे : तीन।

मेले-त्योहार : माघ मास के बीस प्रविष्टे को देवता का *तौआर* मनाया जाता है। इस दिन देवता के गूर द्वारा गाण-भारथा सुनाई जाती है।

जनश्रुति : एक बार माँ गाड़ा दुर्गा यात्रा करते हुए रघुपुर गढ़ पहुँची और वहीं रात्रि विश्राम किया। प्रातः गढ़ की परिक्रमा करते हुए इसकी पाँच वीरों और रुद्रनाग से भेंट हुई। रुद्रनाग ने माँ के चरण स्पर्श करके उसके साथ जाने की इच्छा व्यक्त की। तब माँ ने उसे खुडी जल, बूढ़ी नागिन और लोमश ऋषि से आज्ञा लेकर आने को कहा। माँ के आदेशानुसार वह इन तीनों से आज्ञा प्राप्त कर ढियो, सेरी, जिभी, बंजार, नागणी होते हुए माता गाड़ा दुर्गा के पीछे-पीछे नरसिंह देवता के मूल स्थान बाड़ी रोपा में पहुँचा। वहाँ नरसिंह से वार्तालाप करके बटेहड़ा सेरी नामक स्थान से होते हुए रछैडानाल में रछैडू देवता से मिलने के बाद बंदल में माँ गाड़ा दुर्गा के स्थान में गया। कुछ क्षण वहाँ विश्राम करके झुटली, फरयाड़ी, तिंदर और डिंगचा के देवताओं से दैविक वार्ता करने के बाद चूलीछो नामक स्थान से परिक्रमा करते हुए तीर्थ हंसकुंड में पहुँचा। यहाँ से वह छारन में सनकीर देवता, घाटनाही में चौरासी सिद्ध और शलिंगा में देवता छांजणु से मिलकर रांधीभागी, मनिहार, हंसपुरी, पेखड़ी, देऊकंढा, नडाहर, देहुरी, दाड़ी, छमाहणी, लुहारडा, पारशीधार से होते हुए गुशैणी पहुँचा। गुशैणी में माता गाड़ा दुर्गा की आज्ञा लेकर चनालड़ी चला गया। वहाँ ब्राह्मण, राजपूत और दलित वर्ग के लोग रहते थे। इनमें से दलित समुदाय के लोग माघी उत्सव के लिए जौ की सूर (नशीला पेय) बनाते थे। यह कार्य दलित वर्ग का एक गूँगा करता था। वह राजपूतों और ब्राह्मणों के पशु चरा कर उनसे इसके बदले में जौ लेकर उसकी सूर बनाता था। एक बार वह श्मशान के पास चिमू (शहतूत प्रजाति का पेड़) के पेड़ के नीचे बैठकर घड़े से सूर निकाल कर पी रहा था। उसे देखकर रुद्रनाग की भी सूर पीने की इच्छा हुई। तब उसने गूँगे के जूठे गिलास से ही सूर पी ली और भेखल की टहनी से उसे वाणी दे दी। उसी समय वहाँ माता गाड़ा दुर्गा, लोमश ऋषि, नरसिंह और शिरडू महावीर प्रकट हुए। दलित का जूठा पीने के कारण माता गाड़ा दुर्गा ने उसे दलित

समुदाय के बीच रहने और नरसिंह की सेवा करने का आदेश दिया। यह कहकर वे सभी अदृश्य हो गए। कुछ समय बाद देवता को मानने और पूजने की बात आई तो ब्राह्मण समुदाय के लोगों ने उसे मानने से इनकार कर दिया। तब रुद्रनाग ने ब्राह्मणों की पूरी बस्ती को नष्ट करने का संकल्प लिया और अपनी हुंकार से श्मशान की सारी राख इकट्ठी की और चिमू के पेड़ के नीचे अपने धूने से त्रिशूल व चिमटा निकालकर अग्नि और राख को पानी में मिलाकर पी लिया। देखते ही देखते ब्राह्मणों की बस्ती नष्ट हो गई। तब राजपूत और दलित समुदाय के लोगों ने नाग देवता से क्षमा माँगते हुए कहा कि वे निर्दोष हैं, उन्हें क्षमा करें। वे उसकी इसी स्थान पर पूजा-अर्चना करेंगे। अपने प्रति उनकी अगाध श्रद्धा देखकर रुद्रनाग शांत हो गया और इस स्थान से श्मशान को दूसरी जगह बदलने का आदेश देकर माता के कठाणी ब्राह्मणों को बुलाकर गंगाजल और दूध से इस स्थान को पवित्र करने की बात कही। लोगों ने वैसा ही किया और इसकी यहाँ पूजा होने लगी।

लक्ष्मी नारायण

गाँव : कलवारी, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान एवं मंदिर : कलवारी।
भंडार : गाँव रंबी।
स्थापत्य : पत्थर की चौकी पर काष्ठ से निर्मित पैगोड़ा शैली का त्रिछतीय मंदिर जिसके शिखर पर कलश स्थापित है और छतों पर स्लेटों का आच्छादन है।
शाखा मंदिर : गाँव मझौली, फगरौट, बुहारा।
अधिकार क्षेत्र : गाँव देहुरी, कलवारी, मझौली, बुहारा, लेशा, नणौत, फगरौट, रंबी, नगाहर, शपनील, शहिल, सुथला। देवता तीन कोठी का स्वामी है।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पुजारी, गूर, पालसरा, भंडारी, धामी, काईथ और कठैला की समिति।
न्याय प्रणाली : पूछ डालकर, पासे से, स्वयं देवता द्वारा।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचारपूर्वक। पौष मास में जब देवता नरोल में होता है तब पूजा नहीं होती।
रथ : स्वर्ण छत्रयुक्त खड़ा रथ। इसके अतिरिक्त एक करडू।
मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा सात मोहरे स्वर्ण के।
मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नए संवत् के दिन देव-रथ नरोल से निकल कर देव-प्रांगण में आता है और वहाँ देव-कार्यवाही होती है। वैशाख संक्रांति के दिन देवता सभी हारियान और बाजे-गाजे के साथ अपनी जेठी 'बढ़' रंबी जाता है। तीन प्रविष्टे को वहाँ से खनयूड़ और फिर

कालरगढ़ जाता है, जहाँ देवता का मिलन कांडेनाग सदाशिव (पलाछ) से होता है। रात्रि के समय वहाँ पर दुर्गा की पूजा तथा भजन होता है।

ज्येष्ठ मास में *कुज़ी पर्व*, जिसमें सर्वप्रथम कारदार के घर से देवता को कुजी-पुष्प चढ़ाए जाते हैं, तत्पश्चात् देवता की पूरी हार के लोग फूल चढ़ाते हैं।

आषाढ़ मास में जुलाई पर्व का आयोजन, जिसमें देवता अपने हारियान और बजंतरियों सहित जौ के खेत में नाचता है। ऐसा माना जाता है कि उसके बाद जौ की फसल खूब अच्छी होती है।

भाद्रपद तथा फाल्गुन मास में मझौली गाँव में *हूम उत्सव* मनाया जाता है। देव-कार्यवाही होती है।

आश्विन मास में *शयरी मेला* देहुरी नामक गाँव में लगता है।

पौष संक्रांति को देवकार्यवाही के बाद लक्ष्मीनारायण नरोल में चले जाते हैं। माघ संक्रांति को देवता के एक मोहरे को बाहर निकाला जाता है। चौदह माघ को करड़ू में विराजित हो देवता फरगौट गाँव जाता है, जहाँ पूजा के पश्चात् शाम के समय देवता रंबी गाँव जाकर पाँच दिन तक वहीं रहता है। माघ के बीस प्रविष्टे को कोठी मंदिर कलवारी में आता है। उसके बाद देवता फरगौट जाता है, जहाँ देव-कार्यवाही होती है और उसी दिन मझौली गाँव में मेला लगता है जिसमें सभी हारियान सम्मिलित होते हैं।

जनश्रुति : यह फाटी कलवारी का प्रमुख देवता है।

लक्ष्मी नारायण

गाँव : चिपणी, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : चिपणी।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित कोटशैली का साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर। इसकी छत स्लेटों से ढकी है। तीसरी मंज़िल में चौतरफा ग्लेज़्ड बरामदा है।

शाखा मंदिर : गाँव मझटन, मझौली।

अधिकार क्षेत्र : समस्त कोठी तुंग।

प्रबंध : देवता द्वारा चयनित कारदार, भंडारी, पुजारी, मेहता, गूर व दरोगों की समिति।

न्याय प्रणाली : बकरे भरना, लाड़ू एवं पगल़ पद्धति द्वारा। वर्तमान समय में देवता का कोई गूर नहीं है। सहयोगी देवता पाँचवीर, चिपणी का गूर ही देवता की कार्रवाई निभाता है।

पूजा : प्रातः-सायं प्रतिदिन पंचोपचार विधि से। देवता का कारदार एवं देव ब्राह्मण पूजा का काम करते हैं।

रथ : खड़ा रथ, जिसके शीर्ष भाग में टोप के ऊपर रजत निर्मित छत्र सजा होता है।

मोहरे : एक मुख्य मोहरे के अतिरिक्त स्वर्ण, रजत तथा अष्टधातु के सात-सात मोहरे।

मेले-त्योहार : देवता के वर्ष में चार मुख्य त्योहार मनाए जाते हैं। फाल्गुन मास की संक्रांति को *देव-जन्मोत्सव* मनाया जाता है, बैसाख मास के 3 प्रविष्टे को *बैसाखी* होती है। इसमें ध्वजारोहण होता है, श्रावण मास की
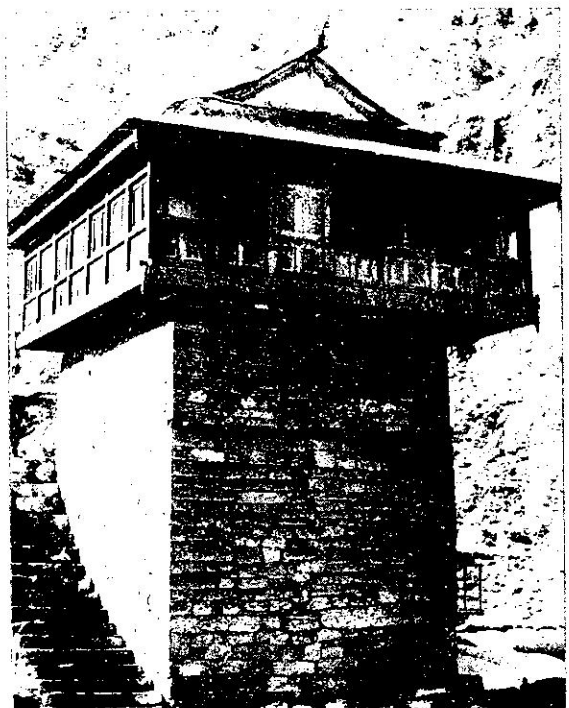
पूर्णिमा को *रक्षा बंधन* तथा मार्गशीर्ष मास में *बूढ़ी दीवाली* मनाई जाती है।

जनश्रुति : प्राचीन समय में यह देवता दिल्ली रियासत का राजा था। इसे रियासत का कार्य उचित नहीं लगा और यह रियासत को छोड़ कर हिमालय की ओर चल पड़ा। चलते-चलते पहले यह कांगड़ा पहुँचा। वहाँ इसे स्थान नहीं मिला और यह चम्बा चला गया। यह स्थान उसे ठीक नहीं लगा, अतः अपनी एक कला यहाँ छोड़ कर कुल्लू के सुलतानपुर में डेरा जमाया। कुछ समय बाद यहाँ से चल कर बंजार में चैहणी नामक स्थान में पहुँचा। यहाँ मणमुंडे नामक आदि मानव रहते थे। देवता ने उनके साथ युद्ध करके उनका विनाश किया और वहाँ से आगे चल कर बशीर गाँव से होते हुए ठारी नामक स्थान में पहुँचा। यहाँ खार-भार गुग्गुल जलाने के बाद यह ब्राह्मण भेस में गाँव चिपणी (प्राचीन नाम श्रीनगर) में पहुँचा। कालांतर में अपने सत्कर्म से इसने देवत्व प्राप्त किया। जिस-जिस स्थान में यह रहा वहाँ-वहाँ पूजित हुआ।

लक्ष्मी नारायण

गाँव : चेड़ा, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : धाऊगी।

मंदिर : थणी चेड़ा।

भंडार : गाँव लायड़ा में कारदार के घर में।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से कोट शैली में बना साढ़े-तीन मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलानदार छत पर स्लेटों का आच्छादन है। तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। मंदिर के शिखर पर 'कोर' स्थापित है।

शाखा मंदिर : गलून गाँव में मधेऊल।

अधिकार क्षेत्र : फाटी थणी के चेड़ा, लायड़ा, गलून, थणी, बेऊगी आदि गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, पालसरा, काईथ, धामी और जेलता की समिति।

न्याय प्रणाली : पूछ डालकर, लाडू विधि से, कश-विष की बावड़ी के पानी से। चेड़ा गाँव में दो बावड़ियाँ हैं। अगर किसी का आपस में झगड़ा हो जाए तो उन्हें इन बावड़ियों का जल पिलाया जाता है और सच-झूठ का फैसला किया जाता है। झूठे साबित हुए व्यक्ति को दंडस्वरूप प्रीति-भोज का आयोजन करना पड़ता है, अन्यथा वह देवता के कोप का भाजन बनता है।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः की पूजा शास्त्रोक्त विधि से पुजारी द्वारा की जाती है, जबकि शाम की आरती मधेऊल करता है।

रथ : सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर छत्र सुशोभित है।

मोहरे : आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का तथा सात स्वर्ण निर्मित।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को *फागली* उत्सव, जिसमें देवता नरोल से बाहर आता है, देव कार्यवाही होती है और गूर भारथा और बर्शोहा सुनाता है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को *नया संवत्* का त्योहार मनाया जाता है। देवता सौह में निकलता है और देव-कार्यवाही होती है। ज्येष्ठ संक्रांति को लक्ष्मीनारायण चेड़ा गाँव जाता है और वहाँ देवविधि के पश्चात् मेला लगता है। श्रावण पूर्णिमा को *रक्षा बंधन* का त्योहार मनाया जाता है और देवता की पूजा की जाती है। दशहरे को देवता अपनी हार में जाता है जहाँ हारियानों द्वारा उसका खूब स्वागत किया जाता है।

लक्ष्मी नारायण

गाँव : तिंदर, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : तिंदर।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है।

शाखा मंदिर : डिंगचा, काऊँचा।

अधिकार क्षेत्र : फाटी तिंदर व फाटी पेखड़ी के सारे गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी,

मेहता, दरोगा आदि की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः पंचोपचार विधि से पूजा तथा सायंकाल में आरती।

रथ : स्वर्ण व रजत के अलंकारों से सजा खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर छत्र शोभित है। इसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : प्रथम वैशाख को *पड़ेई* (ध्वजारोहण) उत्सव, 2 प्रविष्टे भादों को देव मंदिर में *जागरा* होता है। *दीपावली* उत्सव तथा *फागली* मनाई जाती है। तीन वर्ष के अंतराल में श्रावण मास में मेले का आयोजन होता है।

जनश्रुति : सर्वप्रथम देवता दिल्ली में प्रकट हुआ। वहाँ से वह भूपकाण्डे होते हुए दयार नामक स्थान पर पहुँचा। वहाँ उसने जोगिनियों के साथ जुआ खेला। तत्पश्चात् वह धामण, कलवारी होकर तिंदर पहुँचा और लोगों में पूजित हुआ।

लक्ष्मी नारायण

गाँव : फरयाड़ी, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : गाँव मझटण।

मंदिर एवं भंडार : फरयाड़ी।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर जिसकी छत स्लेटों से ढकी है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव फरयाड़ी, रिखली, धार, मनाणी, धारा शलींगा।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी, दरोगों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर, रथ व गोबर के लाडू द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से पूजा तथा आरती।

रथ : अंगाह की लकड़ी से बना खड़ा रथ।

मोहरे : मुख्य मोहरा अष्टधातु का। इसके अतिरिक्त सात सोने के और सात चाँदी के।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति से दो दिवसीय *फागली*, बैसाख के 10-11 प्रविष्टे को *फरयाड़ी* मेला, 7-8 आषाढ़ को *अषाढ़णु मेला*, भाद्रपद मास की अमावस्या को धार में *जगराता*, आश्विन मास के 10 प्रविष्टे को *गोशैणी मेला*, मार्गशीर्ष मास में *दियाली*।

जनश्रुति : यह देवता इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) से आकर कोठी तुंग के मझटण गाँव में प्रकट हुआ। उस गाँव में एक विधवा रहती थी। एक दिन उसने अपने खेत की बिजाई के लिए कुछ लोग बुलाए। वहाँ के म्लेच्छ ठाकुर अठारह जोड़े बैल लेकर उसके खेत में हल चलाने लगे। दिन के समय विधवा बैलों को घास और ठाकुरों को भोजन ले जाने के लिए घर गई। जब वह भोजन और घास लेकर खेत को जाने के लिए तैयार हुई तो देवता ने साधु का भेस धारण करके उससे भोजन की माँग की। औरत ने यह कहकर उसे भोजन देने में असमर्थता जताई कि अभी उसे खेत में काम कर रहे ठाकुरों को भोजन और बैलों को घास ले जाने में देरी हो जाएगी, जिससे ठाकुर नाराज़ होंगे। तब साधु ने उसे कहा कि वह बैलों के लिए केवल एक काश (खुली मुट्ठी का माप) घास और ठाकुरों के लिए एक पिभरी (गेहूँ-जौ की बीच से खोखली डाली) भर सूर (सुरा) ले जाए। इससे वे संतुष्ट हो जाएँगे और तुरंत वापिस आकर उसे भोजन खिलाए। तब विधवा ने वैसा ही किया जैसा साधु ने कहा था। सचमुच, ठाकुर उस पिभरी भर सूर से और बैल मुट्ठी भर घास से तृप्त हो गए। म्लेच्छ ठाकुरों को यह सब देख कर आश्चर्य तो हुआ लेकिन अहंकार के कारण वे किसी भी शक्ति को मानने के लिए सहमत नहीं थे। उनमें से एक ने कहा-गईण चुटली सिरे थामले, धरतन फुटली हाथे ढाकुले। यानी आकाश टूटेगा तो सिर पर थामेंगे और यदि धरती फट जाएगी तो हाथ से पकड़ लेंगे। औरत ठाकुरों को खाना खिला कर घर लौटी। घर पहुँच कर उसने साधु को खाना खिलाया। साधु ने उससे भोजन के साथ-साथ दूध भी माँगा। स्त्री ने साधु को कहा कि उसके पास केवल छोटी बछड़ी है अतः वह उसे दूध नहीं दे सकती। साधु ने उसे कहा-बछड़ी को दुह कर देखो, वह अवश्य दूध देगी। जब स्त्री ने बछड़ी

को दुहा तो उसके थनों से दूध निकलना शुरू हो गया। उसने दूध दुह कर साधु को पिलाया। साधु ने उस स्त्री को घर के अन्दर बैठे रहने को कहा और स्वयं गाँव के पीछे ठेहरा नामक स्थान पर जाकर म्लेच्छ ठाकुरों को सावधान किया, परन्तु अहंकारी ठाकुर तनिक भी नहीं घबराए। तब साधु ने अपनी गज़ से धार (पर्वत की चोटी) पर प्रहार किया और धार गिरने से सभी म्लेच्छ ठाकुर उसके नीचे दब कर मर गए। उसी समय देव शक्ति से वह विधवा वहाँ से उड़कर किन्नौर के शुआ-कमरू नामक स्थान में प्रकट हुई, जहाँ आज भी उसकी देवी के रूप में मान्यता है। उसके पश्चात् साधु भेस धारी देवता का चिपणी के लक्ष्मी नारायण से मिलन हुआ। चिपणी नारायण ने उसे फरयाड़ी मरौड़ नामक स्थान दे दिया। इस स्थान में मरौड़ू ठाकुरों का शासन था। कुछ समय बाद देवता ने इन ठाकुरों को अपनी शक्ति का आभास करवाया। तब लोगों ने फरयाड़ी गाँव में इसे स्थापित कर पहले करंडी रूप में मानना शुरू किया और बाद में मिलजुल कर रथ का निर्माण किया। आज यह लक्ष्मी नारायण फरयाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है।

लोमश ऋषि

गाँव : ढियो, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : लगीशर गाँव।

मंदिर एवं भंडार : ढियो।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से कोट शैली में बना तीन मंज़िल का मंदिर। इसकी ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है। शिखर पर कलश सुशोभित है। मंदिर की परौल (मुख्य-द्वार) तथा देवता के कक्ष में काष्ठ पर सुंदर नक्काशी की गई है। निचली मंज़िल में एक विशाल हवन-कुंड है।

अधिकार क्षेत्र : सेरी बढ़ के 65 टोल तथा ढियो बढ़ के 90 टोल।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में मेहता, दरोगा, काईथ, कठियाला, जेलता और मंढारी की समिति। कारदार का

चुनाव 'हारियान' द्वारा सर्वसम्मति से होता है।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, पोगले डालकर।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : अंगाह की लकड़ी का बना खड़ा रथ, जिसे चाँदी से मढ़ी दो अर्गलाओं से उठाया जाता है। रथ का लकड़ी से बना भाग चेली और उससे ऊपर का भाग गला कहलाता है। इस भाग में चारों ओर दो-दो मोहरे लगते हैं। गले से ऊपर का भाग शीव कहलाता है जिस पर चुरू जानवर की पूँछ के बाल लगाए जाते हैं, जिन्हें बाँबल कहते हैं। बाँबल के ऊपर छत्र सज्जित होता है।

मोहरे : कुल आठ। इनमें से 'मुलीमुख' अष्टधातु का व सात रजत निर्मित हैं। दो छत्र स्वर्ण व रजत के हैं। इसके अतिरिक्त एक ताज, बाँग, कंठी और दो तवीत (ताबीज़) हैं। सभी आभूषण स्वर्ण निर्मित हैं।

मेले-त्योहार : 25 प्रविष्टे फाल्गुन को गल्हों नामक स्थान पर *फागली* का आयोजन। इसमें देवता की हार के समस्त लोग यहाँ एकत्र होकर देवता से आशीर्वाद लेते हैं। गूर देवता की भारथा सुना कर 'बर्शोहा' देता है। 30 प्रविष्टे

फाल्गुन को ढियो में *शैली* त्योहार मनाया जाता है, जिसका उद्देश्य देवता को देवासुर संग्राम में आई चोट का उपचार व आने वाले वर्ष में फसल, पशुधन व प्रजा के हित के लिए उपाय करना है।

वैशाख संक्रांति से 3 प्रविष्टे तक देवता का रथ टुंगर सौह में निकलता है। यहाँ लगने वाले मेले में पड़ोसी देवता शंगचूल भी शामिल होता है। 5 प्रविष्टे वैशाख को लगीशर में *शखारण* त्योहार मनाया जाता है। इसमें एक से लेकर पाँच तक बलियाँ चढ़ाई जाती हैं। श्रावण संक्रांति वाले दिन ढियो गाँव के साथ लगते नाले के पास मेला लगता है। इसमें लगीशरी, काइलरण तथा थामट देवता के गूर बारी-बारी से 'देऊखेल' करते हैं। भादों मास की संक्रांति से पहले दिन देवता सेरी गाँव में आता है। वहाँ दो दिन का मेला लगता है। इसमें दिन के समय केवल पुरुष ही नाचते हैं जबकि रात को नाटी में स्त्री-पुरुष इकट्ठे नाचते हैं। 2 प्रविष्टे भादों को देवता टुंगर सौह में पहुँचता है। वहाँ मेला लगता है। रात को ढियो में विश्राम कर 3 प्रविष्टे को देवता जगतपुर गढ़ जाता है। वहाँ से लौटने पर पुनः टुंगर मेले का आयोजन होता है, जिसमें पड़ोसी देवता शंगचूल और भुमासी भी आते हैं।

अनन्त चौदश की रात्रि को देवता का *जागरा* होता है। यह कभी भादों तो कभी आश्विन मास में आती है। यह जागरा देवता के आदि स्थान लगीशर में मनाया जाता है। इसमें गशीणी गाँव के लोग मशालों के साथ रात्रि के प्रथम प्रहर में पहुँचकर सदौऊड़ी बजाकर, ढाई फेरे नाटी लगाकर एक कुंड में अग्नि प्रज्वलित करते हैं। दूसरे प्रहर में सेरी बढ़ के लोग भी मशालों के साथ पहुँच कर सदौऊड़ी बजाकर ढाई फेरे नाटी नाचते हैं। तीसरे प्रहर में ढियो बढ़ के लोग देवता को लेकर आते हैं। देवता से पूछ डाली जाती है। तत्पश्चात् एक अन्य कुंड में अग्नि प्रज्वलित करके देवता की पूजा-अर्चना की जाती है। प्रातः पाँच बजे देवता का गूर खेलता है और हारियान तथा अन्य श्रद्धालुओं को सरसों देता है। मार्गशीर्ष संक्रांति को देवता कलौटी नामक स्थान पर जाकर जोगिनियों की पूजा करता है।

जनश्रुति : देवता लोमश ऋषि की पिंडी लगीशर नामक स्थान पर स्वतः प्रस्फुटित हुई थी। इसके चमत्कारपूर्ण कृत्यों के कारण अन्य स्थानों में भी इसकी ख्याति फैली और वहाँ के लोगों ने भी इसे पूजना आरम्भ किया।

लोमश ऋषि

गाँव : पेखड़ी, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पेखड़ी।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से कोट शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर, जिसकी तीसरी मंज़िल में चारों ओर बरामदा है। चौतरफा ढलानदार छत पर स्लेटें आच्छादित हैं और शिखर पर बदोर स्थापित है।

शाखा मंदिर : देओ कांडा।

अधिकार क्षेत्र : पेखड़ी और शरची फाटियों के समस्त गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी, उपकारदार, दरोगे आदि की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, रथ द्वारा, गोबर के लाड़ू, हिठ या पर्ची द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पूजा व आरती।

रथ : अंगाह वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर चाँदी का छत्र सुशोभित है।

मोहरे : आठ। एक अष्टधातु का तथा सात स्वर्ण के। इन्हें रथ के चारों ओर सजाया जाता है।

मेले-त्योहार : 20 प्रविष्टे माघ के बाद आनेवाले रविवार को देवता का *तुआर* होता है। उस दिन देवता का गूर भारथा सुनाता है और बर्शोहा देता है। 1 प्रविष्टे फाल्गुन को देवता का मोहरा प्रातः चार बजे मंदिर से निकलता है और अपनी हार के प्रत्येक घर में जाता है, जहाँ पूज मनाई जाती है। उसी दिन शाम के समय *फागली* उत्सव आरम्भ होता है जो दो दिन तक चलता है। 3 प्रविष्टे फाल्गुन को लोमश का रथ बाजे-गाजे के साथ मेला मैदान में निकलता है। साथ ही सरी नाग की करड़ी निकलती है। दोनों के

मिलन के बाद *त्यार* आरम्भ होता है और शाम के तीन बजे समाप्त होता है।

4 प्रविष्टे फाल्गुन को देवता प्रातः छामणी गाँव जाता है। वहाँ भी लोग घर-घर देवता की पूजा करते हैं और पूरी हार देव-स्नान के लिए मंदिर में एकत्र होती है। स्नान के बाद शाम को देवता छामणी जाता है और अगले दिन वहाँ मेला लगता है। 3 प्रविष्टे को अपने मूल स्थान देवकंडा के लिये प्रस्थान करता है और वहां पूजा होती है। उसी शाम को देवता पेखड़ी लौट आता है।

वैशाख मास में ही प्रति वर्ष सरीनाग के मंदिर के पास जग किया जाता है।

ज्येष्ठ मास के 1 प्रविष्टे को लोमश ऋषि का मूल मोहरा देवकंडा जाता है। वहाँ पर जौ की नई फसल के 'सलाहर' लगाए जाते हैं और देवता को सत्तू का भोग लगाया जाता है। उसी दिन शाम को देव-रथ कुजी लगाने छामणी जाता है। पाँच या छह दिन बाद छामणी से देवता कुजी लगाने मनिहार आता है। वहाँ से तीन-चार दिन बाद पेखड़ी लौटता है, जहाँ कुजी लगाई जाती है।

आषाढ़ के 1 प्रविष्टे को पेखड़ी में *शाढ़नू* मेला लगता है। 1 प्रविष्टे श्रावण को *शणयाच* का मेला होता है। इस दिन पुहाल ऊँचे स्थानों से जई के फूल लाते हैं, जिसमें देवता की कला आती है। ये फूल कारदार सभी लोगों को देता है। उसके बाद शाम से देवता सात दिन तक कारदार के घर में ही बैठता है।

5 भादों को जब देवी गाड़ा दुर्गा पेखड़ी पहुँचती है और तीसरे दिन दोनों रथ छामणी जाते हैं, जहाँ नागणी मेला होता है। वहां पर बूढ़ी नागण को नचाया जाता है।

7 प्रविष्टे आश्विन को देवता देऊरी जाता है। वहाँ कलवारी का देवता लक्ष्मी नारायण भी आता है। दोनों का मिलन होता है।

मार्गशीर्ष अमावस को पेखड़ी में *दैऊली* मनाई जाती है। इसी मास पेखड़ी में देवता भरयाड़ू के पास *जग* का आयोजन होता है। इस जग के बाद लोमश ऋषि को नरोल पड़ता है जो माघ के एक प्रविष्टे को खुलता है।

जनश्रुति : पेखड़ी में चाईले वंश के एक व्यक्ति को खेत में हल चलाते हुए एक मोहरा मिला। वह उसे लेकर पंडित के पास गया और पूछ डाली तो पता चला कि यह लोमश ऋषि है। वह उस मोहरे को घर तो ले आया परन्तु पूजा करने में असमर्थ था। इसलिए उसने रहेड़ा वंश के व्यक्ति को देवता की पूजा का काम सौंप दिया। किसी कारणवश रहेड़ा खानदान के समूल समाप्त हो जाने पर जुफरा खानदान के लोग देवता के पुजारी बने और वर्तमान में भी इसी वंश से पुजारी नियुक्त होता है।

लोमश ऋषि

गाँव : बशीर, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : लॉमी चूल नामक स्थान।
मंदिर : बशीर।
भंडार : गाँव कंडीधार।
स्थापत्य : पत्थर की चौकी पर लकड़ी से बना डेहरा, जिसकी ढलवाँ छत चार स्तम्भों पर आधारित है। यह चारों ओर से खुला है। स्लेटों से आच्छादित छत के शिखर पर बदोर स्थापित है। अग्रभाग में धौज़ (काष्ठ की ध्वजा) खड़ी है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव बशीर, कंडीधार-टीमी, शाईरोपा-ठाणेधार, गहीधार, जिला बशीर।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार पूर्वक।
रथ : अंगाह की लकड़ी का खड़ा रथ जो बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सज्जित है। शीर्ष पर रजत-छत्र शोभित है तथा चारों ओर मोहरे स्थापित हैं।
मोहरे : आठ।
मेले-त्योहार : देवता का *तुआर उत्सव, बशीर देऊगी, निचला बशीर देऊगी, दयाड़ी हूम, कंडीधार देऊगी*।
जनश्रुति : किसी समय भींयू और रतन नाम के दो भाई गुग्गुल जड़ी को खोदने के लिए ऊँचे पहाड़ों की ओर गए।

चलते-चलते वे दोनों जब लॉमीचूल नाम की चोटी पर पहुँचे तो उन्हें आवाज़ सुनाई दी-मैं आऊँ। आवाज़ सुनकर उन दोनों ने इधर-उधर देखा परन्तु उन्हें आस-पास कोई न दिखाई दिया। जड़ी इकट्ठा करके वे विश्राम करने बैठे तो मैं आऊँ-मैं आऊँ की ध्वनि लगातार सुनाई देने लगी। उन्होंने उत्तर में कहा-आ जा। ऐसा कहते ही उनके सामने एक पिंडी प्रकट हुई और उसमें से आवाज़ आई कि मैं लोमश ऋषि हूँ और तुम्हारे साथ जाना चाहता हूँ। ऐसा सुनकर उन्होंने उस पिंडी को उठा लिया और चोटी से नीचे उतर कर घलियाड़ नामक स्थान पर विश्राम किया। कुछ समय वहाँ बिताने के बाद वे वहाँ से चल पड़े और वशीर पहुँचे। आजीविका के लिए उन्होंने वहाँ की भूमि पर अनाज आदि बोना आरम्भ किया। जिस पिंडी को वे साथ लाए थे, उसे समीप ही स्थापित कर उसकी पूजा-अर्चना करने लगे। देवता की कृपा से उनके घर में किसी वस्तु की कमी न रही। तब बशीर गाँव के स्थानीय लोगों ने भी ऋषि को पूजना आरम्भ किया और उसके निमित्त मंदिर का निर्माण किया। समय के साथ-साथ जनसंख्या-वृद्धि हुई तो गाँव का क्षेत्रफल बढ़ा और देवता की प्रसिद्धि साथ के गाँवों में भी हुई। तब गाँववालों ने ऋषि के लिए रथ व मोहरों का निर्माण किया। लॉमीचूल से आने के कारण देवता को लमचूली ऋषि भी कहा जाता है।

वासुकी नाग

गाँव : थाटी बीड़, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : थाटी बीड़।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित देशज शैली का मंदिर, जिसकी ढलानदार छत पर स्लेट बिछे हैं। काष्ठ पर सुन्दर कलाकृतियाँ उकेरी गई हैं।
शाखा मंदिर : शलाईर, बागी, गनेउली।
अधिकार क्षेत्र : फाटी थाटी बीड़, कोठी गोपालपुर, कोठी बूंगा।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, पालसरा, भंडारी, धामी, काईथ, कठियाला तथा चार गाँवों से चार सदस्यों की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, पर्ची डालकर तथा पासा फेंक कर।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पुजारी, गूर व धामी घंटी-धड़छ से देवता की पूजा करते हैं।
रथ : खड़ा रथ जिसके शीर्ष पर स्वर्ण का छत्र सुशोभित है और चारों कोनों पर फुल्लियाँ लगी हैं।
मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा शेष स्वर्ण निर्मित हैं। ये रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं। विशेष त्योहारों के अवसर पर वासुकी नाग के मुख्य मोहरे की बगल में एक ओर खोड़ू देवता तथा दूसरी ओर जुहगू देवता के छोटे मोहरे भी लगाए जाते हैं।
मेले-त्योहार : माघ की संक्रांति को *फागली* मनाई जाती है, जिसमें कोठी बूंगा के गाँव चकुरठा तथा पढारनी से लोगों की टोलियाँ हाथों में मशालें लेकर थाटी बीड़ आती हैं। स्थानीय लोग अलाव जलाते हैं और उसकी परिक्रमा करते हैं। चेहरों पर मुखौटे लगाकर रात को अश्लील गालियाँ देते हैं। ऐसी मान्यता है कि इससे दुष्ट शक्तियाँ भाग जाती हैं। वैशाख मास में *बिरशू,* श्रावण में *नाग पंचमी, नाहुली मेला,* आश्विन में *शौयरी मेला,* मार्गशीर्ष में *दिवाली*।
जनश्रुति : सर्वप्रथम देवता का वास मणिकर्ण झील में था। एक बार वहाँ स्नान करते हुए पार्वती के कर्णाभूषण की मणि जल में गिर गई तो शेषनाग की आज्ञा से वासुकी ने वह मणि ढूँढ कर पार्वती को दी। पृथ्वी पर आकर वह एक मोहरे के रूप में परिवर्तित हो गया। वह मोहरा वहाँ किसी गद्दी को मिला। वह उसे अपने साथ ले आया और ननेउली नामक स्थान पर पहुँचा जहाँ ठाकुरों का राज था। जब उन ठाकुरों को मोहरे के बारे में पता चला तो उन्होंने उस गद्दी से वह मोहरा छीनकर अपने कब्ज़े में ले लिया। कुछ समय पश्चात् उनमें आपस में युद्ध होने लगा, जिसमें कुछ ठाकुर मारे गए तथा शेष वह स्थान छोड़कर दूसरी जगह चले गए। देवता का मोहरा पतयाल नामक स्थान पर रह गया। इसी बीच थाटी बीड़ के एक निस्संतान दम्पती को स्वप्न में दर्शन देकर देवता ने बताया कि अमुक

स्थान पर उसका मोहरा पड़ा है। उसे घर लाकर अगर वे उसकी पूजा करेंगे तो उनके अवश्य ही संतान होगी और उनका परिवार खूब फूले-फलेगा। देवता के कहे अनुसार वे पतयाल से मोहरे को ले आए और अपने घर में उसकी स्थापना की। देवता की कृपा से उनके घर पुत्र पैदा हुआ। इस चमत्कार से प्रभावित होकर गाँव तथा आस-पास के लोग भी देवता को मानने लगे।

वीर

गाँव : लाहुंड, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : बला।
मंदिर : लाहुंड।
भंडार : लाहुंड में कारदार के घर में।
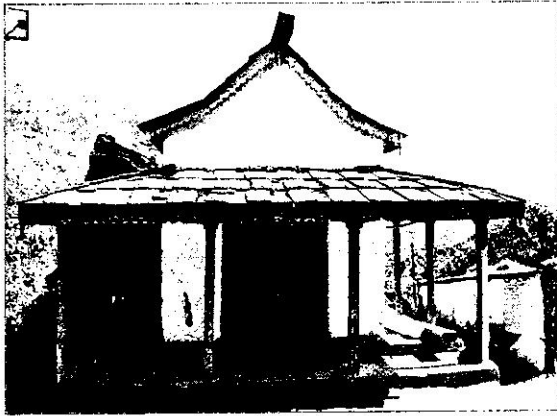
स्थापत्य : पत्थर के चबूतरे पर बना, काष्ठ स्तम्भों पर आधारित ढलानदार छतवाला डेढ़ मंज़िल का मंदिर।
अधिकार क्षेत्र : फाटी बलागाड़ का बिओं से भलाग्रां तक का क्षेत्र।
प्रबंध : कारदार, भंडारी, कायस्थ, गांठीदार, गूर, पुजारी की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रातः पूजा, सायं आरती होती है।
रथ : दो अर्गलाओं की सहायता से उठाया जानेवाला खड़ा रथ।
मोहरे : आठ।
मेले-त्योहार : मार्कण्डेय ऋषि बला के सभी मेले-त्योहारों में सम्मिलित होता है।
जनश्रुति : मार्कण्डेय बला के साथ सेवक के रूप में रहता है।

शाँघड़ी देऊ

गाँव : चनौन, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान एवं मंदिर : चनौन गाँव का चाहड़ी नामक स्थान।
भंडार : गाँव शलेरा।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से बना साढ़े तीन मंज़िल का 'मधेऊल', जिसकी तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। ढलानदार छत पर स्लेट बिछे हैं और शिखर पर 'क्रोंशा' स्थापित है।
शाखा मंदिर : चहूधार में निर्माणाधीन।
अधिकार क्षेत्र : चनौन, देऊठा, कड़ाईल तथा तरंगाली 'वढ़ें' तथा फाटी रोताह। लेकिन यह देवता बुंगड़ू महादेव के साथ वजीर के रूप में रहता है।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी और पालसरा की समिति।
न्याय प्रणाली : पूछ तथा प्रश्न डालकर।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पुजारी द्वारा।
रथ : चिमू नामक वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ, जिसके चारों ओर मोहरे स्थापित हैं। शिखर पर छत्र शोभित है।
मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा सात पीतल के।
मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को *फागली* उत्सव। इसके अतिरिक्त बुँगड़ू महादेव के सभी मेले-त्योहारों में सहयोजित।
जनश्रुति : यह देवता कुल्लू ज़िला की उपतहसील सैंज के शाँघड़ नामक स्थान से एक राजपूत के साथ मलाणा गया, जहाँ काफी समय तक वह जमलू देवता के वजीर के रूप में रहा। वहाँ से किसी दलित के साथ यह चनौन गाँव के

चाहड़ी नामक स्थान पर आया और उसी घर में वास किया। आज भी यह उसी घर में रहता है। वहीं इसका 'धमेऊल' है, जहाँ फाल्गुन मास में केवल डेढ़ दिन के लिए देवता 'नरोल' में जाता है। क्योंकि यह बुँगड़ू महादेव (चनौन) का वजीर है, अतः बाकी समय यह देवता श्री बुँगड़ू की सेवा में तत्पर रहता है और उनके सभी कार्यों, यथा-मेले-त्योहार-यात्रा में इसकी उपस्थिति अनिवार्य होती है। पहले इसका प्रतीक चिह्न शांघल (शृंखला) थी, परन्तु बाद में लोगों ने देवता के मोहरे व रथ बनाया। अब चहूधार में एक मंदिर भी निर्माणाधीन है।

शिरडू महावीर

गाँव : चनालड़ी, **तहसील** : बंजार।
मूल स्थान : शलवाड़।
मंदिर एवं भंडार : चनालड़ी।
स्थापत्य : लकड़ी से बना देहुरा।
शाखा मंदिर : बाड़ी रोपा।
अधिकार क्षेत्र : गाँव चनालड़ी तथा शलवाड़।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।
रथ : करंडी। इसके शिखर पर छत्र लगा होता है।
मोहरे : तीन।
मेले-त्योहार : देवता का अवतार दिवस और जब माँ गाड़ा दुर्गा फेरे पर आती है तब पर्व मनाया जाता है।
जनश्रुति : नरसिंह बाड़ी रोपा की जनश्रुति के अनुसार देवता नरसिंह इन्द्रप्रस्थ से हंसकुंड तीर्थ में पहुँच कर जब तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं, चौंसठ योगिनियों और बावन वीरों से वार्तालाप कर रहे थे, उसी समय हंसकुंड से घोड़े पर सवार एक वीर पुरुष हाथों में गदा और त्रिशूल लिए प्रकट हुआ। उसके सिर पर पाँच फन वाला नाग और कमर में तलवार थी। उसने भगवान् नरसिंह के चरण स्पर्श कर कहा कि वह उनकी सेवा के लिए प्रकट हुआ है। भगवान् नरसिंह तथास्तु कह कर अंतर्धान हो गए। तब वीर पुरुष ने हंसकुंड की परिक्रमा करके माँ गाड़ा दुर्गा गोशैणी से वार्तालाप किया और वहाँ से अदृश्य होकर उसने बाड़ी रोपा गाँव के पीछे बीरा देउरी (चनालड़ी) नामक स्थान में प्रकट होकर कहा कि वह शिरडू महावीर है और नरसिंह भगवान् की सेवा के लिए आया है। लेकिन वहाँ के लोगों ने उसे स्थान देने से इनकार कर दिया। तब शिरडू महावीर ने क्रोधित होकर उन्हें शाप दे दिया कि वे इस स्थान पर अधिक समय तक नहीं रह पाएँगे और वह इसे प्राप्त करके ही रहेगा। यह कह कर वह बाड़ी रोपा में प्रकट होकर नरसिंह की सेवा में लग गया। कुछ समय बाद वह कठाणी ब्राह्मण के साथ माता गाड़ा दुर्गा बंदल के पास गया। माँ के चरण स्पर्श कर अपने लिए जंगल के साथ का स्थान ले लिया। वहाँ से भी यह भ्रमण करते हुए शेषनाग झुटली के स्थान से होते हुए शरची पहुँचा और वहाँ स्थान हासिल करके ठाणेधार गढ़ होते हुए माता गाड़ा दुर्गा के मूल स्थान शलवाड़ में पहुँच कर माँ की सेवा करने लगा। शलवाड़ से तीर्थ हंसकुंड को देखकर महावीर को पुनः नरसिंह की याद आई और वह वीराधार से होता हुआ वीरा देउरी (चनालड़ी) में पहुँच गया। महावीर को ध्यान आया कि उसे यह स्थान प्राप्त करना है। तब उसने ब्राह्मण का रूप धारण करके राजपूतों को आदेश दिया कि वहाँ पर जप-पाठ करना आवश्यक है। उन्होंने ब्राह्मण की आज्ञा का पालन करते हुए यज्ञ शुरू किया। यज्ञ समाप्ति के बाद जब ब्राह्मण को दान दक्षिणा देने की बारी आई तो ब्राह्मण ने उनसे यहाँ कुछ स्थान माँगा। उसके स्थान माँगते ही राजपूतों को पुरानी घटना याद आई। उन्हें लगा कि अवश्य यह कोई देव-शक्ति है, क्योंकि स्थान न देने के कारण देवता के शाप से चनालड़ी गाँव के ब्राह्मणों के साठ परिवार नष्ट हो गए थे। तब लोगों ने कहा कि अगर यह दैविक शक्ति है तो कोई चमत्कार होना चाहिए। उसी समय देव-शक्ति ने नीले घोड़े पर सवार होकर पूरा वृत्तांत सुना दिया। तब

लोगों ने यहाँ लकड़ी का मंदिर बनाकर इसमें त्रिशूल व मूर्ति की स्थापना करके इसकी पूजा-अर्चना करनी शुरू कर दी।

शेषनाग : जिभी देऊ

गाँव : जिभी, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान एवं मंदिर : जिभी।
भंडार : गाँव तांदी।
स्थापत्य : पत्थर की पीठिका पर देवदार के छह नक्काशीदार स्तम्भों पर आधारित, काष्ठ-प्रस्तर से स्थानीय शैली में बना एक मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है। शिखर पर बदोर लगा है। मंदिर के बाहर चारों ओर खुला बरामदा है जिसके निचले भाग में लकड़ी का जंगला लगा है। मंदिर के प्रवेश द्वार और गर्भगृह के द्वार पर सुन्दर कलाकृतियाँ उकेरी गई हैं। भीतर गर्भगृह में शेषनाग की प्राचीन पाषाण प्रतिमा तथा पार्थिव शिवलिंग स्थापित हैं। इनके अतिरिक्त शेषनाग जी के लक्ष्मणावतार की संगमरमर मूर्ति तथा भगवान् विष्णु के दशावतार की मूर्तियाँ भी स्थापित की गई हैं। मंदिर परिसर में संगमरमर बिछा है और प्रवेशद्वार ईंटों और सीमेंट से बना है। परिसर के चारों ओर लोहे का जंगला लगा है।
शाखा मंदिर : गाँव चेंऊट, रशाला, ढींजू, बाल्हे बीड़।
अधिकार क्षेत्र : खाड़ागाड़ और तिलोकपुर दो गढ़ों तथा तीन 'बढ़'-खाड़ागाड़, नराहां एवं तांदी का स्वामी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में भंडारी, काईथ, मेहता, दरोगा और जेलता की समिति।
न्याय प्रणाली : पांसे द्वारा, गूर के मुख से, लाड़ू और पर्ची डालकर।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से। सभी देव-पर्वों, संक्रांतियों तथा देवकारजों में विशेष पूजा का प्रावधान है। उसमें सभी वाद्य बजाए जाते हैं और चारों प्रहर पूजा की जाती है।
रथ : स्वर्ण-छत्र से सुशोभित खड़ा रथ, जिसमें अंगाह की लकड़ी की चाँदी से मढ़ी अर्गलाएँ लगी हैं।
मोहरे : आठ। सात स्वर्ण निर्मित तथा मूल मोहरा अष्ट धातु का। ये रथ के चारों ओर सुशोभित होते हैं।
मेले-त्योहार : चैत्र संक्रांति का पर्व जिभी देऊ के अवतार दिवस के रूप में मनाया जाता है। संक्रांति की पूर्व संध्या पर देवरथ मंदिर में आता है। देवकार्यवाही होती है, तत्पश्चात् सारी रात भजन-कीर्तन चलता रहता है। संक्रांति के दिन देवकार्यवाही के बाद देवता जनता के कष्टों का निवारण करता है।

वैशाख संक्रांति की पूर्व संध्या पर मंदिर में जागरण होता है। देव कार्यवाही होती है। प्रातः पुनः देवकार्यवाही के सम्पन्न होने पर देवता जनता का कष्ट निवारण करता है। वैशाख संक्रांति से सात वैशाख तक मेला *सात जिभी* मनाया जाता है। मेले के पाँचवें दिन घियागी की देवी बूढ़ी नागिन का रथ पूरे लाव-लश्कर एवं वाद्यों सहित मेले में सम्मिलित होता है और मेले के समापन तक वहीं रहता है। देवता शेषनाग की सप्तजिह्वा होने के कारण यह मेला सात दिन तक मनाया जाता है। सातवें दिन बाहु गाँव के देवता पझारी का रथ अपनी पूरी जलेब के साथ मेले की शोभा बढ़ाने के लिए आता है। दिन भर लोग नाटी डालते हैं और सायं चार बजे *मानव शृंखला* का आयोजन होता है, जिसमें केवल शेषनाग जिभी के हारियानों को ही भाग लेने की अनुमति होती है।

ज्येष्ठ मास के दो प्रविष्टे को जिभी देऊ का रथ शृंगाऋषि के *बंजार मेले* में पूरी शोभा यात्रा के साथ जाता है। श्रावण और मार्गशीर्ष मास में देवता अपनी हार

का दौरा करता है। इसे *रेखा री जातर* के नाम से जाना जाता है।

आश्विन मास की शुक्ल दशमी को कुल्लू के दशहरा उत्सव में प्रतिवर्ष रघुनाथ जी से मिलने और मेले की शोभा बढ़ाने के लिए पूरी जलेब के साथ जाता है।

जनश्रुति : देवता शेषनाग लोककल्याणार्थ भूलोक में सर्वप्रथम दिल्ली में प्रकट हुए और वहाँ से निरमंड पहुँचे। यहाँ परशुराम जी से मिलने के बाद बाड़ी बहना से होते हुए मण्डी ज़िला के सुकेत क्षेत्र में माहुँनाग नामक स्थान पर पहुँचकर अपनी ज्येष्ठ कला स्थापित की तथा अखंड धूना प्रज्चलित किया। यहाँ से देवता ने ज़िला कुल्लू के बाहरी सराज में बाल्हे बीड़ नामक स्थान पर आकर जगती स्थापित की। वहाँ से वह शनीचरी गढ़, जगतपुर होते हुए तलोकपुर गढ़ के तांदी नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ एक धनाढ्य ज़मींदार रहता था जो लोगों का शोषण करता था और देवी-देवता को बिल्कुल नहीं मानता था। उसे सीख देने के लिए शेषनाग ने वहाँ इतने खटमल पैदा किए कि उसे सोने के लिए रस्सी का झूला बनाना पड़ा। दैव लीला से खटमल उसके बिस्तर तक भी पहुँच गए और उसे काटने लगे। हार कर उसने देवता का आधिपत्य स्वीकार किया और अपनी सारी सम्पत्ति उन्हें अर्पित कर दी। देवता ने उसे अपना भंडारी नियुक्त किया और स्वयं बाहु नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ एक शक्तिशाली दानव रहता था। उसे वहाँ से भगाकर देवता भूमियाँ, खड़ा रोपा होते हुए नराहाँ नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ अपना पहला मेहता नियुक्त किया। नराहाँ से शेषनाग ने मिहार पहुँच कर नारायणी देवी से भेंट की और आगे चलते हुए कोठी खाड़ागाड़ के सर नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ दूसरा मेहता नियुक्त किया। तत्पश्चात् कुठाची होते हुए देवता रशाला नामक स्थान में पहुँचे। यहाँ शक्तिशाली देवता ऋषि रशालु का आधिपत्य था। क्योंकि शेषनाग को यह स्थान पसंद आ गया था, अतः उन्होंने लगीशरी देवता की सहायता से रशालु देवता को दूसरे स्थान पर भिजवा दिया और स्वयं रशाला पर अपना आधिपत्य जमा लिया और रशालु देवता के रथ में प्रविष्ट हो गए। इस मनोरम स्थान पर देवता ने अपनी दिव्य शक्ति से दोनों ओर खड्डें प्रवाहित कर दीं, जिससे यह स्थान जिह्वाकार का बन गया। तब से इस स्थान का नाम जिभी पड़ा और देवता को जिभी देवता भी कहा जाने लगा। जिभी में मूल मंदिर है और यहीं से सम्पूर्ण देऊली आदि कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है। देवता को जनमानस अपना इष्ट मानकर पूजता है।

शेषनाग

गाँव : झुटली, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : सरेऊलसर।

मंदिर एवं भंडार : झुटली।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर, जिसकी छत स्लेटों से ढकी है।

शाखा मंदिर : बुसारी व पझारी गाँव। पझारी में जब कोई देव कार्य होता है तो पाँच हारी फरयाड़ी, बंदल, शरची, शिल्ही और झुटली के लोग इसमें शामिल होते हैं।

अधिकार क्षेत्र : कोठी शरची के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में भंडारी, दरोगा, मुंशी, गूर, पुजारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व रथ के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से पूजा व आरती।

रथ : स्वर्ण व रजत निर्मित छत्र से शोभित अंगु की लकड़ी से बना खड़ा रथ।

मोहरे : एक स्वर्ण निर्मित, पाँच चाँदी के, एक मुख्य मोहरा और एक मोहरा छेरे का अष्टधातु निर्मित है।

मेले-त्योहार : बैसाख को *पड़ैई*, भादों मास में *जगराता*, फाल्गुन मास में *करडी* मेला। कभी-कभी देवता अपने उत्पत्ति स्थल सरेऊलसर के दौरे पर जाता है। वहाँ पूज-पुजाई यानी बकरे की बलि चढ़ाई जाती है।

जनश्रुति : यह सरेऊलसर में बूढ़ी नागिन से उत्पन्न बच्चों में से सबसे छोटा है। सरेऊलसर से यह शरचीगढ़, तलीहार,

बुसारी, पझारी होते हुए झुटली गाँव में पहुँचा। यहाँ पहुँच कर देवता ने पारलेघरी खानदान के किसी व्यक्ति को स्वप्न में दर्शन देकर बताया कि वह इस स्थान में स्थापित होना चाहता है। तब इस खानदान के लोगों ने इसे कुल देवता के रूप में पूजना आरम्भ किया। देव शक्ति से प्रभावित होकर अन्य लोगों ने भी कालांतर में इसे पूजना आरम्भ किया और इसके रथ व मंदिर का निर्माण किया।

शेषनाग : सरेऊली देऊ

गाँव : शपनील, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : सरेऊल।
मंदिर एवं भंडार : शपनील।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित कोट शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर है। मंदिर की धरातल मंज़िल में बने प्रवेशद्वार पर सुन्दर नक्काशी हुई है। तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है, जिसका निचला आधा भाग काष्ठ फलकों से आवृत है। मंदिर की छत स्लेटों से ढकी है।
अधिकार क्षेत्र : फाटी शपनील के शपनील, शनाड़ , शजाहू, छनाठ गाँव।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पूजा व आरती।
रथ : शीर्ष भाग में टोप वाला खड़ा रथ, जिसके शिखर पर स्वर्ण निर्मित छत्र सजा होता है।
मोहरे : सात स्वर्ण निर्मित तथा एक अष्टधातु का।
मेले-त्योहार : श्रावण मास में संक्रांति से *शणयाच री जाच* जो तीन दिन तक चलती है, मार्गशीर्ष मास में देवता द्वारा निर्धारित तिथि को *फेरे री जाच* होती है। इसमें देवता पाँच दिन अपने अधिकार क्षेत्र में फेरे पर जाता है।
जनश्रुति : कदाचित् शपनील में एक गरीब महिला रहती थी। उसके पास एक गाय थी। एक बार उसके घर साधु आया। उसने महिला से दूध माँगा। महिला ने साधु को कहा कि उसके पास बिन ब्याई गाय है। अतः वह उसे दूध नहीं दे सकती। साधु ने उसे गाय को दुह कर लाने को कहा। जब महिला गोशाला में गई तो उसने देखा कि गाय ब्या चुकी थी और बछड़ा उसका दूध पी रहा था। तब उसने साधु को कहा कि उसके पास दूध दुहने का पात्र भी नहीं है। साधु ने उसे अंदर जाकर देखने को कहा। महिला अंदर गई तो देखा कि घर में काँसे के बर्तन और दूध दुहने का पात्र पड़ा था। औरत ने दूध दुह कर साधु को दिया और पूछा कि वह कौन है, क्योंकि वह साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता। तब साधु ने बताया कि वह सरेऊल से आया शेषनाग है और यहाँ स्थापित होना चाहता है। यह कहकर साधु नाग रूप में परिवर्तित हो गया। तब लोगों ने यहाँ शेषनाग की स्थापना की और इसे सरेऊली देऊ और शेषनाग के नाम से पूजना आरम्भ किया।
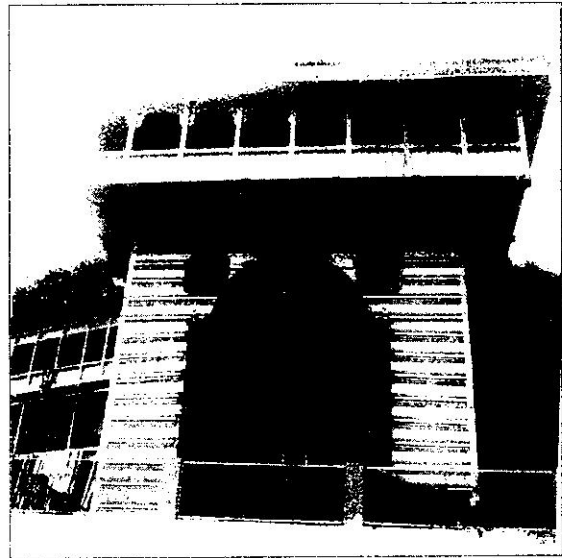
श्री हरि लटोड़ा

गाँव : भलाग्राँ, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान : लटोड़ा जंगल में।
मंदिर : भलाग्राँ में पुजारी का घर।
भंडार : गाँव तांदी।
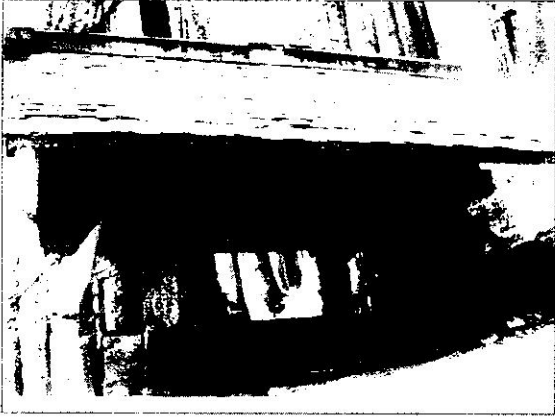
स्थापत्य : काष्ठ स्तम्भों पर आधारित मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है तथा शिखर पर बदोर लगा है।

अधिकार क्षेत्र : भलाग्राँ, कंडी, भर्ठीधार, धारा, तांदी, भुआ, लोटला गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में मेहता, गूर, पुजारी, कायथ, दरोगों की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से। जब कोई न्याय चाहता है तो वह हरि लटोड़ा का नाम लेकर इंसाफ की गुहार करता है। तब देवता सुबह से शाम को और शाम से सुबह तक न्याय करके दोषी को दंड देता है।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।

रथ : शिखर पर छत्र से शोभित खड़ा रथ।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास के प्रथम प्रविष्टे से चार दिवसीय *फागुली* त्योहार मनाया जाता है।

जनश्रुति : यह देवता ज़िला मंडी की नाचनी पंचायत से आया है। किसी समय यहाँ का एक ठाकुर अपने दो शिकारियों के साथ जंगल में शिकार करने गया। ये दोनों शिकारी ठाकुर को जंगल में छोड़कर घर वापिस आ गए। क्रुद्ध ठाकुर ने घर पहुँच कर इन दोनों को मंडी छोड़कर जाने का आदेश दिया और ऐलान कर दिया कि यदि वे मंडी रियासत में रहे तो उन्हें फाँसी दे दी जाएगी। तब वे दोनों अपने परिवार के साथ तांदी में आकर यहाँ के ठाकुर की शरण में गए। तांदी के ठाकुर ने उन्हें जीविका चलाने के लिए भलाग्राँ में बंजर भूमि दे दी, जहाँ झाड़ियाँ ही झाड़ियाँ थीं। उन्होंने झाड़ियाँ काट कर भूमि को काश्त योग्य बनाया। इससे उनके खानदान का नाम झाकड़ू पड़ा। कुछ समय बाद उन्हें अपने आराध्य देव की याद सताने लगी। तब उन्होंने भक्ति भाव से देवता को यहाँ आने के लिए विवश किया। नाचन से आकर देवता सर्वप्रथम लोटला गाँव में प्रकट हुआ। लोटला के पंडितों ने इसे अपने खेत में शहतूत के पेड़ के नीचे स्थान देकर पूजना आरम्भ किया। कुछ समय के बाद देवता ने अपने लोगों के पास भलाग्राँ जाने की इच्छा व्यक्त की तो लोटला के पंडितों ने देवता के प्रतीक चिह्न लोहे का गज़ और त्रिशूल बना कर भलाग्राँ में झाकड़ू खानदान को दिए और कहा कि यह उनका कुल देवता मतलोड़ा है। तब इस खानदान के लोग देवता को यहाँ पूजने लगे। कुछ समय बाद इस खानदान के एक परिवार के सात भाई आपस में झगड़ने लगे। देवता को लड़ाई-झगड़ा, शोर-शराबा पसंद नहीं था। उसने सभी भाइयों को मिलजुल कर रहने का आदेश दिया। लेकिन उन्होंने इसका पालन नहीं किया। देव दोष से सभी भाई निःसंतान मर गए। तब उनकी पत्नियाँ ही देवता की सेवा करती रहीं। कालांतर में एक महात्मा गाँव में आया। उन सातों विधवाओं ने महात्मा से देवता की सेवा के लिए वहीं रुकने के लिए विनती की। महात्मा ने देवता का ध्यान कर उसे पहचान लिया और मौन धारण करने की शर्त पर उसकी सेवा करना स्वीकार किया। स्त्रियों ने महात्मा से मौन का कारण पूछा। महात्मा ने कहा कि उनके पतियों की मृत्यु लड़ाई-झगड़े से हुई है, अतः वह मौन रह कर ही देवता की पूजा-अर्चना करेगा अन्यथा कहीं ऐसी भूल उससे भी न हो जाए। तब से वह मौन धारण कर ही देवता की सेवा करता रहा। उसके बाद इस खानदान का नाम डेंठी पड़ा। आज भी इसी खानदान का व्यक्ति देवता का पुजारी होता है और देवता भी उसी घर में रहता है। देवता का कारदार व भंडारी गाँव तांदी के ठाकुर परिवार से होता है। कहते हैं कि एक चरवाहा इस ठाकुर

खानदान की बकरियों को चराने के लिए लटोड़ा जंगल में ले जाता था। दुर्भाग्य से एक चीता प्रतिदिन उसकी बकरियों पर हमला करता और एक न एक बकरी को ले जाता था। इस तरह एक समय ऐसा आया कि उसके पास केवल पाँच बकरियाँ ही रह गईं। तब वह चरवाहा रोने लगा। उसी समय आकाशवाणी हुई कि वह नारायण है और उसकी सहायता के लिए प्रकट हुआ है। भविष्य में उसकी सेवा करना और वह बकरियों की रक्षा करेगा। चरवाहे ने यह बात बकरियों के मालिक ठाकुर को बताई। तब ठाकुर ने कारदार व भंडारी बन कर देवता की सेवा करना स्वीकार किया। आज भी उसी खानदान का व्यक्ति कारदार व भंडारी होता है। लटोड़ा के जंगल में उत्पन्न होने के कारण यह देवता हरि लटोड़ा के नाम से पूजा जाने लगा।

सकीरणी देऊ : शृंगा ऋषि

गाँव : घियागी, **तहसील** : बंजार।

मूल स्थान : सकीरणी जोत।

मंदिर : घियागी।

भंडार : घियागी में भौमासी खानदान के किसी व्यक्ति के घर में।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से पहाड़ी शैली में निर्मित दो मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलानदार छत पर स्लेट बिछे हैं। शिखर पर बदोर स्थापित है।

शाखा मंदिर : गाँव सरठी।

अधिकार क्षेत्र : कोठी खाड़ागाड़ तथा कोठी तिलोकपुर के सभी गाँव। इसके अतिरिक्त बाह्य सराज की कोठी रघुपुर भी देवता की हार के अंतर्गत आती है।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी, ढौंसी, कोषाध्यक्ष व कायथ की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा स्वयं।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं बेठर धूप से।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ, जो सुन्दर वस्त्र-आभूषण एवं छत्र से अलंकृत है।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : ज्येष्ठ मास की प्रथम तिथि को देवता रघुपुर गढ़ की यात्रा पर जाता है, जहाँ जागरा होता है। आषाढ़ मास में *शाढ़णू मेला*, सावन में सरठी गाँव में *देऊगी* का आयोजन, फाल्गुन में *फागली* तथा वैशाख में *ध्वजारोहण* उत्सव मनाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रति बारह वर्ष के अंतराल में देवता अपनी हार की यात्रा पर जाता है और समय-समय पर रघुपुर कोठी का भ्रमण करता है।

जनश्रुति : घियागी में देवता एक विशाल चट्टान को फाड़ कर एक छोटे मोहरे के रूप में प्रकट हुआ। उस चट्टान के ऊपर देवता की थड़ी (देवासन) का निर्माण किया गया है। प्रकट होने के पश्चात् देवता ने समाज संचालन के लिये कुछ नियम निर्धारित किए जिनका आज भी गाँववासियों द्वारा अक्षरशः पालन किया जाता है। यदि कोई इसे न माने तो देवता स्वयं उसे दंड देता है। प्राचीनकाल में जब यहाँ के ठाकुरों ने इन नियमों का पालन नहीं किया और देवता के बार-बार चेतावनी देने के बाद भी जब वे न माने तो देवता ने ऐसी ओलावृष्टि की कि घरों सहित सबको जान से हाथ धोना पड़ा। जब वे ठाकुर समाप्त हो गए तो उनका स्थान समीप के गाँव मखलौण-लफाथ के भौमासी खानदान ने ले लिया और वे पूर्ण आस्था के साथ देवता की सेवा करने लगे। वर्तमान में देवकार्यों का संचालन करने वाले सभी व्यक्ति भौमासी खानदान से ही हैं।

सकीरणी देऊ : शृंगा ऋषि

गाँव : बागी, **तहसील** : बंजार।

मूल स्थान : सकीरण जोत।

मंदिर : बागी।

भंडार : चैहणी।

स्थापत्य : देवदार के जंगल के मध्य कोट शैली में

काष्ठ-प्रस्तर निर्मित चार मंज़िल का त्रिछतीय मंदिर जिसकी दूसरी व चौथी मंज़िल के बाहर लकड़ी का चौतरफा बरामदा है। नीचे की दो छतें चारों ओर को ढलान लिए है जबकि ऊपरी छत दो ओर को ढलानदार है, जिसके शिखर पर 'बदोर' तथा उसके मध्य में कलश स्थापित है। भीतर शृंगा ऋषि, शिव-पार्वती, दुर्गा, गणेश तथा चौंसठ योगिनियों की प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। मंदिर प्रांगण का प्रवेशद्वार ईंटों तथा टाइलों से बना है, जिसके दोनों कोनों तथा मध्य में कलश स्थापित हैं। प्रांगण के चारों ओर लकड़ी का जंगला लगा है।

शाखा मंदिर : घियागी।

अधिकार क्षेत्र : तहसील बंजार का सराज क्षेत्र, चैहणी कोठी, खाड़ागाड़, फतेहपुर, शिकारी, तिलोकपुर।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पारम्परिक देव समिति, जिसके सदस्य भंडारी, काईथ, तीन महते, तीन दरोगे तथा जेलता होते हैं।
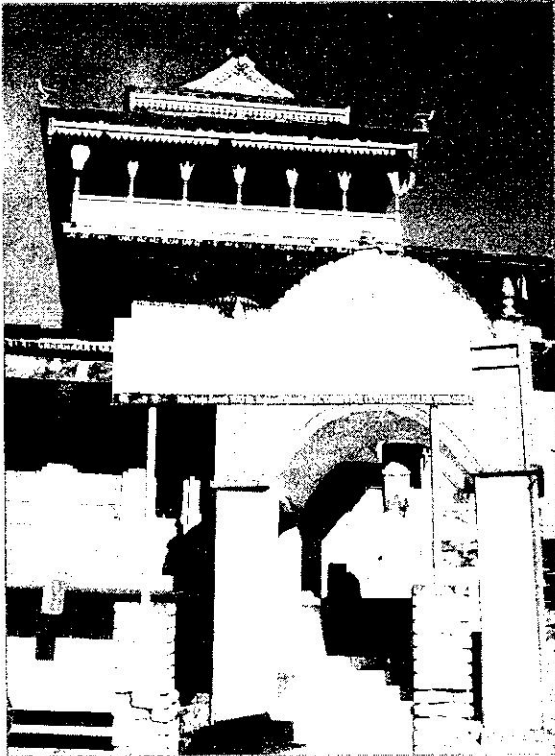
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, देवता के सम्मुख पासा फेंक कर, 'लड्डू' और 'पर्ची' डालकर।

पूजा : दिन में तीन बार शुक्ल यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा। पुजारी का चयन परम्परा से होता है। पुजारी के जितने भी पुत्र हों, वे सभी बारी-बारी से देवता की पूजा करते हैं। सभी देवपर्वों, संक्रांति तथा देवकार्यों में विशेष पूजा का विधान है। उनमें सभी वाद्यों का प्रयोग होता है और चारों प्रहर पूजा होती है।

रथ : अंगाह नामक वृक्ष की लकड़ी से निर्मित खड़ा रथ, जिसके शिखर पर छत्र सुशोभित है।

मोहरे : आठ, जिनमें से मूल मोहरा अष्टधातु का तथा शेष स्वर्ण के हैं। ये रथ के चारों ओर सजाए जाते हैं।

मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को *नया संवत्* मनाया जाता है। इस दिन देवता चैहणी गाँव के कृष्ण मंदिर में जाता है। वहाँ पर योगिनी पूजा की जाती है। गूर को देऊखेल आती है और उस समय लोग देवता से पूछ डालते हैं। रात्रि को देवता बागी मंदिर को लौट आता है, वैशाख संक्रांति से देवता अपनी 'हार' की फेरी लगाता है, जो चैहणी से आरम्भ होकर वीणी में समाप्त होती है। 13 दिन बाद देवता मंदिर को लौटता है। ज्येष्ठ मास से एक दिन पूर्व शृंगा ऋषि सकीरण को जाता है। रात के समय वहाँ पर 'जागरा' जलाया जाता है। दूसरे दिन चैहणी आता है। ज्येष्ठ प्रविष्टे 2 को देवता वहाँ से *बंजार मेला* के लिए प्रस्थान करता है। वहाँ भी खेल आने पर गूर लोगों के प्रश्नों के उत्तर देता है। यह मेला छह दिन चलता है। चैहणी में तीन दिन रहने के उपरांत देवता बागी मंदिर को लौटता है। श्रावण प्रविष्टे 3 को ऋषि अपनी हार की फेरी लगाता है, मार्गशीर्ष की संक्रांति को भी देवता अपनी हार में रक्षा-रेखा देता है। पौष प्रविष्टे 20 के बाद देवता से दिन पूछकर मंदिर के कपाट बंद कर दिए जाते हैं। माघ संक्रांति से एक दिन पूर्व मंदिर के कपाट खुल जाते हैं और देवता अपनी हार को दर्शन देता है।

जनश्रुति : शृंगा ऋषि का जन्म ब्रह्मा के शाप से हिरणी बनी एक देवकन्या के गर्भ से हुआ था। वह हिरणी बालक

को विभांडक ऋषि के आश्रम के पास छोड़कर स्वयं शापमुक्त हो देवकन्या बनकर देवलोक को चली गई। विभांडक के सान्निध्य में शृंगा ऋषि बड़ा हुआ और बाद में सकीरण जोत पर उसने दस हज़ार वर्ष तक तपस्या की, जिस कारण वह सकीरण ऋषि कहलाया। सकीरण जोत से नीचे थरींवला स्थान पर श्रतांगण नाम के किसी व्यक्ति की भूमि थी। जब वह वहाँ हल चलाने जाता तो उसे वहाँ-मैं ईछू-मैं ईछू की आवाज़ सुनाई देती। ऐसा जब अकसर होने लगा तो उसने यह बात अपनी पत्नी को बताई। उसकी पत्नी ने उसे राय दी कि वह उससे आने के लिए कह दे। अगले दिन हल चलाते हुए जब उसे वह आवाज़ फिर सुनाई देने लगी तो उसने कहा आ जाओ। उसके ऐसा कहते ही उसे बहते हुए पानी की ध्वनि सुनाई दी और उसकी भूमि के साथ लगता सूखा तालाब पानी से भर गया। जब वह उसके किनारे पहुँचा तो तालाब के भीतर से आवाज़ आई-अंदर आ जाओ। उसके आकर्षण से वह तालाब के भीतर चला गया। वहाँ उसे एक मूर्ति मिली जो उसके साथ बात करने लगी। उसने कहा कि वह शृंगा ऋषि है और सकीरण जोत पर जाना चाहता है। श्रतांगण ने उससे कहा कि वह उस स्थान को नहीं जानता। तब मूर्ति कहने लगी कि वहाँ का मार्ग वह स्वयं बताएगी। उस व्यक्ति ने मूर्ति उठाई और उसकी प्रेरणा से वह सकीरण जोत पर पहुँच गया। वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि जोगिनियाँ मंदिर बनाने के लिए थड़ा तैयार कर रही थीं, परन्तु श्रतांगण और शृंगा ऋषि को देखते ही वे अदृश्य हो गईं और मूर्ति स्वयं थड़े पर स्थापित हो गई।

सनकीर देऊ

गाँव : दारन, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : दारन।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर।
शाखा मंदिर : धारा डीम, धारा देहुरा।
अधिकार क्षेत्र : फाटी पेखड़ी के समस्त गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में भंडारी, उपकारदार, काईथ आदि की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, देव रथ से व गोबर के लाडू द्वारा।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं देशी गाय के दूध, घी तथा गुग्गुल धूप से।
रथ : मंडप शैली का खड़ा रथ, जिसे अंगाह वृक्ष की लकड़ी से बनाया जाता है।
मोहरे : आठ।
मेले-त्योहार : चैत्र व आश्विन की संक्रांतियों को त्योहार मनाया जाता है।

सनदेव

गाँव : कनौण, **तहसील :** बंजार।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कनौण।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से बना दो मंज़िल का त्रिछतीय मंदिर जिसकी ऊपरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। छतों पर स्लेट बिछे हैं और शिखर पर 'बदोर' लगा है।
अधिकार क्षेत्र : कनौण गाँव के 80 परिवार।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी व पालसर की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, रथ से, पासे व गोबर के लड्डू आदि द्वारा।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : स्वर्ण छत्र व बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सज्जित खड़ा रथ।
मोहरे : मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा सात स्वर्ण के।
मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में देवता का *तुआर दिवस*, भाद्रपद मास में *हूम* का आयोजन।
जनश्रुति : स्वर्ग से एक शरू (ओला) हँसा नामक स्थान पर गिरा और भूमि पर आते ही उसमें से तीन कलाएँ प्रकट हुईं। ज्येष्ठ कला से सनकीर ऋषि, दूसरी से चौरासी
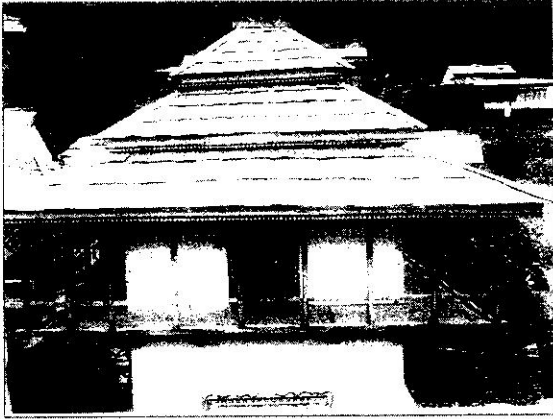
सिद्ध और तीसरी से सनदेव ऋषि पैदा हुए। सनदेव ने कालकुंड और हंसकुंड में स्नान किया और गड़गड़ासन नामक स्थान की ओर चल दिया। वहाँ पहुँच कर भेखल वृक्ष के नीचे सोने की देहुरी बनाकर रहने लगा। कुछ काल बाद वह धारा चला गया और वहाँ नौ बीहा (एक सौ अस्सी) परिवार उसको मानने लगे। वहाँ से वह घाट गया जहाँ उसकी हार में 140 परिवार और सम्मिलित हो गए। वहाँ उसने पूजा हेतु पुजारी का चयन किया और गोरचे होता हुआ कनौण पहुँचा, जहाँ पिंडी के रूप में चखैण वंश के किसी व्यक्ति को मिला। उसने उस पिंडी की पूजा करनी आरम्भ की तो उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण होने लगीं। तब चखैणों ने कनौण में ऋषि के निमित्त मंदिर बनाया और अन्य लोग भी देवता को पूजने लगे।

सराज़ी देऊ

गाँव : बाल़ो, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान : बाल़ो में सराज़ी छत्री नामक स्थान।

मंदिर : बाल़ो।

स्थापत्य : काष्ठ चौखट पर खड़े चार स्तम्भों पर आधारित दो ओर को ढलानदार छत वाला बिना दीवारों का खुला मंदिर। तख्तों से आच्छादित इसकी छत के शिखर पर 'क्रोंशा' लगा है।

अधिकार क्षेत्र : देओ सराज़ी ने अपना आधिपत्य देओ अनंत बालूनाग को दिया है और अपने पास केवल बैठा राज रखा है, फिर भी इसका पूरे सराज क्षेत्र में प्रभुत्व है और यह अपनी भारथा में भी कहता है कि 'मैं समस्त सराज क्षेत्र का अधिपति हूँ।'

प्रबंध : देओ अनंत बालूनाग गाँव ताँदी की प्रबंध समिति के समस्त सदस्यों के अतिरिक्त फाटी चेथर व बलागाड़ के लंबरदार भी सम्मिलित हैं।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा। देवता का गूर किसी विशेष खानदान से नहीं होता। इसके गूर काफरी-महेड़, डूम-देऊ खोला, ज़िल्हे महते-तांदी से हुए हैं। वर्तमान में इसका अपना कोई गूर नहीं है। देओ अनंत बालूनाग का गूर ही इसका कार्य करता है।

पूजा : देओ अनंत बालूनाग का पुजारी ही देऊ सराज़ी की पूजा करता है। गुग्गुल धूप, घी का दीपक, अक्षत, पुष्प, कुंकुम, घंटी, शंख व धड़छ से प्रातः-सायं पूजा व आरती होती है। पौष व माघ मास में जब अनंत बालूनाग 'नरोल' में रहता है तो देऊ सराज़ी की पूजा उस समय भी चलती रहती है।

रथ : नहीं है।

मोहरे : मोहरे नहीं हैं। इसके स्थान पर गज़ है। इसी से सारे कार्य सम्पन्न किए जाते हैं। यही गज़ देव बालूनाग

के साथ कुल्लू दशहरे में जाती है।

मेले-त्योहार : देऊ अनंत बालूनाग के भाद्रपद मास के बाहू हूम, मार्गशीर्ष मास की अमावस्या को बरखोल, उप तहसील बाली चौकी में हर तीसरे वर्ष होनेवाले हूम तथा काफी समय के अंतराल में आयोजित किए जाने वाले बाहू करूआ और बले करूआ-इन चारों हूमों में देव सराज़ी की उपस्थिति अनिवार्य रहती है। इनके अतिरिक्त शिलान्यास, वास्तु आदि में सराज़ी देव का ही एकाधिकार है।

जनश्रुति : इसे सराज क्षेत्र का सबसे प्राचीन देवता माना जाता है। यहाँ एक लोकोक्ति प्रचलित है-सराज़ा मंज़े सराज़ी, कुल्लू मंज़े गहरी अर्थात् सराज क्षेत्र में सराज़ी देऊ और कुल्लू में गहरी देऊ सबसे प्राचीन हैं। देवता अपनी भारथा में बताता है कि वह समस्त सराज क्षेत्र का अधिपति है। लेकिन इसने बैठा राज अपने पास रख कर चलता राज देऊ अनंत बालूनाग को सौंपा और इसका सहयोगी बना। इसे सराजेश्वर और सराजपाल के नाम से भी जाना जाता है और शंकर के रूप में पूजा जाता है।

सरीनाग

गाँव : पेखड़ी, **तहसील :** बंजार।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पेखड़ी में डमसेहड़ नामक स्थान में।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी छत स्लेटों से ढकी है।

शाखा मंदिर : गाँव ठेहरा।

अधिकार क्षेत्र : फाटी पेखड़ी का नौहांडा व फाटी शरची का दाड़ी व छामणी गाँव।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी, दरोगों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।

पूजा : प्रातः-सायं प्रतिदिन पंचोपचार विधि से।

रथ : नहीं है। देवता का प्रतीक छड़ी है।

मोहरे : नहीं हैं।

मेले-त्योहार : देवता का *जन्मोत्सव, दीवाली* तथा *फागुली* उत्सव।

जनश्रुति : यह देवता मानसरोवर के नज़दीक हंसकुंड में प्रकट होकर धारा (दारन) नामक स्थान में पहुँचा। वहाँ पहले देवता झिथनू-बिथनू और फिर सनकीर देवता से मिलने के पश्चात् वह टलिंगा नामक स्थान में पहुँचा और देवता रविंद से मिला। वहाँ से चल कर नौहांडा स्थान में चौरासी सिद्ध से भेंट करने के पश्चात् आगे कुई धार में कुई नाग से मिला और वहाँ स्थान ग्रहण किया। यहाँ से आगे चलकर गोरचा और ठेहरा नामक जगहों में योगिनियों से मिलाप हुआ और ठेहरा में स्थान चयनित करने के बाद यह देवता लाकचा के ऊपर से होते हुए गढ़ योगिनियों से मिलकर लुडाहर में वहाँ के देवता चतरखंड से मिला और देव मिलन के पश्चात् गाँव पेखड़ी के डमसेहड़ नामक स्थान में पहुँचा और यहाँ के स्थानीय देवता लगीशरी से मिलने के बाद उससे अपने रहने के लिए स्थान माँगा। कुछ समय बाद देवता ने डमसेहड़ खानदान के किसी बुजुर्ग को अपनी शक्तियों का आभास करवाया और उससे अपनी सेवा का वचन लिया। आज भी पूजा, आरती आदि सभी देव कार्य इसी खानदान के व्यक्ति करते हैं।

सैंज खंड

अमल नारायण

गाँव : नरौल, **तहसील** : सैंज।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : नरौल।
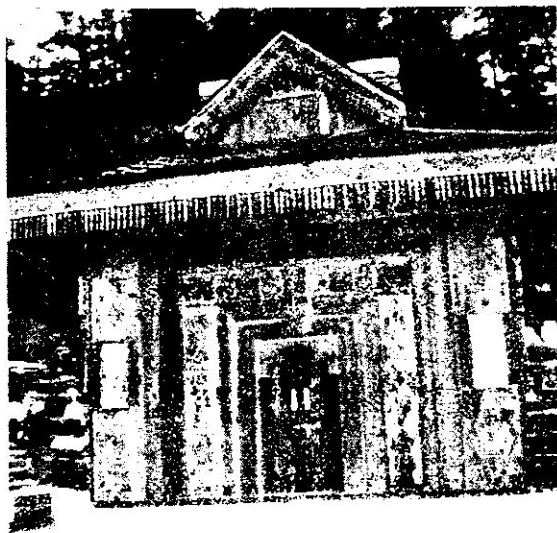
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक कक्ष का मंदिर, जिसकी चारों ओर को ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है। मंदिर में प्रयुक्त काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव नरौल, शैंगना, जूहग, डमरोगी, चिखना।
प्रबंध : कारदार, गंठीदार, जटाली, धामी तथा पुजारी की समिति।
न्याय प्रणाली : देवता से पूछ डालकर, गूर के माध्यम से, रथ द्वारा, मलोही, पासा या प्रश्न डालकर।
पूजा : वर्ष की प्रत्येक संक्रांति, 8, 15 तथा 20 प्रविष्टे, अमावस व पूर्णिमा तथा विशेष त्योहारों पर धूप-दीप से।
रथ : छत्र व टोपयुक्त खड़ा रथ।
मोहरे : नौ। चाँदी के सात तथा अष्टधातु के दो।
मेले-त्योहार : वैशाख संक्रांति को *भिठ* नामक मेला, 7 पौष को *सदयाला* नामक त्योहार मनाया जाता है। उस रात लकड़ियाँ एकत्र करके अलाव जलाया जाता है और गाँववासी भी अपने घरों से मशालें जलाकर लाते हैं तथा अलाव के चारों ओर नाचते हैं। इसी दौरान दूसरे गाँववालों को अश्लील गालियाँ दी जाती हैं।
जनश्रुति : कई वर्ष पूर्व नरौल गाँव के पीछे की नारायण वनी में किसी व्यक्ति को अष्टधातु का एक मोहरा मिला जिसे गाँव में लाकर वह पूजने लगा। उसके चमत्कारों से प्रभावित होकर कालांतर में गाँववासियों में भी इसकी मान्यता बढ़ी तो उन्होंने देवता के लिए मंदिर और रथ का निर्माण किया।

आशापुरी

गाँव : धलियारा, **तहसील** : सैंज।
मूल स्थान एवं भंडार : धलियारा।
भंडार : धलियारा में गूर के घर में।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से पैगोड़ा शैली में निर्मित दो मंज़िल का त्रिछतीय मंदिर जिसकी ऊपरी मंज़िल में जंगले से युक्त चौतरफा बरामदा है। छतें स्लेटों से ढकी हैं जिन के चारों ओर लम्बाकार काष्ठ झालरें लगी हैं।
शाखा मंदिर : मंझग्रां।
अधिकार क्षेत्र : बकशाल से भूपन शारन तक।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में परम्परागत समिति।
न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, रथ से तथा मरोहड़ी डालकर।
पूजा : प्रतिदिन धूप-दीप से। उस समय लक्ष्मी तथा दुर्गा

का पाठ किया जाता है।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर स्वर्ण-छत्र लगता है।

मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा सात स्वर्ण निर्मित।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को देवी तीन महीने के अंतराल के बाद अपने देवालय में आती है। रथ सजाया जाता है, देवकार्यवाही होती है। देवी गूर के माध्यम से भारथा और बर्शोहा देती है। इसी मास दुष्ट आत्माओं को भगाने के उद्देश्य से *फागली* का आयोजन होता है और इस मेले में उन्हें खूब अश्लील गालियाँ दी जाती हैं। वैशाख संक्रांति को *बिरशू* मनाया जाता है। जंगल से ब्रास के फूल लाकर देवी को अर्पित किए जाते हैं। देव-कार्यवाही के बाद खूब नाटी डाली जाती है। ज्येष्ठ मास में देवी को नवान्न, विशेष रूप से जौ चढ़ाए जाते हैं। लोग अपने घरों के दरवाज़ों पर भी जौ की तीन बालियाँ गोबर के साथ चिपकाते हैं। इसकी विधिवत् पूजा होती है। श्रावण मास में ब्रह्मभोज का आयोजन होता है जिसमें खीर और फुलके का भोग लगाकर सभी उपस्थित लोगों को खिलाया जाता है। आश्विन संक्रांति की पूर्व संध्या पर देवी को मंदिर में बैठाकर सारे हारियान जागरा (अलाव) जलाते हैं और पूरी रात नाचते-गाते हैं। संक्रांति को देव कार्यवाही के बाद शाम को देवी हारियान सहित अपनी हार में जाती है और लोग रथ पर फल-फूल तथा अखरोट न्योछावर करते हैं। इस दिन बुज़ुर्गों और देवी-देवताओं को दूब भी बाँटी जाती है। पौष संक्रांति को देव कार्यवाही के बाद देवी को 'नरोल' पड़ता है और मंदिर के कपाट फाल्गुन संक्रांति तक बंद हो जाते हैं।

जनश्रुति : सर्वप्रथम देवी अपनी छह बहनों सहित काँगड़ा में प्रकट हुई। वहाँ से ये कुल्लू के माहून नामक स्थान पर पहुँचीं और चिड़ियों का रूप धारण कर झाड़ियों के बीच रहने लगीं। जब ग्वाले अपने मवेशी चराने के लिए यहाँ आते तो ये बारी-बारी से गाय के थनों से दूध पी जातीं। ग्वालों ने इस बारे में घर के बुज़ुर्गों से बात की और उन्होंने इनसे छुटकारा पाने के लिए झाड़ियों में आग लगा दी। आग लगने पर छह बहनें तो उड़कर दूर चली गईं परन्तु सातवीं के पंख जल जाने के कारण वह उड़ न सकी। छह में से एक चिड़िया उड़कर भलाण, गोही, रैला होती हुई गाँव धलियारा पहुँची। एक दिन गाँव के किसी व्यक्ति को स्वप्न आया कि काँगड़ा से देवी चिड़िया के रूप में धलियारा आई है। प्रातः उसने अपने स्वप्न की बात अन्य लोगों को बताई तो उन्होंने देवी को पूजना आरम्भ किया। माँ की कृपा से उनकी आशाएँ पूर्ण होने लगीं तो देवी आशापुरी के नाम से प्रसिद्ध हुई। बाद में लोगों ने मंदिर, रथ और मोहरों का निर्माण किया।

आशापुरी

गाँव : माहून, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान एवं भंडार : माहून।

मंदिर : नहीं है, केवल एक शिला है।

स्थापत्य : भवन नहीं है, उत्पत्ति स्थान पर पिरामिड आकार की एक बड़ी शिला को ही देवी रूप माना जाता है।

अधिकार क्षेत्र : माहून, शौरन आगे, खोड़ा आगे, दोहरानाल।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में जठाली और धामी की समिति।

पूजा : वर्ष की प्रत्येक संक्रांति, 8 व 15 प्रविष्टे, पूर्णिमा, अमावस्या और विशेष पर्वों पर धूप-दीप से।

रथ : करड़ू।

मोहरे : दो। इनमें से छोटा मोहरा मूलीमुख (मुख्य) माना जाता है और एक चाँदी का मोहरा दुर्वासा ऋषि द्वारा दिया गया है।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति, पंजां।

जनश्रुति : माहून गाँव में होड़ू नाम का एक ग्वाला रहता था। वह प्रतिदिन लोगों की गायें जंगल में चराने के लिए ले जाता था। शाम के समय चर कर जब गायें घर लौटती थीं तो श्यालटी नाम की गाय के थनों में दूध नहीं होता था जबकि प्रातः गाय ठीक दूध दिया करती थी। इस बात से गाय के स्वामी को ग्वाले पर शक हुआ कि कहीं वही तो दिन में दूध नहीं निकाल लेता? कुछ दिन तक ऐसा ही होता रहा और ग्वाले को मालिक से डाँट पड़ती रही। तंग आकर एक दिन ग्वाला गाय के पीछे-पीछे छुप कर चलता रहा। एक स्थान पर पहुँच कर जब गाय रुक गयी तो ग्वाले ने देखा कि उसके थनों से दूध स्वयं ही प्रवाहित हो रहा है और एक पक्षी के बच्चे उस दूध को पी रहे हैं। उसे बड़ा अचम्भा हुआ। उसने घर आकर सारा दृष्टांत मालिक को सुनाया पर उसे विश्वास न हुआ। अगले दिन वह भी ग्वाले के साथ जंगल गया और यह देखकर चकित रह गया कि एक झाड़ी के पास जाकर गाय सच में ही पक्षी के बच्चों को दूध पिला रही है। उसने क्रोध में आकर उस झाड़ी को आग लगा दी। आग देखकर पाँच बच्चे तो वहाँ से उड़ने में सफल हो गए परन्तु एक के पँख जल जाने के कारण वह उड़ न सका और वहीं जल गया।

कालांतर में किसी बुजुर्ग व्यक्ति को वहाँ से गुज़रते हुए एक कन्या दिखाई देने लगी जो कभी लुप्त हो जाती तो कभी प्रकट। फिर उस व्यक्ति को आवाज़ आई कि मैं वही पक्षी हूँ जिसे तुमने जलाया था। तुम मेरी देवी रूप में पूजा करो अन्यथा मैं तुम्हारा विनाश कर दूँगी। तब से देवी की मान्यता हुई। उसकी पूजा करने पर जब लोगों की आशाएँ पूरी होने लगीं तो वह देवी आशापुरी के नाम से विख्यात हुई।

आहिड़ू महावीर

गाँव : शऊल, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : शऊल।

स्थापत्य : गारा-पत्थर और लकड़ी से बना देशज शैली का ढाई मंज़िला मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है। छत के शिखर पर 'बदोर' स्थापित है। मंदिर के चारों ओर देव सौह है। प्रवेशद्वार पर सुन्दर नक्काशी की गई है।

शाखा मंदिर : शऊल।

अधिकार क्षेत्र : सपांगणी विहाली से बलियुल तथा खरादला से देहुरी तक का क्षेत्र।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी, काईथ, कठियाला की समिति।

पूजा : केवल विशेष अवसरों पर स्थानीय धूप से।

रथ : अंगू नामक लकड़ी का बना खड़ा रथ जिसके शीर्ष पर छत्र शोभित होता है।

मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा सात रजत निर्मित।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति के दिन देवता के कपाट खुलने पर गूर देव-भारथा सुनाता है। तत्पश्चात् वर्शोहा देता है। वैशाख संक्रांति को देवता देवी ब्रह्मलक्ष्मी और ब्रह्मा के साथ कनौण में मेला मनाता है। आश्विन मास में शौईरी मेला, जिसमें अन्य देवताओं को भी आमंत्रित किया जाता है। *शलवाड़ शौईरी* के नाम से प्रसिद्ध यह मेला दो दिन चलता है। पौष में *हारका* के बाद देवता को नरोल पड़ता है। जहाँ अन्य देवताओं के मुख मोहरे, पहरावा आदि सब कुछ उतार कर मात्र लकड़ी के ढाँचे पर पर्दा डाला जाता है वहाँ आहिड़ू महादेव के सज्जित रथ पर ही पर्दा डालकर इसे कमरे में बंद किया जाता है। यदि कनौण की देवी ब्रह्मलक्ष्मी और देवता ब्रह्म को किसी कारणवश नरोल न पड़े तो इस देवता का रथ भी खुला रहता है। आषाढ़ मास में आहिड़ू महावीर ब्रह्म देवता और ब्रह्मलक्ष्मी के सान्निध्य में होने वाले हूम (यज्ञ) में सम्मिलित होता है।

जनश्रुति : देवता स्वर्ग से उतरकर सर्वप्रथम अयोध्या में प्रकट हुआ। वहाँ से वह घूमते हुए कई स्थानों पर गया और अपने चमत्कारों द्वारा भिन्न-भिन्न नामों से जाना गया। अयोध्या से वह कनाऊर आया जहाँ कनाऊरी वीरनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कनाऊर से मंडी आने पर वीरनाथ कहलाया। नाऊ के लोग इसे अठारह पेड़ कहने लगे। नाऊ से आगे चलकर ज्वालापुर में यह आहिड़ू महावीर हुआ। कुल्लू से लाहुल पहुँचकर सीसू गाँव में घेपन, तलोकनाथ में तलोकी वीर, नगर में आहिड़ू महावीर, कुल्लू के रामशीला में वीर, सचैणी में खोड़ू देवता, रोट बाईले में बरंगू, वहाँ से तरेढा होते हुए शऊल आने पर आहिड़ू महावीर के नाम से विख्यात हुआ। इसे कनौण के ब्रह्म देवता का सहायक माना जाता है।

उषापुरी

गाँव : लपाहा, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान एवं मंदिर : लपाहा।

भंडार एवं शाखा मंदिर : धारा गाँव।

स्थापत्य : पैगोड़ा संयोजन शैली का दो मंज़िल का मंदिर काष्ठ-प्रस्तर निर्मित है। ऊपर की मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। छत पर स्लेट बिछे हैं। शिखर पर बदोर तथा कलश स्थापित हैं। मंदिर के सामने खुला प्रांगण है।

अधिकार क्षेत्र : लपाहा फाटी।

प्रबंध : कारदार, पालसरा, कठियाला, पुजारी और गूर की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से पूजा व आरती।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ जिसमें चारों ओर मोहरे लगाए जाते हैं। शीर्ष पर गुंबदाकार छत्र सुशोभित है।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को *पड़छन,* वैशाख संक्रांति को *बिरशू,* 26 आषाढ़ को *शाड़नू* मेला तथा आश्विन संक्रांति को *शौईरी* मेला लगता है।
जनश्रुति : उपापुरी को बाणासुर की पुत्री माना जाता है, जिसका विवाह भगवान् कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से हुआ था।

कपिल मुनि

गाँव : बशौणा, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बशौणा।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पैगोड़ा संयोजन शैली का मंदिर, जिसकी छतें स्लेटों से आच्छादित हैं। मंदिर के चारों ओर लगभग तीन फुट का बरामदा है। मंदिर के साथ एक कुटिया बनी है, जिसमें देवता का सामान रखा जाता है। एक ओर छोटी-सी रसोई है। इसमें भोग बनाया जाता है। मंदिर से सौ मीटर नीचे बारह बीघा भूमि में देवता की बणी है, जहाँ एक 'डेहरी' है, जिसमें देवता की मूल मूर्ति विराजमान है। इसके साथ ही एक शिवलिंग स्थापित है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव बशौणा, खौल आगे, तुन्ही सेर, जरड़, पीपल आगे, रोपा सेरी आदि।
प्रबंध : कारदार, पुजारी, गूर, भंडारी और ढौंसी की समिति।
न्याय प्रणाली : देवता से पूछ डालकर, मरोहड़ी, हिठ या पासे द्वारा तथा गूर के माध्यम से।
पूजा : बशौणा बणी में बने डेहरे में प्रातः-सायं धूप-दीप से तथा मंदिर में प्रत्येक मास के 8, 15, 20 प्रविष्टे, संक्रांति, अमावस तथा पूर्णिमा को पंचोपचारपूर्वक पूजा होती है तथा गुड़, आटे और गाय के घी से बने हलवे का भोग लगता है।
रथ : चार व्यक्तियों द्वारा उठाया जानेवाला फेटा रथ। शिखर पर छत्र लगा है।
मोहरे : दस। सभी रजत निर्मित हैं।
मेले-त्योहार : वैशाख संक्रांति को देव-रथ को सजाकर मंदिर प्रांगण में लाया जाता है, जहाँ गाँव की सभी महिलाएँ देवता की पूजा करती हैं और दिन के समय विरशू नृत्य करती हैं। वैशाख के 25, 26 प्रविष्टे को देवता अपनी हार के गाँव जरड़ में जाता है। भादों संक्रांति को डायन मारने रा साजा मनाया जाता है। इस दिन देवता की घंटी और धड़छ लेकर गाँव के चारों ओर जानेवाले रास्तों में भेखल की टहनियों का सुरक्षा चक्र लगाया जाता है ताकि डायनें गाँव पर बुरी नज़र न डालें। कृष्ण जन्माष्टमी को मंदिर में भंडारे का आयोजन होता है। आश्विन संक्रांति को सभी गाँववासी धूप देते हैं। कार्तिक मास की अमावस को *दीपावली* का पर्व, मार्गशीर्ष में देवता का जन्म दिवस मनाया जाता है। इसे *मौक्षर* धूप कहते हैं। देवता का गूर जगती पर बैठकर लोगों की समस्या का निवारण करता है। माघ संक्रांति को देवता इंद्रलोक जाता है।

समय-समय पर देवता तीर्थ स्नान के लिए रुद्रनाग, भूंतर पार्वती-व्यास के संगम पर तथा देवता की अपनी बावड़ी के पास जाता है।
जनश्रुति : मान्यता है कि कपिल मुनि ने बशौणा के जंगल में कई वर्षों तक तपस्या की और यहाँ एक जलस्रोत निकाला, जो आज भी देवता की बावली के नाम से जाना जाता है। कई वर्षों तक तपस्या करने के पश्चात् कपिल मुनि यहीं अंतर्धान हो गए और अपने तपःस्थल पर एक

प्रस्तर मूर्ति छोड़ गए। कालांतर में लोगों ने उसे पूजना शुरू किया और बाद में एक रथ का निर्माण किया।

कमला देवी

गाँव : गोही, **तहसील** : सैंज।

मूलस्थान, मंदिर एवं भंडार : गोही।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से देशज शैली में बना नवीन मंदिर। इसकी ऊपरी मंज़िल में आधा आवरण युक्त चौतरफा बरामदा है, जिसमें छत के साथ लकड़ी की झालर लगी है। मंदिर के प्रवेश-द्वार पर सुन्दर नक्काशी हुई है। इसके अतिरिक्त गोही में देवी की एक 'डेहरी' भी है।

शाखा मंदिर : सैंज।

अधिकार क्षेत्र : राक्षस गाड़ से नऊण नाली तथा बकशाल से गवाल़ ठाना तक।

प्रबंध : कारदार अधीनस्थ समिति। इसके अतिरिक्त प्रधान की अध्यक्षता में एक पंजीकृत समिति भी गठित है।

न्याय प्रणाली : मरोहड़ी द्वारा।

पूजा : प्रातः पंचोपचारपूर्वक तथा शाम को आरती गाई जाती है।

रथ : अंगू या चिऊं नामक वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ जिसके सिर पर चुरू की पूँछ के बाल लगाए जाते हैं। बालों पर सुनहरे वस्त्र का टोप और सबसे ऊपर सोने या चाँदी का छत्र सजाया जाता है। दो अर्गलाओं से युक्त इस रथ को दो व्यक्ति उठाते हैं और दो दायें-बायें सहारा देते हैं। सहारा देनेवाले व्यक्तियों को छड़ूमू कहा जाता है।

मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा अन्य रजत निर्मित हैं।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को देवी का 'नरोल' खुलता है। गूर देवी की भारथा सुनाता है तथा 'वर्शोहा' देता है। बैसाख के 2, 12 तथा 14 प्रविष्टे को मेले लगते हैं, जिनमें दूर-दूर से लोग ब्रास के फूल लाकर देवी को अर्पित करते हैं। ब्रास के फूलों का एक 'भिठ' बनाकर
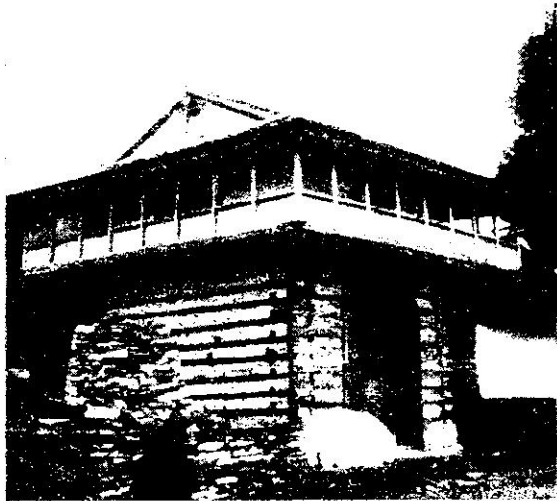
मंदिर की 'सौह' में लाया जाता है और दो दलों में बँट कर लोग उसे अपनी-अपनी तरफ खींचते हैं और जो जीतता है उसे देवी वरदान देती है। भादों मास में भद्र पूज, जिसमें देवी के निमित्त हारियान दान-दक्षिणा देते हैं। ऐसा माना जाता है कि इससे उनके अरिष्ट दूर हो जाते हैं। आश्विन संक्रांति को शौईरी का मेला लगता है। लोग नवान्न, फल-फूल देवी को अर्पित करते हैं। देवी गाँव के घर-घर में धूप पीने जाती है।

आश्विन पूर्णिमा को भगवती का जन्म दिवस मनाया जाता है। इस दिन देवी से जो भी मन्नत माँगी जाए, वह उसे पूर्ण करती है। पौष संक्रांति को देवी नरोल में चली जाती है और अगले तीन मास तक देवी की पूजा नहीं होती।

जनश्रुति : भगवती कमला सृष्टि की उत्पत्ति के समय हस्तिनापुर में प्रकट हुई। वहाँ से काँगड़ा, मंडी होते हुए कुल्लू क्षेत्र के पंजेई, तरेटा, सजाहरा, ग्वाल़ ठाना और शोचा नामक स्थानों पर गई। तत्पश्चात् गोही पहुँचकर देवी पिंडी रूप में प्रकट हुई और गोही के लोगों की कामनाएँ पूर्ण करने लगी। तब गाँववासियों ने एक 'डेहरी' बनाकर उसमें पिंडी की स्थापना की।

खोड़ू देऊ

गाँव : छरौण, **तहसील** : सैंज।
मूल स्थान : रैला।
मंदिर एवं भंडार : छरौण।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में बना ढाई मंज़िल का मंदिर, जिसकी चारों ओर को ढलवाँ छत पर स्लेटें आच्छादित हैं। शिखर पर बदोर स्थापित है। प्रवेशद्वार पर नक्काशी की गई है। मंदिर के चारों ओर देवसौह है।
अधिकार क्षेत्र : बकशाल से भूपन-शारन तक।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, मरोहड़ी द्वारा।
पूजा : विशेष अवसरों पर देवता के 'धामी' द्वारा स्थानीय धूप से पूजा की जाती है।
रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ जो वर्ष 1968 में बनाया गया है। इससे पहले इसका प्रतीक चिह्न साँकल ही थी।
मोहरे : आठ।
मेले-त्योहार : यह देवता लक्ष्मीनारायण रैला का सहायक है। अतः लक्ष्मीनारायण के मेले-त्योहारों में यह साँकल रूप में जाता है। रथ केवल कुल्लू दशहरा के अवसर पर निकलता है जिसे सरकार से पृथक् रूप से नज़राना मिलता है।
जनश्रुति : खोड़ू देवता पूर्व में एक गण था जो अपनी राक्षसी वृत्ति के कारण गाँववालों को तरह-तरह के कष्ट दिया करता था। कालांतर में देवता लक्ष्मीनारायण रैला आए तो उन्होंने इसे अपना प्रहरी बनाकर इससे वचन ले लिया कि अब वह गाँववालों को तंग नहीं करेगा और इसके बदले में इसे विशेष तिथियों पर भेड़ या बकरी की बलि दी जाएगी। वर्तमान में भी यह बलि-प्रथा निभाई जा रही है।

खोड़ू देऊ

गाँव : रैला, **तहसील** : सैंज।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : रैला।
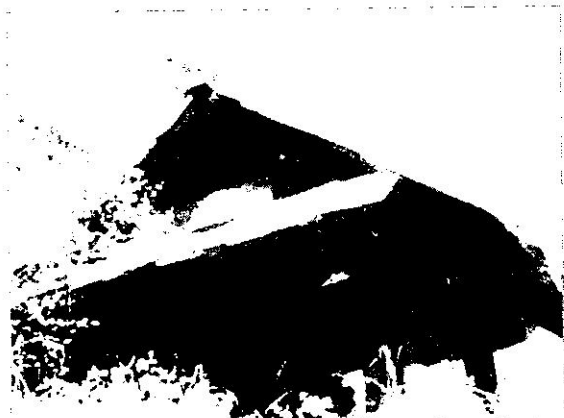
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में बने ढाई मंज़िल के मंदिर की चारों ओर को ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है। शिखर पर 'बदोर' लगा है। मुख्यद्वार पर सुन्दर नक्काशी की गई है। मंदिर के चारों ओर सौह है, जिसमें मेले आदि का आयोजन होता है। इसके अतिरिक्त देवता की एक डेहरी भी है।
अधिकार क्षेत्र : बकशाल से भूपन तक।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : देवरथ से, गूर द्वारा, मरोहड़ी विधि से।
रथ : चिऊं नामक वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ जिसका शीर्ष भाग छत्र से सुशोभित है। इस रथ का निर्माण लगभग तीन दशक पूर्व ही किया गया है। पहले देव-रथ नहीं होता था।
मोहरे : आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का तथा अन्य पीतल के।
मेले-त्योहार : खोड़ू देवता लक्ष्मीनारायण का सहायक है इसलिए जो उनके मेले-त्योहार हैं, उनमें यह सम्मिलित रहता है। इनमें इसका प्रतीक चिह्न लोहे की साँकल ही होती है। इसके अतिरिक्त *शईरी*, *हूम* और *भिठ* इसके अपने मेले-त्योहार हैं। देव रथ केवल कुल्लू दशहरा में लक्ष्मीनारायण जी के साथ जाता है और इसके लिए सरकार से देवता को अलग से नज़राना मिलता है।
जनश्रुति : राक्षसी वृत्ति का यह देवता इस क्षेत्र में मूल रूप से रहता था और अखरोट के जंगल में छिपकर वहाँ

से गुज़रने वालों को आघात पहुँचाया करता था। जब लक्ष्मीनारायण की रैला में स्थापना हुई तो उन्होंने इसे अधम प्रवृत्ति को छोड़ने के लिए बाध्य किया और देवत्व धारण करा कर अपनी प्रजा के प्रहरी का काम सौंपा। इसके बदले में इसे हर पर्व-त्योहार के अवसर पर भेड़ या बकरी की बलि दी जाने लगी। बलि की यह प्रथा आज तक कायम है।

गर्गाचार्य

गाँव : सचाणी, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : गाँव सचाणी में क्षादी व गाड़ा नामक स्थान।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से देशज शैली में बना ढाई मंज़िला मंदिर, जिसकी ऊपरी मंज़िल में अर्ध आवरणयुक्त चौतरफा बरामदा है और ढलानदार छत काली स्लेटों से ढकी है।

शाखा मंदिर : मौल, रोट, खनारगी गाँव।

अधिकार क्षेत्र : गाँव थनैरा, शेगलीधार, क्षादी, शौरन आगे, टीपरीधार, पंजबेहड़, पटाहरा, ठारडा।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में जठाली, कठियाला आदि अन्य कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता के गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः देवरथ की पूजा जेवा परिवार के पुजारी द्वारा की जाती है। शाम को आरती की जाती है। रक्षाबंधन की शाम को आरती भरैणी परिवार का धामी करता है। प्रतिदिन चावल, दूध और गुड़ का भोग लगता है। भोग कच्चा या खीर बनाकर भी लगाया जाता है।

रथ : अंगू की लकड़ी का बना दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर चाँदी का डेढ़ किलोग्राम का छत्र लगता है।

मोहरे : आठ। पाँच स्वर्ण के, दो रजत के तथा मुख्य मोहरा अष्टधातु का।

मेले-त्योहार : क्षादी भंडार में ताँबे की कड़ाही में रखे

देवता के मोहरे को फाल्गुन संक्रांति के दिन बाजे-गाजे के साथ गाड़ा डेहरा लाया जाता है। वहाँ भारथा सुनाकर शाम को कड़ाही वापिस क्षादी लाई जाती है। वैशाख संक्रांति को देवता रथ पर सज्जित होकर वाद्यों की ध्वनि के साथ 'सौह' में निकलता है। शाम को क्षादी लौटता है, जहाँ छोटा सा मेला लगता है। रक्षाबंधन के दिन देवता का प्रकटोत्सव मनाया जाता है। इस दिन देवता की प्रजा द्वारा बड़ा यज्ञ किया जाता है। रक्षा बंधन के छह-सात दिन बाद अश्विनी नक्षत्र के अवसर पर शुकदेव मुनि के जन्मदिन के उपलक्ष्य में क्षादी में मेला लगता है। जिसे *शुगे री जाच* कहते हैं। इसमें क्षादी मंदिर से शुकदेव और परशुराम जी की मूर्तियों को एक पालकी में उठाकर सौह में लाया जाता है। गर्गाचार्य रथ पर सवार होकर आते हैं। जाच में परशुराम की गुर्ज पर शुकदेव की पक्षी-आकृति की मूर्ति को बाँधकर पुरुष लोकनृत्य करते हैं, जिसमें वे एक टाँग पर नाचते हुए लंगड़ाती स्थिति में सौह में एक चक्र लगाते हैं। इसके पीछे धारणा यह है कि शुकदेव लंगड़े जन्मे थे। यह मेला तीन दिन तक चलता है परन्तु

शुकदेव और परशुराम केवल पहले दिन ही मेले में रहते हैं। अगले दो दिन केवल गर्गाचार्य ही सम्मिलित होते हैं। पौष संक्रांति को मुख्य मोहरे को छोड़कर अन्य सभी मोहरों को रथ से निकाल कर निश्चित ताँबे की कड़ाही में रखा जाता है। इसे नरोल पड़ना कहते हैं। हर तीसरे वर्ष वैशाख संक्रांति को *भिठ* पर्व मनाया जाता है।

जनश्रुति : किसी समय जब राजा सहस्रबाहु यज्ञ कर रहा था तो राक्षसों ने हवनकुंड में मांस फेंक कर इसे अपवित्र कर दिया। तब सभी देवता इधर-उधर चले गए और देवताओं के पुरोहित श्री गर्गाचार्य जी यज्ञ छोड़कर राहतर होते हुए सचाणी गाँव पहुँचे। वहाँ उन्होंने शिवजी की तपस्या की और गंगा के सात पुत्र वसुओं को एक गुप्त चट्टान में स्थापित किया। आज भी इस स्थान पर पहाड़ से सात जलस्रोत निकलते हैं। यह श्रेष्ठतम तीर्थों में से एक माना जाता है। सचाणी से ऋषि तलाड़ा, फबयारी होते हुए कई स्थानों पर गए। वे जहाँ भी ठहरे, वहीं उनके मंदिर का निर्माण हुआ।

गौतम ऋषि

गाँव : मनिहार, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : मनिहार।

स्थापत्य : 1990 के दशक में बना एक मंज़िल का साधारण मंदिर।
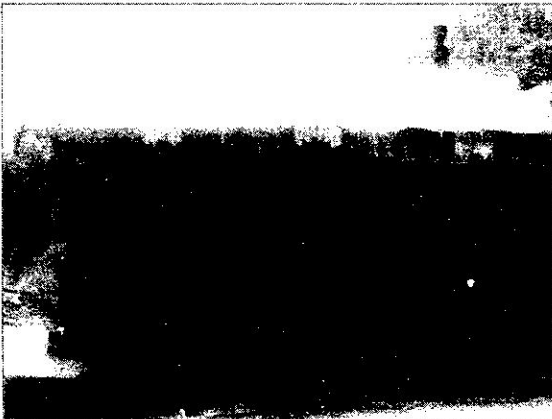
अधिकार क्षेत्र : मनिहार गाँव।

प्रबंध : कारदार, पुजारी तथा गाँव के चुने हुए कुछ व्यक्तियों की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से, 'लड्डू' डालकर, चावल के दानों से पूछ डालकर।

पूजा : प्रत्येक मास की संक्रांति, 15 तथा 20 प्रविष्टे को धड़छ में धूप तथा बेठर जलाकर देवता की पूजा की जाती है। यदि देवता मंदिर से बाहर सौह में निकला हो तो रोज़ सुबह-शाम पूजा होती है। शाम के समय आरती में केवल घी का दीपक जलाया जाता है और घंटा ध्वनि की जाती है।

रथ : दो जमाणों (अर्गलाओं) वाला खड़ा रथ अंगू नामक वृक्ष की लकड़ी से निर्मित है। इसकी 'शीव' ताम्बे की बनी है और शीर्ष पर गुंबदाकार छत्र है।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को *फागली* मेला लगता है।

जनश्रुति : गौतम ऋषि मनिहार, जमलू ऋषि उड़सू तथा च्यवन ऋषि नजाँ-ये तीनों देवता सर्वप्रथम बजौरा आए। वहाँ बेठर धूप की सब्जी खाई। वहाँ से वे मणिकर्ण घाटी में शिल्हा के समीप गाता-रुआड़ पहुँचे। वहाँ च्यवन ऋषि का जमदग्नि ऋषि के भाई जगथम से झगड़ा हुआ क्योंकि दोनों बरशैणी गढ़पति बनना चाहते थे। गौतम ऋषि ने उनसे तीर चलाने के लिए कहा और शर्त रखी कि जिसका तीर मार्ग से पीछे लगेगा वही गढ़पति बनेगा। इस मुकाबले में च्यवन ऋषि हार गया और जगथम बरशैणी का गढ़पति बना। वहाँ से चलकर तीनों ऋषि शिल्हा पहुँचे और गाँववासियों से पीने के लिए पानी माँगा, परन्तु किसी ने भी उन्हें पानी न दिया। तब मोहरू नाले में गुर्ज मार कर पानी का स्रोत निकाला। शिल्हावासियों ने उनसे कहा कि यदि वे एक प्रस्थ सत्तू व सूर से साठ परिवारों को तृप्त कर देंगे तभी वे उन्हें ऋषि मानेंगे। उन्होंने वैसा ही किया। तत्पश्चात् वे तिंदर भाँडा पहुँचे जहाँ दुष्ट ठाकुरों का राज था। उनको समाप्त करने के लिए ऋषियों ने छह मास तक

इतनी वर्षा बरसाई कि वे भूख से तड़प-तड़प कर मर गए। वहाँ से वे शौराकण्डी, ग्राहण होते हुए रीहड़ी पहुँचे और वहाँ विश्राम किया। च्यवन ऋषि गहरी निद्रा में लीन हो गया, गौतम और जमलू आगे चल दिए। जब च्यवन ऋषि को जाग आई तो अपने को अकेला पाकर वह भी चल दिया और चेहुधरा नामक स्थान पर पहुँचकर एक नड़ दम्पती से रास्ता पूछा और न वताने पर उन्हें शिला बना दिया। वहाँ से वह कृष्णी अंग पहुँचा, जहाँ उसे गौतम और जमलू भी मिल गए। फिर तीनों आहणी अंग नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ से गरीद होते हुए किऊणा पहुँचे जहाँ किसी नाग का अधिकार था। उससे मित्रता की फिर तीनों ने अपने-अपने लिए स्थानों का चयन किया। च्यवन ऋषि ने नजाँ गाँव, जमलू ने उड़सू और गौतम ऋषि ने मनिहार गाँव में अपना स्थायी निवास बनाया।

च्यवन ऋषि

गाँव : नजाँ, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान : शिल्हा गाँव।
मंदिर एवं भंडार : नजाँ।
स्थापत्य : काठकुणी की चिनाई से पहाड़ी शैली में बना दो मंज़िल का मंदिर लगभग छह सौ वर्ष पुराना है। नीचे की मंज़िल में देवता का भंडार है तथा ऊपर की मंज़िल में रथ रहता है, यहाँ जाने के लिए नीचे की मंज़िल के भीतर से ही सीढ़ी लगी है। ढलानदार छत पर स्लेट लगे हैं। मंदिर निर्माण के लिए पूरे-पूरे वृक्ष के शहतीर प्रयोग में लाए गए हैं। मंदिर के एक तख्ते पर टाँकरी के कुछ आलेख हैं। मंदिर के बाहर दक्षिण की ओर दयार वृक्ष की एक ध्वजा खड़ी है, जो लगभग छत्तीस वर्ष पूर्व लगाई गई है। सामने देव प्रांगण में देवता के मेले-उत्सवों का आयोजन होता है। प्रांगण के एक ओर लकड़ी के शहतीरों से बनी एक चौखंडी है, जिसमें देव-वाद्य रखे जाते हैं। वर्षा होने पर वादक भी यहीं बैठकर वाद्य बजाते हैं।
शाखा मंदिर : सैंज घाटी का कोट खड़ोगचा नामक स्थान।

अधिकार क्षेत्र : गाँव आईशा, नजाँ, उखलचीन, कोईशूधार, पिगरंग, खणी, ठेला बुंगा, राउली, उशग तथा सोधण।
प्रबंध : उपायुक्त द्वारा गठित छह सदस्यीय समिति।
न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से, 'मरोहड़ी' डालकर, अक्षत के दानों से।
पूजा : प्रतिदिन पूजा की प्रथा नहीं है। प्रत्येक मास की संक्रांति, 15 तथा 20 प्रविष्टे को 'धड़छ' में 'बेठर' जलाकर पुजारी देवता की पूजा करता है। मेले-त्योहारों के अवसर पर जब देवता का रथ मंदिर प्रांगण में निकलता है तो प्रातः सायं पंचोपचार पूर्वक देवता की पूजा की जाती है। त्रिकाल वेला में सभी वाद्य बजाए जाते हैं।
रथ : अंगू नामक लकड़ी का बना दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ जिसके शीर्ष पर स्वर्ण-छत्र लगता है। इसका पुनर्निर्माण पालगी गाँव के दुर्वासा ऋषि के आदेश से होता है और ऐसा तभी किया जाता है जब रथ टूट जाए या उसमें दिव्य शक्ति न रहे। रथ के बन जाने पर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा हेतु उसे मणिकर्ण घाटी में नकथाण गाँव के पास रुद्र नाग के झरने में पवित्र स्नान के लिए ले जाया जाता है। इस बीच मार्ग में सीस, बड़ोगी, शाट तथा शिल्हा गाँव में रथ का रात्रि विश्राम होता है और प्रत्येक गाँव में दो-दो बकरे काटे जाते हैं, जिनका व्यय च्यवन ऋषि के कोष से होता है। रुद्रनाग में स्नान करने के बाद देवता शिल्हा गाँव आता है और वहाँ भी दो बकरों की बलि दी जाती है। वहाँ से देवता शौरा कंढी,

ग्राहण, चेउदरा, मनिहार, हाणी आगे तथा उड़सू होते हुए नजाँ लौटता है। यह यात्रा लगभग एक मास में पूरी होती है। नजाँ में यज्ञ करने के पश्चात् प्राण-प्रतिष्ठा सम्पन्न होती है।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को *फागली,* जिसमें देवता इन्द्र की सभा से लौटने पर वहाँ से लाए शुभाशुभ फलों के बारे में गूर के माध्यम से प्रजा को जानकारी देता है। देव-भारथा सुनाई जाती है। पंद्रह फाल्गुन को बकरे की बलि देकर अनिष्टकारी शक्तियों को भगाने का उपक्रम किया जाता है। चैत्र संक्रांति को *देऊकार* होता है, जिसमें गूर के माध्यम से देवता से लोग प्रश्न पूछते हैं। वैशाख संक्रांति को *कोन्हा विरशू*। इस दिन देव-रथ गाँव के सभी घरों में जाता है और गृहलक्ष्मी धूप-दीप, अक्षत, पुष्प, कुंकुम से देवता की पूजा करती है। रथ के ऊपर से अखरोट फेंकती है जिन्हें देवता के साथ आए लोग पकड़ते हैं। देवता को 'जौरे' तथा ब्रास के फूल चढ़ाए जाते हैं। दोपहर में महिलाएँ देव-प्रांगण में विरशू नृत्य तथा कन्याएँ लाल्हड़ी-नृत्य करती हैं। दो वैशाख को *बाही रा फेरा* के दिन रस्सा-कस्सी का खेल होता है, जिसे स्थानीय बोली में *भोटा मरेचा री खेल* कहा जाता है। इसी दिन *कंढा पूजन* का दिन भी देवता द्वारा निश्चित किया जाता है जो वैशाख मास में ही होता है। इस दिन गाँव के सभी पुरुष देवरथ सहित कामखोणी जोत पर जाते हैं। वहाँ तीन-चार बकरों की बलि देकर जोगणियों की पूजा की जाती है और शाम को सभी वापिस आ जाते हैं। गाँव में आकर लोकनृत्य किए जाते हैं। ज्येष्ठ मास के चार प्रविष्टे को ठेला गाँव की *पचौहला* जाच की पूर्व संध्या पर 'सौह' में जागरा किया जाता है। पाँच प्रविष्टे को प्रातः देवता बाजे-गाजे के साथ ठेला गाँव जाता है। भाद्रपद संक्रांति को डायनों के प्रकोप से बचने के लिए लोग मंदिर व घर की छतों पर भेखल नामक झाड़ी की टहनियों को रखते हैं। आश्विन संक्रांति को मंदिर-प्रांगण में *जगती पूछ* का आयोजन होता है। माघ संक्रांति को देवता का गूर जगती पट पर बैठकर इन्द्रलोक से उनके लिए खुशहाली लाने का वचन देता है, तत्पश्चात् रथ से मुखौटे तथा शृंगार के साजो सामान को उतार कर भंडार में रख दिया जाता है और मंदिर के कपाट बंद हो जाते हैं।

जनश्रुति : यह ऋषि किसी समय शिल्हा गाँव में आया था और कई वर्ष वहाँ वास करने के पश्चात् अंतर्धान हो गया। जिस स्थान पर वह अदृश्य हुआ था वहाँ पर एक पिंडी प्रस्फुटित हुई थी जिसे लोगों ने पूजना आरम्भ किया। कालांतर में शिल्हा गाँव का कोई व्यक्ति शौराकंडी, ग्राहण, चेउदरा, मनिहार, हाली आगे तथा उड़सू होते हुए नजाँ गाँव पहुँचा और वहाँ की किसी युवती से विवाह करके वहीं रहने लगा। च्यवन ऋषि उस व्यक्ति का कुलदेवता था, अतः उसने वहाँ ऋषि की स्थापना कर उसे पूजना शुरू किया। समय बीतने पर गाँव के अन्य लोग भी उसे पूजने लगे और वह नजाँ का ग्रामदेवता बना।

विशेष : नजाँ गाँव में अत्रि ऋषि की भार्या और च्यवन की बहन माता अनुसूईया का मंदिर है। इस स्थान को तीर्थस्थल माना जाता है क्योंकि यहाँ स्थित बावली का जल गंगा के समान पवित्र है और च्यवन ऋषि तथा अन्य देवता इस जल से ओप (छींटे) लेते हैं। यदि इस बावली का पानी सूख जाए तो मान्यता है कि यह अकाल पड़ने का द्योतक है।

जनासर देऊ

गाँव : रैंह, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान एवं मंदिर : रैंह।
भंडार : कौशा गाँव।
स्थापत्य : अधिक भाग काष्ठ से ही निर्मित मूल मंदिर के काष्ठ स्तम्भों पर चारों ओर को ढलानदार छत है जिसपर अनगढ़ स्लेट बिछे हैं। उसके ऊपर मध्य में दो ओर को ढलवाँ छत के शिखर पर 'वदोर' स्थापित है। छत के चारों ओर लकड़ी की झालर है। स्तम्भों के साथ लकड़ी की ही

आधी-आधी दीवार दी गई है, जिसके भीतर गर्भगृह है। इसमें देवता की पिंडी स्थापित है। दूसरा मंदिर दो मंज़िल का है। दीवारों पर चूने की पोताई की गई है। ऊपर की मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। चारों ओर को ढलवाँ त्रिछतीय मंदिर के शिखर पर कलश स्थापित है।

शाखा मंदिर : रैंह।

अधिकार क्षेत्र : गाँव रैंह, कौंशा, दुशाड़, मन्याशी, खोड़ुनाल, खणीधार, मढ़ी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः के समय विधिवत् पूजा और शाम के समय आरती होती है।

रथ : दो अर्गलाओं युक्त खड़ा रथ जिसके चारों ओर देवता के मोहरे सजाए जाते हैं। रथ के शीर्ष पर रजत-छत्र सुशोभित है।

मोहरे : अष्टधातु निर्मित ग्यारह मोहरे।

मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को *नुआं सोमत*, चैत्र एकादशी, वैशाख संक्रांति तथा श्रावण की एकादशी को देवमंदिर में त्योहार मनाए जाते हैं। भाद्रपद चतुर्दशी को मेला लगता है जिसे *हूम* कहते हैं। इस दिन देवगढ़ गाँव के लोग रात खुलने से पहले ही मशालें लेकर मंदिर के पास की सौह *राणी रा खल़* में पहुँचते हैं और ढाई फेरे नाटी नाचते हैं। दुरात्माओं को भगाने के उद्देश्य से अश्लील गीत गाते हैं। वहाँ से लौटने पर उन्हें सीडों का भोग दिया जाता है। अमावस के दिन भी मेले में खूब रौनक रहती है। इन सभी त्योहारों और मेले में देवता अपने रथ पर सुसज्जित होकर आता है और अपनी हार के लोगों को दर्शन देकर उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण करता है।

जनश्रुति : किसी समय रैंह गाँव का एक पुहाल (गड़रिया) अपने दो साथियों सहित भेड़-बकरियों को लेकर ऊँची पहाड़ियों की ओर चल पड़ा। दो-तीन मास बाद जब उनका राशन समाप्त हो गया तो उसके साथी राशन लेने के लिए घर लौट आए और उसे दो-तीन सौ भेड़-बकरियों की रखवाली अकेले ही करनी पड़ी। वह उन्हें लेकर हंसकुंड नामक स्थान पर पहुँच गया। अन्न के बिना सात दिन तक उसे भूखा ही रहना पड़ा। जब भूख असह्य हो गई तो उसने एक बकरा काटकर उसके मांस से पेट भरने की सोची और बकरा काट दिया। उसके कटते ही वहाँ साधु के रूप में एक देवता प्रकट हुआ और पुहाल से बोला कि देवशयनी (श्रावण मास की) एकादशी के दिन इस पवित्र स्थल पर वह ऐसा बुरा कार्य नहीं होने देगा। उसने बकरे का सिर उसके धड़ पर रखकर उसे जीवित कर दिया और पुहाल को व्रत रखने को कहा। साधु ने अगले दिन के भोजन के लिए उसे एक मुट्ठी चावल दिए और कहा कि सामने के हंसकुंड में स्नान करके ही भोजन करना। घर लौटते समय यहाँ से जल भर कर ले जाना और घर में सुरक्षित स्थान पर रखना। पुहाल ने साधु के कहे अनुसार उस दिन व्रत रखा और अगले दिन हंसकुंड में स्नानकर वहाँ से उसने एक लोटा जल का भर लिया। तत्पश्चात् चावलों की खीर बनाई। इतने में उसके साथी भी लौट आए। उसने पतीले से खीर निकाली और तीनों खाने बैठ गए। उनके भरपेट खीर खाने के बाद भी पतीला खीर से भरा रहा तो पुहाल के साथियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पुहाल से पूछा तो उसने अपने साथ घटी घटना उन्हें सुनाई और इसे उस साधु का चमत्कार माना। अगले दिन जल के लोटे को छींके में डालकर, अपना सामान उठाकर वे आगे चल दिए और तीन दिन बाद शूपाकुणी नामक स्थान पर पहुँचे, जहाँ

उनकी सारी भेड़-बकरियाँ अकस्मात् गुम हो गईं। सारा दिन ढूँढने पर भी वे न मिलीं। रात को स्वप्न में एक पुरुष ने पुहाल से कहा कि उसकी भेड़-बकरियाँ गड़गड़ासर नामक स्थान पर सुरक्षित हैं। दूसरे दिन अपने साथियों को भोजन बनाने के लिए कहकर वह गड़गड़ासर की ओर चल दिया। वहाँ उसे पूरा रेवड़ दिखाई दिया तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उसने बाँसुरी निकाली और बजाने लगा। उसकी धुन सुनकर वह पुरुष प्रकट हुआ और उसे समीप के जल-कुंड में नहाने के लिए कहा। नहाने के बाद जब वह उस पुरुष के पास आया तो उसने उससे कहा कि यहाँ से लौटते हुए पीछे मुड़कर मत देखना। पुहाल अपनी भेड़-बकरियों को लेकर शूपाकुणी की ओर चल पड़ा। जब अपने साथियों के पास पहुँचा तो उन्होंने कहा कि ये कहाँ मिलीं तो पुहाल ने एकदम पलट कर देखा। उसके पीछे देखते ही सारी भेड़-बकरियाँ पत्थर की हो गईं। यह देखकर वह बड़ा दुःखी हुआ और बाँसुरी बजाने लगा तथा लामण गाने लगा, जिसे सुनकर स्वप्न में दिखाई देने वाला वह पुरुष प्रत्यक्ष प्रकट होकर बोला कि मैं तुम्हारी बाँसुरी की धुन और लामण गीत सुनकर अत्यंत प्रसन्न हूँ और तुम्हारे साथ जाना चाहता हूँ। तुम्हारे घर के पास जहाँ पर मकड़ी ने जाला बनाया होगा, वही मेरा स्थान समझना। पुहाल ने उससे कहा कि मैं भी यह चाहता हूँ कि मेरी बहुत सी भेड़-बकरियाँ हों और लम्बा-चौड़ा परिवार हो। उस पुरुष के तथास्तु कहने पर वे आगे चल पड़े। पिता नामक स्थान पर उन्हें रात पड़ गई और वे खा पीकर वहीं सो गए। प्रातः जब उठे तो यह देखकर चकित हो गए कि उनकी सारी भेड़-बकरियाँ भी वहीं सोई थीं। उन्हें लेकर वे घर पहुँचे और पुहाल ने हंसकुंड से लाए जल के लोटे को तीरी (दीवार में बनी खुली अलमारी) में रख दिया। कुछ दिन बाद वह पुरुष उसे दोबारा स्वप्न में दिखाई दिया और बोला कि मैं जनासर देवता हूँ, तूने तो मुझे भुला ही दिया। प्रातः उठकर पुहाल उस दिव्य पुरुष के बारे में सोचता हुआ जब घर से बाहर निकला तो उसने समीप ही भेखल की झाड़ी में मकड़ी द्वारा बनाए गए जाले को देखा जो दो भागों में विभक्त था। बाहर बड़ा घेरा और उसके अन्दर एक छोटा घेरा। उसे एकदम उस पुरुष की कही बात याद आई। उसने झाड़ी काट कर खुदाई की तो भूमि से अष्टधातु का एक मोहरा निकला जिसे घर लाकर उसने तीरी में रख दिया और बाद में उसने उस स्थान पर जाले के आकार का मंदिर बनाया-चारों ओर दीवारें और बीच में गर्भगृह। आज भी यह मंदिर वैसा ही है।

जमलू

गाँव : उड़सू, **तहसील** : सैंज।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : उड़सू।
स्थापत्य : वर्ष 1990 में काष्ठ-प्रस्तर से बना साधारण मंदिर।
अधिकार क्षेत्र : गाँव उड़सू व झूणी।
प्रबंध : कारदार, पुजारी तथा हारियानों की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, 'मलोही' डालकर, अक्षत से।
पूजा : प्रत्येक मास की संक्रांति, पंद्रह तथा बीस प्रविष्टे को पूजा होती है। इसके अतिरिक्त मेले-त्योहारों के अवसर पर जब देवता प्रांगण में विराजित होता है तो प्रतिदिन प्रातः-सायं धड़छ में बेठर धूप जलाकर घंटा ध्वनि के साथ पुजारी पूजा करता है। शाम के समय घी का दीपक जलाकर आरती की जाती है।
रथ : अंगू वृक्ष की लकड़ी का बना खड़ा रथ जिसके शीर्ष पर गुंबदाकार छत्र सुशोभित है।
मोहरे : आठ।
मेले-त्योहार : वैशाख मास में देवता हारियान सहित उड़सू कंढा जाता है, जहाँ जोगणियों की पूजा की जाती है।
जनश्रुति : देखिए गौतम ऋषि, गाँव मनिहार।

जमलू

गाँव : पाशी, **तहसील** : सैंज।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पाशी।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से कोट शैली में निर्मित साढ़े तीन

मंज़िल के मंदिर में जमलू देवता व मझाड़ के सुनकू नारायण के रथ रहते थे। मई 2012 में दोनों रथों सहित यह मंदिर जल कर राख हो गया। अब मोहरे व रथ पुनः बना दिए गए हैं, जिन्हें फिलहाल भंडारी के घर में रखा गया है।

शाखा मंदिर : खड़ाँगचा गाँव।

अधिकार क्षेत्र : भूपन नाला से खड़ाँगचा तक।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, छठाली, भंडारी व कायथ की समिति।

न्याय प्रणाली : मरोहड़ी द्वारा, गुरमुख से, देव-रथ द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन पंचोपचार पूर्वक। उस समय कमलनेत्र स्तोत्र का पाठ किया जाता है।

रथ : चीऊँ नामक वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर चुरू गाय की पूँछ के बाल लगाकर ऊपर टोप पहनाया जाता है। सबसे ऊपर स्वर्ण-छत्र लगाया जाता है।

मोहरे : आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का तथा अन्य सात स्वर्ण के।

मेले-त्योहार : फाल्गुन के 7 प्रविष्टे को देव-मंदिर के कपाट खुलते हैं। रथ पर सज्जित देवता मंदिर सौह में आता है और गूर भारथा सुनाकर बर्शोहा देता है।

वैशाख संक्रांति को हारियान जंगल से ब्रास के फूल लाकर मंदिर में चढ़ाते हैं। सौह में देव कार्यवाही सम्पन्न होने के पश्चात् दिन भर नाटी डाली जाती है।

आश्विन संक्रांति से *शौईरी मेला* आरम्भ होकर दो-तीन दिन तक चलता है। संक्रांति की पूर्व संध्या को देवता को मंदिर से डेहरे में लाया जाता है, जहाँ रात भर जागरण होता है। प्रातः देव कार्यवाही के बाद नाटी डाली जाती है। शाम 5-6 बजे देवता हारियान और बाजे-गाजे के साथ सारे गाँव का फेरा लगाता है और गाँव के प्रत्येक घर से स्वागतस्वरूप देवता पर फल-फूल, अखरोट आदि न्योछावर किए जाते हैं। आपस में दूब बाँटी जाती है। पौष संक्रांति को देवकार्यवाही के बाद मंदिर के कपाट बंद हो जाते हैं, जो फाल्गुन संक्रांति को खुलते हैं।

जनश्रुति : द्वापर के अंतिम चरण में हस्तिनापुर में प्रकट होकर देवता कांगड़ा, मण्डी, नीणू, पालगी, शौचा, रैला होते हुए धलियारा पहुँचा और वहाँ की देवी आशापुरी को धर्म बहन बनाया। धलियारा से जमलू पाशी आया और पतेनी व टोटला वंश के लोगों को मंदिर बनाने का आदेश देकर बदले में उन्हें अन्न-धन से परिपूर्ण कर सुख-शांति का वरदान दिया। उनकी सुख-समृद्धि को देखकर अन्य लोगों ने भी जमलू को पूजना आरम्भ किया।

जमलू

गाँव : श्याह, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान : मलाणा।

मंदिर एवं भंडार : श्याह।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से पैगोड़ा शैली में बना त्रिछतीय मंदिर जिसका निर्माण 1970 के दशक में हुआ है। कोट
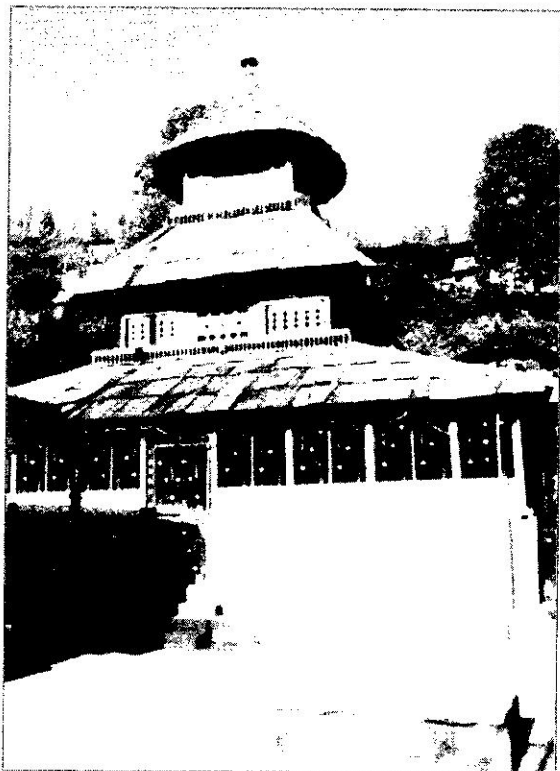
शैली में बनी एक कोठी है जिसे देवता का भंडार कहते हैं। इसमें देवता का खंडा, मोहरे तथा वाद्य रखे जाते हैं। साथ ही देशज शैली में निर्मित रेणुका माता का मंदिर है।

अधिकार क्षेत्र : श्याह गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पुजारी, गूर, कुठाला, ढौंसी, खोलीदार आदि कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से देवता द्वारा, 'लड्डू' डाल कर।

पूजा : प्रातः-सायं दोनों समय। प्रातः की पूजा में पुजारी स्नान आदि से निवृत्त होकर देवता की बावड़ी से झारी में पानी लाता है और मोहरों को स्नान कराता है। चंदन का तिलक लगाकर गुग्गुल धूप से पूजा करता है। विशेष पर्वों में बजंत्री देवता के वाद्य बजाते हैं।

रथ : अंगू की लकड़ी का बना खड़ा रथ।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : चैत्र संक्रांति को देवता के कपाट खुलते हैं और गूर देव भारथा सुनाता है। प्रातः आठ-नौ बजे देवता के रथ को सजाकर मंदिर से बाहर निकाला जाता है और माता रेणुका के मंदिर के पास ले जाया जाता है। वहाँ गूर जगती पौट पर बैठकर देवता के प्रकट होने की कथा सुनाता है और उपस्थित लोगों को 'शेष' देता है। इसी मास शुभ दिन में मंदिर में जप-पाठ किया जाता है। वैशाख संक्रांति की पूर्व संध्या को *जागरा* जलाया जाता है। देवता रथ पर सज्जित होकर प्रांगण में निकलता है। गूर 'देऊखेल' करता है। अगले दिन देवता गाँव में घर-घर जाता है। गृहिणी थाली में धूप, पुष्प, कुंकुम और अक्षत लेकर देवता की पूजा करती है। गूर घरवालों की शंकाओं का समाधान करता है। शाम के समय गूर, पुजारी तथा कुछ अन्य लोग देव-भंडार में जाकर खंडा लाते हैं। वाद्ययंत्र बजते हैं और गूर खंडा-नृत्य करता है। श्रावण व भादों में *काहिका* व *भाद्रों मेला* लगता है। आश्विन संक्रांति को लोग देवता को जूब देते हैं और आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। मकर संक्रांति को देवता स्वर्ग जाने से पूर्व मंदिर में *देऊकार* करता है।

जब देवता को लगता है कि गाँव पर कोई विपत्ति आने वाली है तो उसके निवारण हेतु वह गाँव की परिक्रमा कर रक्षासूत्र बाँधता है। इसमें सूअर, मुर्गा, मछली, केकड़ा, भैंसा और बकरों की बलि दी जाती है।

जनश्रुति : किसी समय मलाणा का जमलू देवता एक साधु के वेश में घूमते हुए श्याह गाँव पहुँचा। वहाँ पर रावल (याज्ञवल्क्य) का वास था। रावल और साधु में शास्त्रार्थ हुआ। तदुपरांत साधु हवाई गाँव के एक एकांत स्थान मौढ़ाबाड़ी में तपस्यारत हुआ। आसपास के लोगों ने जब वहाँ साधु को देखा तो अपनी समस्याओं के समाधान हेतु वे उसके पास आने लगे। क्योंकि वह दिव्य शक्तियों से परिपूर्ण था, अतः लोगों की मनोकामनाओं को पूर्ण करने लगा। एक दिन वह अन्तर्धान हो गया और इस बात से वहाँ के लोग बड़े चिंतित हुए। तब किसी व्यक्ति में प्रवेश कर साधु वेशधारी देवता जमलू ने गाँव वालों से उसके निमित्त मंदिर बनाने का आदेश दिया। हवाई और श्याह गाँव के लोगों ने वहाँ मंदिर बनाकर देवता को पूजना शुरू किया। कभी देवता का निशान (करडू आदि) श्याह आता तो कभी हवाई जाता। भंडार हवाई में ही था। सत्तरहवीं शताब्दी में दोनों गाँवों के लोगों ने मिलकर रथ का निर्माण किया जो अधिकतर हवाई गाँव में ही रहता, लेकिन उत्सवों के लिये श्याह भी आता। सन् 1962 के लगभग दोनों गाँववालों में होने वाले मनमुटाव के कारण हवाई वालों ने अपना रथ बनाया और देवता का सामान आपस में बाँट लिया, जिसमें पुराना रथ श्याह गाँव वालों को मिला और उन्होंने वहाँ जमलू का अलग मंदिर बनाया।

जमलू

गाँव : सीस, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : सीस।

स्थापत्य : लगभग हज़ार वर्ष पुराना, काष्ठ-प्रस्तर निर्मित मंदिर दो मंज़िल का है। पहली मंज़िल में दो कक्ष हैं,

जबकि दूसरी मंज़िल में एक ही कमरा है, लेकिन लकड़ी के शहतीर से उसमें दो भाग बनाए गए हैं। मंदिर के अग्र भाग में बरामदा है। छत स्लेटों से आच्छादित है। नीचे के द्वार पर सर्प, स्थानीय वेशभूषा पहने नृत्य करते नर्तक तथा पुष्प-बेलें उकेरी गई हैं जो दर्शनीय हैं। मंदिर के आगे 'सौह' है। यहाँ से 100 मीटर की दूरी पर एक खेत के मध्य माहून के विशाल वृक्ष के नीचे रेणुका माता की दो छोटी-छोटी डेहरियाँ हैं, जिन्हें नरोल कहते हैं। इन्हें कभी खोला नहीं जाता।

अधिकार क्षेत्र : गाँव सीस, कुईन, पिगरंग, खणी, मेथिग व कोईशूधार।

प्रबंध : कारदार, भंडारी, पुजारी, पुरोहित व हारियान में से कुछ चुनिंदा व्यक्तियों की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से, 'मलोही' डालकर, अक्षत के दानों से।

पूजा : प्रत्येक मास की संक्रांति, 15 तथा 20 प्रविष्टे को देवता की पूजा बेठर धूप से की जाती है। मेले-त्योहारों के अवसर पर देवता जब मंदिर-सौह में रथ पर सज्जित होकर निकलता है तो प्रातः पंचोपचार पूर्वक पूजा तथा सायंकाल में आरती होती है। वाद्यों की ध्वनि की जाती है। मोरमुठा और चंवर डुलाया जाता है। यदि भंडार के आसपास या पुजारी के खानदान में सूतक या पातक हो जाए तो पूजा नहीं की जाती।

रथ : अंगू वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ जिसका शीर्ष गुंबदाकार है। रथ की 'शीव' ताम्र निर्मित है जिसके अग्र भाग में सोने की पत्ती चढ़ाई गई है। ऊपर चाँदी का छत्र सुशोभित है। इसके अतिरिक्त एक करड़ू है।

मोहरे : कुल आठ, जिसमें मुख्य मोहरा अष्टधातु का है, शेष स्वर्ण व रजत के।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति के दिन देवता के मंदिर के कपाट खुलते हैं। देवता के करड़ू को 'सौह' में ले जाकर पटड़ी पर रखते हैं तथा पूजा करके एक छेलू या गब्भू (बकरी या भेड़ का बच्चा) पर 'पाची' डालते हैं। यदि वह ज़ोर से पूरा हिले तो समझा जाता है कि देवता स्वर्ग से प्रसन्न होकर लौटा है। तत्पश्चात् गूर भारथा सुनाता है और पूजा समाप्त होने पर करड़ू को वापिस भंडार में ले जाते हैं। फाल्गुन में ही देवता से शुभ दिन पूछ कर मंदिर की छत पर बकरे या बकरी की बलि दी जाती है और चीले बना कर छत पर से चारों दिशाओं में फेंके जाते हैं, चैत्र संक्रांति को देवता के सामान को करड़ू में डालकर भंडार से सौह में लाते हैं और पूजा करने के पश्चात् पुनः भंडार में ले जाते हैं। रात को देवता की स्तुति में कन्याएँ 'शराणी' गीत गाती हैं। अन्त में देवता की जयकार में 'बार' गाती हैं। वैशाख संक्रांति से तीन दिन पूर्व देवता को रथ में सजाकर सौह में लाया जाता है। संक्रांति से एक दिन पूर्व देवता को मंदिर में न रखकर बरामदे में रखा जाता है और सभी हारियान वहाँ बारी-बारी से पहरा देते हैं। उस दिन नौ-दस बजे गूर चोला व धोती पहन कर करड़ू ले जाता है और पुरुषों को अक्षत देता है। गृहस्वामिनी थाल में चावल, पैसे, फूल, कुंकुम रखकर लाती है। दायें हाथ में बेठर वाला धड़छ लाती है। देवता के मोहरों को तिलक लगाकर पुष्प चढ़ाती है। देवता से आशीर्वाद लेती है। अपने हाथ के धड़छ से आधी बेठर की आग गूर के धड़छ में डालती है। फिर देवता सारे गाँव में घूमकर अंत में रेणुका मंदिर के पास जाता है। गूर देऊखेल करता है। फिर देवता वापिस लौट कर 'डेहरी' में रहता है। वैशाख मास में

ही किसी दिन देवता खणीकंढा जोत पर जाता है और जोगणी के लिए बलि चढ़ाता है। जन्माष्टमी से एक दिन पूर्व *जागरा* होता है तथा अगले दिन व्रत रखा जाता है। व्रत से अगले दिन मेला *ब्रौत* आरम्भ होता है और देवता सारे गाँव में धूप पीने जाता है। भाद्रपद संक्रांति के दिन जमलू देवता का रथ इसी गाँव में सूरजपाल के स्थान पर जाता है और गूर के उभरने के बाद मंदिर लौटता है। इस दिन सूरजपाल को चीलों का भोग लगाया जाता है। आश्विन मास में शौयरी संक्रांति तथा पौष मास में मंदिर के कपाट बंद होने से पूर्व देवता की पूजा की जाती है। फाल्गुन संक्रांति को पुनः मंदिर के द्वार खुलते हैं।

जनश्रुति : जमलू देवता का सीस गाँव में आगमन मलाणा से हुआ है। सीस गाँव दलित वर्ग के लोगों द्वारा बसाया गया माना जाता है, जिनका स्थानीय देवता सूरजपाल था। एक समय वे इतने समृद्ध हुए कि उसके अभिमान में वे अपने देवता की पूजा करना भूल गए, जिससे वह रुष्ट हो गया और दैवी प्रकोप से पूरी पहाड़ी उस गाँव पर गिर गई व सभी चनाल उसके नीचे दबकर मर गए। धंधेल वंश का उनका एक सेवक, जो जमलू देवता का उपासक था और कभी मलाणा से रोज़ी-रोटी की तलाश में वहाँ आया था, केवल वही बचा। चनालों के समाप्त होने के बाद उसने यह अपना कर्तव्य समझा कि जमलू देवता के साथ-साथ सूरजपाल की भी पूजा-अर्चना करे। वह दोनों देवताओं की उपासना करता रहा और जमलू देवता हर मुश्किल में किसी न किसी रूप में आकर उसकी सहायता करता रहा। दोनों देवताओं के आशीर्वाद से वह फलता-फूलता गया और उसने जमलू देवता के लिए अलग स्थान बनाया। एक बार जमलू देवता ने सूरजपाल के साथ वार्ता की और दोनों में यह निर्णय हुआ कि जमलू देवता खड़ा राज का अधिकारी होगा और सूरजपाल बैठा राज का। तब से आज तक यही प्रथा चली आ रही है। अब जमलू को ग्राम देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है।

जमलू

गाँव : हवाई, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : हवाई।

स्थापत्य : गाँव में देवता के दो मंदिर हैं। एक गाँव के मध्य तथा दूसरा मौढ़ाबाड़ी में। यहाँ के पुरातन मंदिरों को उखाड़कर नए मंदिरों का निर्माण किया गया है जो पैगोड़ा शैली के त्रिछतीय मंदिर हैं। छतें स्लेटों से आच्छादित हैं। मौढ़ाबाड़ी वाले मंदिर के साथ देवी रेणुका की पुरातन 'डेहरी' है। इसमें अंदर जाना वर्जित है। यहाँ काहिका उत्सव के समय मेला लगता है। उसी समय देवता वहाँ जाता है, अन्यथा गाँव के मध्य वाले मंदिर में ही रहता है। मंदिर के बाहर 'सौह' है। साथ ही कोट शैली में निर्मित साढ़े चार मंज़िला भंडार है, जिसमें देवता का साजो-सामान रहता है। समीप ही पानी की बावड़ी है।

मुख्य मंदिर के पीछे द्रोपदी का मंदिर है जिसे स्थानीय बोली में *दराग* कहते हैं। यहाँ वाद्ययंत्र रखे जाते हैं। दराग के वाद्ययंत्रों को कुल्लू दशहरा आरम्भ होने से एक दिन पूर्व ही राजा के महल में स्थित रघुनाथ जी के मंदिर ले जाया जाता है क्योंकि जब तक ये नहीं पहुँचते तब तक रघुनाथ जी का कार्य आरम्भ नहीं होता।

अधिकार क्षेत्र : गाँव हवाई, छरेल शरन, शाड़ग, खणी, निचला हवाई क्षेत्र, गडैणी रा शरन।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, कुठाला, भंडारी तथा कुछ चुनिंदा हारियानों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, 'मलोही' डालकर, अनाज के दानों से।

पूजा : वर्ष की सभी संक्रांतियों, 15 तथा 20 प्रविष्टे को। जब देवता रथ पर सज्जित होकर प्रांगण में निकलता है तब प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचारपूर्वक पूजा की जाती है। वाद्य बजाए जाते हैं। यदि गाँव में सूतक या पातक हुआ हो तो पूजा नहीं होती।

रथ : अंगू की लकड़ी का बना खड़ा रथ जिसकी 'शीव' ताँबे की है।

मोहरे : स्वर्ण निर्मित आठ।

मेले-त्योहार : चैत्र संक्रांति को देवता के कपाट खुलते हैं, वैशाख संक्रांति को देवता गाँव के प्रत्येक घर में जाकर 'धूप पीता' है। प्रति तीसरे वर्ष श्रावण मास में रक्षा बंधन से एक दिन पूर्व से तीन दिवसीय *काहिका* उत्सव का आयोजन होता है।

जनश्रुति : देखें-जमलू देवता, गाँव श्याह की जनश्रुति। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार हवाई गाँव का एक गड़रिया भेड़ों को चराने के लिए जंगल में ले जाता था। शाम के समय वह देखता था कि सारी भेड़ें रज का आती थीं और घर पर खूब पानी पीती थीं परन्तु एक मेढ़ा लौटकर पानी नहीं पीता था। गड़रिया इस बात से हैरान था। एक दिन उसने मेढ़े के सींग से एक लम्बा धागा बाँध दिया और उसका पीछा करने लगा। उसने देखा कि एक निश्चित स्थान पर जाकर मेढ़े ने झाड़ियों के बीच घुस कर पानी पीया। कई दिन तक वह मेढ़े को वहाँ जाकर पानी पीते हुए देखता रहा। एक दिन उसे आभास हुआ कि झाड़ी के नीचे कोई अद्भुत वस्तु है जो केवल मेढ़े को जल उपलब्ध कराती है। वह उस स्थान पर गया और झाड़ी काटकर वहाँ खुदाई करने लगा। काफी गहरी खुदाई के बाद नीचे से एक मोहरा निकला। घर लाकर वह उसकी पूजा करने लगा। कालांतर में किसी व्यक्ति को खेल आई तो पता चला कि मोहरा जमलू देवता का है। तब जहाँ से वह प्राप्त हुआ था, वहाँ एक मंदिर का निर्माण किया गया। यह मोहरा आज भी विद्यमान है परन्तु रथ पर अन्य मोहरों के साथ केवल विशेष पर्व पर इसे वस्त्र से ढककर लगाया जाता है।

त्रिजुगी नारायण

गाँव : दयार, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : दयार।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से पैगोड़ा शैली में निर्मित त्रिछतीय आयताकार मंदिर लगभग पंद्रहवीं शताब्दी का है। इसकी नीचे की दो छतें चारों ओर को ढलवाँ और ऊपर की छत गोलाकार है। सभी छतें स्लेटों से आच्छादित हैं। नीचे की छत पर तीन कलश तथा शीर्ष पर छत्र सुशोभित है। भीतर त्रिजुगी नारायण की पाँच फुट ऊँची, शंख-चक्र-गदायुक्त प्रस्तर प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त ताँबे तथा पीतल की छोटी मूर्तियाँ वशिष्ठ, बद्रीनारायण, हनुमान, नरसिंह, मुरलीधर, सालिगराम आदि की हैं। मंदिर के बाहर प्रदक्षिणा-पथ है। इसके एक ओर लगभग 250 फुट ऊँची ध्वजा है। साथ ही टौणी देवी (महालक्ष्मी)

का छोटा मंदिर है। कहते हैं कि एक बार सिक्ख फौजों ने इसे तोड़ने का प्रयास किया तो देवी के कान से बड़े-बड़े ततैये निकले जिनके काटने से सारी फौज मर गई। इस मंदिर के कपाट केवल पुजारी ही पूजा के समय खोलता है, अन्यथा यह बंद ही रहता है।

अधिकार क्षेत्र : दयार, भोसा, थुवारी, शकोदा, वोहगुणा, शेगलीधार, जासू, हुरला, थरास, बाहमी, नरेश, रुआड़, भाटग्राँ, पनेउगी, टील, कुफरी, परोहाधार, बागरनाल, ओसन गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पुरोहित, पुजारी, गूर, धामी, जठेरा तथा कुछ अन्य सदस्यों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, 'मलोही' विधि से, चावल के दानों से।

पूजा : प्रतिदिन छह बार, तीन प्रमुख तथा तीन संक्षिप्त पूजाएँ। देवता के स्नान, चरणामृत तथा भोग में तुलसीदल का प्रयोग होता है। भोग देवता की पाकशाला में तैयार किया जाता है जो पूर्णतः सात्विक होता है। भोग में मूली, शलजम, गाजर, मूंग तथा मसूर वर्जित है। अग्नि में आहुति डालने के उपरांत प्रसाद बाँटा जाता है। शाम के समय घी व तेल के दीपक जलाए जाते हैं। आरती की जाती है और वाद्य बजाए जाते हैं। जब देव-रथ 'सौह' में निकलता है तो मंदिर के अतिरिक्त रथ की अलग से पूजा होती है। गूर रथ के पास और पुजारी मंदिर के अन्दर एक साथ पूजा करते हैं। घंटी दोनों स्थानों पर एक ही समय में बजती और बंद होती है। जब गूर 'जगती' पर बैठता है तो रथ की पूजा देवता का पुरोहित करता है। रात्रि के समय मूर्ति के वस्त्र उतारकर उस पर पर्दा डाल दिया जाता है। पूजा के पात्र आदि बाहर निकालकर कपाट बंद कर दिए जाते हैं।

रथ : देवदार की लकड़ी से बना दो अर्गलाओं वाला फेटा रथ जिसे दो व्यक्ति उठाते हैं। देवता के रथ के लिए मलाणा से वृक्ष लाया जाता है जिससे दो रथ बनते हैं। एक त्रिजुगी नारायण का और दूसरा मडासन देवी का। रथ के शीर्ष पर छत्र लगाया जाता है।

मोहरे : स्वर्ण निर्मित दस।

मेले-त्योहार : चैत्र मास में रामनवमी का त्योहार, जिसमें महिलाओं द्वारा *चरासा* नृत्य किया जाता है। वैशाख संक्रांति को *बिरशू*, आषाढ़ में हरिशयनी एकादशी पर एक वर्ष *शाड़नू* मेला तथा दूसरे वर्ष *काहिका* का आयोजन, भादों मास में *जन्माष्टमी* तथा *रक्षाबंधन* के त्योहार, मार्गशीर्ष में *मोक्षदायिनी एकादशी*, माघ मास में *सदयाला* और फाल्गुन की संक्रांति को देवता के कपाट खुलने पर भारथा सुनाई जाती है। वैशाख संक्रांति, हरिशयनी तथा मोक्षदायिनी एकादशी को समस्त हारियान हाथों में मशालें लेकर मंदिर में उपस्थित होते हैं। देवता की मूर्ति के पास जले दीपक से पुजारी मुख्य मशाल को जलाकर 'धामी' के हाथ में देता है, जिससे अन्य मशालें जलाई जाती हैं। उन जलती मशालों को लेकर सभी लोग वाद्यों की ध्वनि के साथ पूरे गाँव का फेरा लगाने के उपरांत उन्हें पहली 'परोल' के अन्दर बने हवनकुंड में डाल देते हैं। धामी तथा अन्य व्यक्ति जो संख्या में पाँच, सात या नौ होते हैं, मुख्य मशाल के साथ हवनकुंड के ढाई फेरे लगाने के बाद उसे कोटकंढी स्थान पर ले जाते हैं, जहाँ मेला लगता है। भादों की संक्रांति को भद्रकाली का गूर बाजे-गाजे के साथ पूरे गाँव के घरों की दहलीजों को कटार की नोक से बींध कर मंदिर लौटता है और मंदिर के बाहर बलि ग्रहण करता है। माघ मास में देवता बजौरा स्थित अपनी बहन सत्यावती के लिए बाजे-गाजे के साथ खिचड़ी भेजते हैं। देवता के कारकुनों में से यदि किसी की मृत्यु हो जाती है तो शुद्धि के लिए देवता बाण गंगा, गड़सा नदी तथा व्यास के संगम पर स्नान करने जाता है। किसी विपत्ति की आशंका पर 'टाला' निकालने का कार्यक्रम होता है।

जनश्रुति : एक बार ब्रह्मा, विष्णु और महेश अपनी पत्नियों के भड़काने पर सती अनुसूईया का सतीत्व भंग करने के लिए स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरे तो एक रात वे दयार गाँव में उस स्थान पर ठहरे जहाँ अनुसूईया का आश्रम था। इनकी देह से जो पसीना यहाँ गिरा उससे त्रिजुगी नारायण की उत्पत्ति हुई। कालांतर में गौतम गोत्रीय

ब्राह्मण अपनी गायों को चराने के लिए जंगल ले जाया करता था। शाम के समय जब सारे पशु घर की ओर आते थे तो उनमें से एक दुधारू गाय झुंड में से निकल कर झाड़ियों में जाती जहाँ उसके थनों से स्वतः ही दूध निकलने लगता। ब्राह्मण ने यह बात गाँववालों को बताई। सबने मिलकर झाड़ी को काटा और भूमि की खुदाई की तो वहाँ पत्थर की एक मूर्ति प्रकट हुई। मूर्ति के निकलते ही ब्राह्मण को खेल आई और उसने बताया कि मूर्ति त्रिजुगी नारायण की है। यह सुनकर सबने उसे पूजना आरम्भ किया। पहले उस स्थान पर छोटा-सा और फिर बड़ा मंदिर बनाया, जिसमें आज भी वही मूर्ति स्थापित है।

थान देवता

गाँव : भलाण, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान एवं मंदिर : भलाण।
भंडार : खमारडा।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से देशज शैली में बना ढाई मंज़िल का मंदिर, जिसकी चारों ओर को ढलवाँ छत पर स्लेटें आच्छादित हैं। निचली मंज़िल के काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है। सामने की ओर प्रांगण है। देवता का एक अन्य मंदिर खमारडा में निर्माणाधीन है।
शाखा मंदिर : खमारडा, रौनाल, पूरवरी।
अधिकार क्षेत्र : शैलियास से कंढी गलू तथा वकशाल फागला से शोचे-उजले कंढे तक का क्षेत्र।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, देव-रथ द्वारा, 'मरोहड़ी' के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन बेठर व गुग्गुल धूप से पूजा करने के उपरांत श्रीकृष्ण स्तोत्र का पाठ किया जाता है।
रथ : चिऊं नामक वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ। इसके शीर्ष पर चुरू की पूँछ के बालों को लगाकर उस पर वस्त्रों का बना टोप, तदनंतर चाँदी का छत्र लगाया जाता है।
मोहरे : कुल आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का तथा शेष रजत निर्मित हैं।
मेले-त्योहार : वैशाख मास में *बिरशू* मेला, श्रावण संक्रांति को देवता द्वारा ब्रह्मभोज दिया जाता है। आश्विन मास में *शौइरी* मेला, पौष में देवता का नरोल गमन, फाल्गुन संक्राति को नरोल से वापसी के उपरांत देवता के पट खुलते हैं तथा गूर भारथा सुनाने के बाद 'वर्शोहा' देता है।
जनश्रुति : यह भलाण गाँव का मूल देवता है। आदिकाल में मात्र यही देवता यहाँ का राजा हुआ करता था। इसका अपना रथ था। बाद में जब देवता लक्ष्मीनारायण और बराधी वीर क्रमशः शूरा कम्बरू (बुशैहर) तथा काश्मीर से आकर यहाँ प्रकट हुए तो इनकी आपस में बातचीत हुई और तीनों ने वहीं रहने का निर्णय लिया। थान देवता ने स्वेच्छा से अपने राज का आधा भाग बराधी वीर को दिया जिसे गढ़ कहते हैं तथा आधा गागण वाला भाग लक्ष्मी नारायण को देकर स्वयं उनका चाकर बनकर रहने लगा। इसके अतिरिक्त कुम्हार खानदान का अपना गूर भी लक्ष्मीनारायण को दे दिया और अपने लिए चमारटू खानदान के गूर को स्वीकार किया। किंवदंती है कि उसी समय थान देवता का रथ उड़कर धराईन नामक स्थान में जाकर जलमग्न हो गया और देवता लोहे की साँकल में समा गया। आज भी जब देवता की शक्ति क्षीण होती है तो वह धराईन जाकर शक्ति का संचय करता है।

दुर्वासा ऋषि

गाँव : पालगी, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान : उत्तर प्रदेश का भोजपुर गाँव।
मंदिर एवं भंडार : गाँव पालगी।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक मंज़िल का साधारण मंदिर, जिस पर सफेद स्लेटों का आच्छादन है। इसके चारों ओर चार फुट चौड़ा बरामदा है। प्रवेशद्वार के आगे एक चबूतरा बना है, जिसपर सफेद संगमरमर के पत्थर लगाए गए हैं। मंदिर कक्ष की भीतरी पिछली दीवार के साथ

गर्भगृह है। इसके दो भाग हैं। अगले भाग में श्वेत प्रस्तर की पिंडी स्थापित है। पिछले भाग में देवता के निमित्त भोग बनाया जाता है।

शाखा मंदिर : धारा गाँव।

अधिकार क्षेत्र : गाँव पालगी, बरशोगी, गड़सा, बौहगणा, चनालधा, ढलाण, धारा, रुआड़ू, माहून, खोड़ा आगे।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में नायब कारदार, पुजारी, जठाली, गूर, धामी, कठियाला की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः पुजारी पंचामृत से देवता को स्नान करा कर पुष्पमाला से सजाता है। भोले नाथ की स्तुति गाता है। तत्पश्चात् खीर का भोग लगाया जाता है। भोग बनाने का कार्य पुजारी ही करता है। यह मंदिर में गर्भगृह के पिछले भाग में बने चूल्हे पर पतीले में विशेष ढंग से बनाया जाता है। चूल्हे में एक बार लकड़ी जलाकर पुनः इसमें फूँक नहीं मारी जाती। चावल, दूध व गुड़ एक साथ पतीले में डालकर इसे चूल्हे पर चढ़ा दिया जाता है। पुजारी पूजा में व्यस्त रहता है। पूजा समाप्त होने पर खीर पक कर तैयार हो जाती है। इसका भोग लगाने के वाद इसे उपस्थित श्रद्धालुओं में बाँटा जाता है। देवता के चमत्कार से सबको बाँटने के बाद भी पुजारी के लिए पूरा भोजन बच जाता है।

शाम के समय पुजारी व धामी देव-रथ के पास घी का दीपक जलाकर आरती करते हैं।

रथ : भेखल की लकड़ी का बना खड़ा रथ। इसके शीर्ष पर चुरू की पूँछ के बालों के 'बाँबल' लगाए जाते हैं।

मोहरे : कुल तेरह। बारह तोला वजन का एक स्वर्ण निर्मित मोहरा, चार रजत के व आठ अष्टधातु के।

मेले-त्योहार : माघ मास के सात प्रविष्टे को *सदयाला*। इसमें 'देऊखेल' के साथ रात को यह पर्व मनाया जाता है। मनोकामना पूर्ण होने पर वैशाख संक्रांति को श्रद्धालु पालगी मंदिर में आकर भेंट चढ़ाते हैं। इस दिन देवता रथ पर सज्जित होकर सौह में निकलता है। इसे *रथपूरना* कहते हैं। इसी दिन देवता *सोचा सर* जाने का दिन तय करता है। यह स्थान पालगी से लगभग चार किलोमीटर ऊपर 9000 फुट की ऊँचाई पर स्थित है, जहाँ दो छोटे-छोटे सरोवर हैं। एक सर में केवल देवता ही स्नान करता है। वापसी पर जंगली ब्रास के फूलों का रथ बनाकर पालगी लाते हैं। इसे किसी बेल की सहायता से चक्र रूप में बनाया जाता है, फिर दो दलों में बँटकर लोग इसे अपनी-अपनी ओर खींचते हैं, जिससे इसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

20 वैशाख को देवता गाहरा नामक स्थान पर जाता है और एक फेरा लगाकर शाम को धारा गाँव में ठहरता है। वहाँ ब्राह्मण परिवार देवता के साथ आए लोगों को मक्की की रोटी और फाफरे का साग खिलाते हैं। कभी-कभी देवता गाँव नजाँ, नीणू, पाशी की हारगी पर जाता है। देवता के साथ जाने वाले लोगों को गाँव के प्रत्येक घर में अतिथि रूप में भेजा जाता है। इसे खींड कहते हैं। हारगी से वापिस आने से पहले देवता वहाँ के सभी गाँववालों को भोजन देता है जिसे *भौती* कहते हैं। प्रतिवर्ष पौष मास में देवता अपनी हार के फेरे पर निकलता है।

जनश्रुति : दुर्वासा एक क्रोधी ऋषि के रूप में जाने जाते हैं। पालगी में इनके आगमन के सम्बंध में जनश्रुति है कि ये उत्तर प्रदेश के भोजपुर स्थान से एक ब्राह्मण के साथ तपस्या के लिए निकल पड़े। चलते-चलते वे गोमती गंगा के तीर पर बसे गड़सा में गाहरा स्थान पर रुके। वहाँ

अपने लिए कुटिया बना कर कुछ समय तक रहे फिर धारा गाँव चले गए। अपने साथ आए ब्राह्मण को वहाँ बसा कर स्वयं पालगी गाँव चले गए। इस स्थान को तप योग्य जानकर यहाँ तपस्या की। कहते हैं कि ऋषि यहीं समाधिस्थ हुए। लोगों ने यहाँ मंदिर बना कर इनकी पिंडी स्थापित की। धारा गाँव में बसे ब्राह्मण के वंशज आज देवता के पुजारी हैं, जो प्रतिदिन पालगी जाकर दुर्वासा की पिंडी और रथ की पूजा करते हैं।

अन्य सूचना : देवता के क्रोध के बारे में कहते हैं कि लगभग 200 वर्ष पूर्व पालगी गाँव के एक ओर बाल्द गाँव और दूसरी ओर शंखरी गाँव था। दोनों गाँव वाले पालगी के देवता दुर्वासा को मानते थे, किन्तु आपस में सदा लड़ते-झगड़ते रहते थे। वैमनस्य इतना था कि वे अपने गाँव के बागे (देवता के वस्त्र) पहना कर ही रथ को साथ ले जाते थे। देवता इस बात से बहुत दुःखी हुआ। तब देवता ने दृष्टांत दिया और बाल्द गाँव की एक नव वधू को हर शाम यह आवाज़ सुनाई देने लगी कि 'मैं आऊँ'। उसने यह बात अपने ससुर को बताई। उसका ससुर गाँववालों के साथ हथियार व डण्डे लेकर बाहर खड़ा हो गया और अपनी बहू को कहा कि ज्यूँ ही 'मैं आऊँ' की आवाज़ आएगी तो कहना 'आ जा'। वैसा ही हुआ। लेकिन ज्यूँ ही नव वधू ने कहा 'आ जा', अचानक सारा पहाड़ टूट कर दोनों गाँवों पर गिर गया और उनका नामोनिशान मिट गया। कहते हैं उस समय बाल्द गाँव का केवल एक व्यक्ति, जो मण्डी के द्रंग नामक स्थान में नमक लेने गया था, ही बच पाया था। उसी से बाद में माहून गाँव बस गया।

देवती

गाँव : शियाऊगी, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : शियाऊगी।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से कोट शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का भव्य मंदिर जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेटें आच्छादित हैं। शिखर पर बदोर लगा है। मुख्य द्वार पर सुन्दर नक्काशी हुई है।

अधिकार क्षेत्र : धाऊगी नाल से वलियुल तक का क्षेत्र।

प्रबंध : कारदार अधीनस्थ गठित समिति।

न्याय प्रणाली : देवरथ द्वारा, मरोहड़ी विधि से तथा गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रत्येक मास की संक्रांति, पूर्णिमा, आठ-पंद्रह-बीस प्रविष्टे तथा अमावस्या को 'धामी' घंटी-धड़छ से देवी की पूजा करता है।

रथ : खड़ी शैली का रथ अंगाह या चिऊं नामक वृक्ष की लकड़ी से बनाया जाता है।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को देवता 'नरोल' से बाहर निकलता है। देवरथ को सजा कर सौह में लाया जाता है। देवता का गूर भारथा और बर्शोहा सुनाता है। वैशाख संक्रांति को *बिरशू मेला,* आश्विन संक्रांति को *शईरी साजा,* जिसमें संक्रांति से एक दिन पूर्व ही मेला आरम्भ हो जाता है और अगले दो दिन तक चलता है। मेले के प्रथम दिन देवता को 'डेहरे' में लाया जाता है जहाँ रात भर जागरा होता है। प्रातः *देऊली* होती है। संक्रांति वाले दिन सायं 5-6 बजे देवता पूरे गाँव के फेरे पर जाता है। प्रत्येक परिवार देवता के स्वागत में रथ के ऊपर फल-फूल-अखरोट आदि न्योछावर करता है। इस दिन दूब भी बाँटी जाती है। पौष संक्रांति को देवरथ से उतार कर देवता को सुरक्षित स्थान पर रख दिया जाता है और रथ पर पर्दा डाल दिया जाता है।

जनश्रुति : धाऊगी नाले में किसी समय दैंत नाम के एक राक्षस के साथ यह राक्षसी रहती थी और वहाँ के लोगों को कष्ट पहुँचाया करती थी। कालान्तर में जब धाऊगी में देवता लक्ष्मीनारायण प्रकट हुए तो उन्होंने इन दोनों को वचन से बाँधकर जनमानस की रक्षा करने पर मजबूर किया। इसके बदले देवता ने उन्हें हर तिथि, पर्व-त्योहार और मेले के अवसर पर बकरी या भेड़ की बलि देना स्वीकार किया। यह प्रथा वर्तमान में भी प्रचलित है। तब

से यह देवती के नाम से प्रसिद्ध हुई। देवी का प्रतीक चिह्न लोहे की साँकल आज भी धाऊगी के लक्ष्मी नारायण के साथ चलती है। जब तक इस देवी और दैंत की साँकलें लक्ष्मीनारायण मंदिर में नहीं पहुँचतीं, देवरथ बाहर नहीं निकलता है। वर्तमान में यह देवी दुर्गा मां के नाम से जानी जाती है।

धामणी देवता : छमाहूँ नाग

गाँव : धामण, **तहसील** : सैंज।
मूल स्थान : दलियाड़ा।
मंदिर : धामण।
भंडार : गाँव कोटला में काष्ठ-प्रस्तर से कोट शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का भंडार, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है। ऊपर की दो मंज़िलों में चौतरफा बरामदा है। भंडार दो भागों में विभक्त है। एक भाग में 'मधेऊलू' का आवास है तथा दूसरे में देवता तथा उससे सम्बंधित सारा साजो-सामान रहता है।

स्थापत्य : काष्ठ प्रस्तर से बना एक मंज़िल का मंदिर, जिसकी चारों ओर को ढलानदार तीन छतें स्लेटों से आच्छादित हैं। शीर्ष पर कलश तथा गर्भगृह में देवता की प्रस्तर प्रतिमा स्थापित है। कक्ष के बाहर खुला स्थान है, जिसे प्रदक्षिणा-पथ भी कहा जा सकता है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव धामण, लारजी तथा कोटला फाटी के कुछ गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पारम्परिक समिति।
न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से, रथ द्वारा, चावल एवं लड्डू विधि से।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर स्वर्ण छत्र लगा है।
मोहरे : आठ। मूल मोहरा एवं एक अन्य मोहरा अष्टधातु का तथा छह स्वर्ण निर्मित।
मेले-त्योहार : श्रावण मास की कृष्ण पंचमी के दिन धामण में *हूम* का आयोजन होता है, जिसमें देवता भूत-पिशाचों का दमन करता है। इसके अतिरिक्त बड़े छमाहूँ के सभी मेले-त्योहारों में सम्मिलित होता है।
जनश्रुति : देवता बड़ा छमाहूँ द्वारा प्रकट की गई तीन अन्य शक्तियों ने जनमानस के कल्याण हेतु भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर अपना वास किया। धामणी देवता को बड़े छमाहूँ की सबसे छोटी कला या कुछ के अनुसार भाई माना जाता है। यह सदा बड़े छमाहूँ के साथ कोटला में ही रहता है। जब देवता बड़ा छमाहूँ अपनी हार की परिक्रमा या तीर्थ यात्रा पर जाता है तो धामणी देवता उसकी गद्दी की सुरक्षा हेतु मंदिर में ही विराजता है और बड़े छमाहूँ के सभी मेले-त्योहारों में सम्मिलित होता है।

नवदुर्गा

गाँव : पटाहरा, **तहसील** : सैंज।
मूल स्थान एवं मंदिर : पटाहरा।
भंडार : गाँव कौंशा।
शाखा मंदिर : देहुरी।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित साढ़े तीन मंज़िल का भव्य मंदिर, जिसकी तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। चारों ओर को ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है। मंदिर में प्रयुक्त काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी की गई है।

अधिकार क्षेत्र : कोठी बनोगी।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : स्वर्ण, अष्टधातु तथा काष्ठ निर्मित खड़ा रथ।
मोहरे : आठ।
मेले-त्योहार : वैशाख के 25-26 प्रविष्टे को *बशाखी*, भाद्रपद की अमावस्या के दिन *हूम* का आयोजन। आश्विन संक्रांति को देवी मंदिर सौह में निकलती है और मेला लगता है। हारियान रथ पर फूल, फल, ककड़ी, अखरोट आदि न्योछावर करते हैं। पौष संक्रांति को पूजा आदि के बाद देवी को नरोल पड़ता है। रथ पर से मोहरे, आभूषण, वस्त्रादि उतार कर सुरक्षित स्थान पर रखे जाते हैं और रथ के ऊपर घूँघट डाल दिया जाता है। फाल्गुन संक्रांति को मंदिर के कपाट खुलते हैं। रथ को सजाया जाता है। देव कार्यवाही होती है। गूर भारथा सुनाता है और बर्शोहा देता है।

नारद मुनि

गाँव : नीणू, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान : गाँव पूईण।
मंदिर एवं भंडार : नीणू।
स्थापत्य : गाँव के निचले छोर पर पुरातन श्मशान की भूमि पर पहाड़ी शैली में बना मंदिर, जिसमें एक मंज़िल का चबूतरा है। उसके ऊपर मंदिर का निर्माण किया गया है। इसकी दीवारों पर चार बड़े वृक्षों को तराश कर बनाए गए शहतीर एक दूसरे से जोड़े गए हैं। ऊपर ढलानदार छत पर लकड़ी के तख्तों पर पत्थर के स्लेट लगाए गए हैं। मंदिर के भीतर 8ग8 फुट का काष्ठ निर्मित गर्भगृह है। मंदिर के सामने पूर्व दिशा की ओर लगभग 120 फुट ऊँची ध्वजा खड़ी है। 30ग80 फुट के देव प्रांगण के ऊपरी सिरे के पास माहून का विशाल वृक्ष है जिसके पास एक सराय बनी है, जिसमें देवता के वाद्ययंत्र रखे जाते हैं। प्रांगण के

दाईं ओर जेहर देवता की छोटी-सी 'डेहरी' है। मूल मंदिर के अतिरिक्त गाँव के ऊपरी छोर पर कोट शैली का पाँच मंज़िला भंडार है।
शाखा मंदिर : खणीकोंढा, ज्येष्टा।
अधिकार क्षेत्र : गाँव नीणू, नीणू बनाला, पूईण।
प्रबंध : कारदार, पुजारी, पुरोहित, भंडारी, गूर, ढौंसी तथा हारियान के कुछ चुनिंदा व्यक्तियों की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से देवता द्वारा, चावल के दानों से, 'मलोही' व 'पाची' डालकर।
पूजा : देव मंदिर में प्रातः-सायं प्रतिदिन पूजा होती है। गाँव के कुछ ब्राह्मण परिवार बारी-बारी से मंदिर में पूजा करते हैं, जबकि भंडार में संक्रांति, पूर्णमासी, अमावस्या तथा विशेष अवसरों पर ही पूजा की जाती है।
रथ : ढलवाँ शैली में बना रथ, जिसका धड़ 2 फुट वर्गाकार चौड़ा तथा तीन फुट ऊँचा है। धड़ के मध्य में लकड़ी की एक आड़ी फट्टी लगाई गई है जिसे क्रौलटा कहते हैं। रथ के शीर्ष पर रजत निर्मित चार इंच चौड़ी पट्टी के नीचे याक के बाल लगाए जाते हैं।
मोहरे : कुल ग्यारह मोहरे, जिनमें एक अष्टधातु का है तथा दस मोहरे चाँदी के हैं।
मेले-त्योहार : वैशाख संक्रांति को देवता द्वारा नियुक्त दो व्यक्ति प्रातः सीस गौहर के पीछे जंगल में जाकर एक बेल को चक्राकार बनाकर उसके ऊपर ब्रास के फूलों को सजाकर पालकी का-सा रूप देते हैं। इसे बिठ कहते हैं।

दोपहर तक बिठ को गाँव के पीछे एक खेत में लाया जाता है। सायंकाल में देवता का रथ मंदिर से प्रांगण में आता है। तत्पश्चात् बिठ को लेकर लोग वहाँ पहुँचते हैं और देवता का बिठ के साथ मिलन होता है। तदुपरांत लोग दो टोलियों में बँटकर बिठ को दोनों ओर से पकड़कर चारों ओर घुमाते हैं। तीन चक्र पूरा करने के बाद वे टोलियाँ इसे अपनी-अपनी ओर खींचती हैं, जिससे इसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। इन टुकड़ों को लोग आशीष के रूप में अपने घर ले जाते हैं। तीन वैशाख को देवता ज्येष्ठा गाँव के बिठ पर्व में शामिल होता है। इसी मास निर्धारित तिथि को देवता जोगणी पूजन के लिए खणीकोंढा जोत पर जाता है और वहाँ बकरे की बलि दी जाती है। तत्पश्चात् सामूहिक भोज होता है और देवता अपने मूलस्थान पूईण गाँव पहुँचता है। वहाँ के लोगों की 'पूछ' के जवाब देने के बाद वह अपनी बावली में स्नान करता है। उस रात वहाँ विश्राम कर अगले दिन नीणू लौटता है। ज्येष्ठ मास की संक्रांति को गड़सा की धार पर जाच मनाई जाती है, जिसमें नारद मुनि तथा श्याह के जमदग्नि एक वृक्ष के नीचे परिक्रमा करके देऊली करते हैं। भादों मास में राखी की पूर्व संध्या पर देवता के जन्मोत्सव के रूप में *लामण* पर्व मनाया जाता है। आश्विन मास की संक्रांति के दूसरे दिन देवता शोंढाधार जाता है, जहाँ एक बड़ा मैदान है। वहाँ पहुँचकर नारद व जमदग्नि सरोवर में स्नान करते हैं। दोनों के रथ सरोवर में एक छोर से दूसरे छोर तक जाते हैं। तत्पश्चात् देऊली (देवकार्यवाही) होती है। इस अवसर पर लोग अखरोट, सेब व खीरे लाकर आपस में बाँटकर खाते हैं। पौष मास में देवता पालगी तथा माहून गाँवों के फेरे पर जाता है। माघ संक्रांति को देवता के कपाट बंद हो जाते हैं।

जनश्रुति : नीणू गाँव से एक किलोमीटर ऊपर पूईण गाँव में कोई स्त्री खेत में निराई कर रही थी। पास ही उसने अपनी छोटी-सी बेटी को लिटा रखा था। दोपहर में उस बच्ची को प्यास लगी तो वह अपनी माँ से पानी माँगने लगी। पानी न होने के कारण वह निराई करते-करते मन में सोचने लगी कि काश यहीं जल निकल आता। उसके ऐसा सोचते ही उसकी किल्लण (निराई करने का उपकरण) किसी वस्तु से टकराई। उसने देखा कि धातु की कोई वस्तु भूमि में दबी है। उसने सावधानी से उसे बाहर निकाला। वह एक मोहरा था, जिसके निकलते ही वहाँ से जलधारा प्रस्फुटित हो गई। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। उसने जल बच्ची को पिलाया और स्वयं भी अपनी प्यास बुझाई।

घर आते समय वह मोहरे को अपने साथ ले आई और माश की दाल की कोठरी में उसे रख दिया। अगली प्रातः उसने देखा कि माश की कोठरी भरी हुई थी और भरने के बाद इससे कुछ माश बाहर भी गिर गए थे। इस अद्‌भुत घटना की चर्चा उसने गाँववालों के साथ की। लोगों ने इसे मोहरे का चमत्कार माना और उससे अत्यंत प्रभावित हुए। रात को महिला को देवता ने स्वप्न में बताया कि वह नारद मुनि है और इस गाँव में रहना चाहता है। अगले दिन उसने यह स्वप्न गाँववालों को सुनाया तो उन्होंने देवता का छोटा-सा मंदिर बनाकर उसकी पूजा करनी आरम्भ की। वह गाँव राजपूतों का था। अतः उन्होंने गड़सा गाँव के साथ लगते धारा गाँव के एक ब्राह्मण को देवता की पूजा के लिए नियुक्त किया। वह प्रतिदिन अपने गाँव से पूईण जाता और पूजा करके लौट आता था। ब्राह्मण के वृद्ध होने पर उसे धारा से पूईण की चढ़ाई चढ़ना दूभर हो गया। एक दिन मंदिर जाते समय वह नीणू गाँव में विश्राम करने बैठ गया और नारद मुनि से प्रार्थना करने लगा कि अब वह चढ़ाई चढ़ने में असमर्थ है। अतः देवता उसे नीणू में ही पूजा करने की अनुमति दे। जब उससे वह चढ़ाई नहीं चढ़ी गई तो वह वहीं से देवता की पूजा करने लगा। एक दिन देवता पूईण से ज्येष्ठा गाँव गया हुआ था तो वापसी में वह नीणू आया और वहाँ मंदिर बनाने का निर्देश दिया। फलतः वहाँ मंदिर बनाया गया।

निहारगड़ू

गाँव : शरण, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : शरण।

स्थापत्य : गारा, पत्थर और लकड़ी से बना एक कक्ष का मंदिर, जिसकी तीन छतें चादरों से ढकी हैं और इनके चारों ओर लकड़ी की झालरें लगी हैं। द्वार की चौखट पर नक्काशी हुई है। मंदिर के शिखर पर कलश स्थापित है।
शाखा मंदिर : पाशी गाँव।
अधिकार क्षेत्र : बकशाल से उपरैला तक।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में देऊलुओं की समिति।
न्याय प्रणाली : देवरथ, गूर के मुख से तथा मरोहड़ी द्वारा।
रथ : अंगू वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ।
मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का व अन्य पीतल के।
मेले-त्योहार : श्रावण पूर्णिमा को *रक्षा बंधन* का त्योहार। असौज के नौ प्रविष्टे को मेला लगता है। यूँ तो यह मेला एक दिन का ही होता है, परन्तु अन्य देवताओं को आमंत्रित किए जाने पर यह दो-तीन दिनों तक भी चलता है। मेला समाप्त होने पर देवता पूरे गाँव में घर-घर जाता है और लोग खुशी में देवता के ऊपर फल और अखरोट न्योछावर करते हैं। पौष संक्रांति को देवता नरोल में चला जाता है। जमलू देवता पाशी का सहायक होने के कारण यह साँकल रूप में जमलू के साथ उसके हर त्योहार में चलता है, परन्तु जब कभी जमलू को नरोल नहीं पड़ता तब निहारगड़ू भी नरोल में नहीं जाता।
जनश्रुति : किसी समय यह देवता दैत्य रूप में इसी क्षेत्र में शरण से पाशी खडचा तक इधर-उधर घूमता रहता था और राह में जो भी मिलता, उसे खा जाता था। कालांतर में जब जमलू देवता पाशी गाँव पहुँचा तो निहारगड़ू ने उसे खूब तंग किया परन्तु जमलू की शक्ति के आगे वह हार गया। तब उसने जमलू से याचना की कि वह इस क्षेत्र से कहीं नहीं जाना चाहता। जमलू देवता ने उसे वचन में बाँध दिया कि वह इस क्षेत्र में तभी रह सकता है यदि वह प्रहरी बनकर जनता की जान-माल की रक्षा करेगा और उन द्वारा इसके एवज में हर मेले, पर्व, त्योहार पर उसके निमित्त बलि चढ़ाई जाएगी। जमलू की शर्त मानने के बाद उस दैत्य को लोगों द्वारा देवता के रूप में पूजा जाने लगा। लम्बे अंतराल के बाद देवता का रथ व मोहरे बनाए गए, परन्तु जमलू देवता पाशी के साथ वह अब भी शृंखला के रूप में ही चलता है।

नैणा माता

गाँव : सैंज, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान : बंजार।
मंदिर : ऊपरी सैंज।
भंडार : सैंज।
स्थापत्य : लकड़ी-पत्थर से देशज शैली में बना एक

मंज़िल का पुरातन मंदिर। लकड़ी के स्तम्भों पर आधारित चारों ओर को ढलवाँ इसकी दो छतें स्लेटों से ढकी हैं। छत के शिखर पर कलश एवं छत्र लगा है। मंदिर कक्ष के बाहर खुला प्रदक्षिणा-पथ है। भीतर नैणा माता की प्रस्तर मूर्ति स्थापित है।

शाखा मंदिर : धाऊगी।

अधिकार क्षेत्र : सैंज, धाऊगी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में अन्य कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से पूजा एवं आरती।

रथ : नहीं है।

मोहरे : केवल प्रस्तर मूर्ति।

मेले-त्योहार : चैत्र व आश्विन के *नवरात्र*, श्रावण मास में त्योहार, फाल्गुन में *फाग* उत्सव।

जनश्रुति : प्राचीनकाल में लाइड़ा खानदान का कोई व्यक्ति बंजार से काम के सिलसिले में सैंज आया तो उसकी इष्ट देवी भी उसके साथ आ गई। काफी प्रयत्न करने पर भी जब उस व्यक्ति का काम नहीं बना तो उसे शंका हुई और उसने देवी का ध्यान किया। उसी समय आकाशवाणी हुई और देवी ने कहा कि जब तक वह उसकी स्थापना नहीं करेगा तब तक वह उसका इसी प्रकार अनिष्ट करती रहेगी। यह सुनकर उसने देवी से क्षमा माँगी और मूर्ति के रूप में देवी की स्थापना कर उसे पूजना आरम्भ किया। अब उसके सारे कार्य पूर्ण होने लगे और देवी की ख्याति आसपास फैलने लगी। कालान्तर में गाँववाले भी देवी को पूजने लगे।

पंजवीर

गाँव : कोटकंढी, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान : वीरनी गाहर।

मंदिर : कोटकंढी पर्वत शिखर।

भंडार : मासू तथा वीरनी गाँव।

स्थापत्य : पुराने मंदिर के जीर्ण-शीर्ण होने के कारण उसके स्थान पर कोटकंढी के पर्वत शिखर पर 1980 के दशक में कुल्लू के राजा महेश्वर सिंह के योगदान से पहाड़ी शैली में काष्ठ प्रस्तर का एक छोटा मंदिर बनाया गया है।

अधिकार क्षेत्र : कोठी कोटकंढी की छह पंचायतों के सभी परिवार।

प्रबंध : कारदार, गूर तथा पुजारी द्वारा।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, 'मलोही' डालकर।

पूजा : वैशाख तथा आश्विन मास की संक्रांति तथा भादों के पूरे मास में प्रातः पूजा और सायं घी का दीपक जलाया जाता है। इसके लिए पूरी कोठी के लोगों से घी एकत्र किया जाता है। पूजा का कार्य दयार गाँव के पुरोहित करते हैं तथा शाम को दीपक जलाने का कार्य निंगना व वीरनी गाँव के गढ़िये करते हैं।

रथ : नहीं है, केवल करडू है।

मोहरे : नहीं हैं।

मेले-त्योहार : वैशाख संक्रांति को *बिरशू*, आश्विन संक्रांति को भंडारे का आयोजन, जिसमें पूरी 'हार' के लोग मंदिर जाते हैं, मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा को *वीर पुजाई*।

जनश्रुति : मासू गाँव में रहने वाले जढेल वंश के एक गूँगे व्यक्ति को वीरनी गाँव से ऊपर जंगल में धुआँ-रा-रुआड़ नामक स्थान में कदाचित् पंजवीर देवता

एक लोहे की छड़ के रूप में मिला, जिसे पूजने के लिए वह प्रतिदिन प्रातः अपने गाँव से उस स्थान पर जाता था। उसके दो भाई राजा की चाकरी के लिए कुल्लू जाया करते थे। एक दिन किसी ने राजा से इस बात की शिकायत कर दी कि गूँगा चाकरी के लिए नहीं आता है। राजा ने अपने सिपाहियों को उसे पकड़ कर लाने के आदेश दिए और फिर बंदीगृह में डाल दिया, जिससे उसका देवता राजा से रुष्ट हो गया और उसने अपने चमत्कार से राजा के हाथ उसकी पीठ में चिपका दिए। पंडितों से पूछने पर पता चला कि यह किसी बंदी द्वारा पूजित देवता का दोष है। राजा ने सभी कैदियों को बुलाकर उनके देवता के सम्बंध में पूछा और उनकी स्तुति की, परन्तु राजा के हाथ नहीं छूटे। फिर गूँगे से पता किया गया तो उसने इशारों से समझाया कि उसका देवता जंगल में बिना पूजा के है। यह सुनकर जैसे ही देवता के निमित्त राजा ने मानता की, उसके हाथ पीठ से छूट कर सामान्य दशा में आ गए। राजा गूँगे के साथ मासू गया और वहाँ से वे धुआँ-रा-रुआड़ गए तथा देवता से क्षमा याचना की। कालांतर में शिलिहार फाटी और मंझली फाटी के लोगों के बीच देवता के लिए खींचतान शुरू हो गई। तब राजा ने फैसला दिया कि जब तक वह ज़िन्दा है, तब तक देवता मासू गाँव में रहेगा और जब कोई दूसरा राजा बनेगा तो देवता वीरनी गाँव में आएगा। तब से यही सिलसिला चल रहा है। राजा की आज्ञा से देवता को मासू लाया गया और उसे वहाँ पूजा जाने लगा। कुछ काल बाद राजा उत्तर काशी से पाँच गोल पत्थर तथा देवता की पूजा करने के लिए पुरोहित को लाया और दयार गाँव के छोर की कुछ भूमि आजीविका के लिए उसे दान में दी। ये पत्थर पहले दिन हाट बजौरा, दूसरे दिन बशौणा बणी, तीसरे दिन दयार गाँव में देवता त्रिजुगी नारायण के मंदिर में रखे गए, फिर देवता से पूछ कर राजा इन्हें कोटकंढी ले गया और वहाँ पंजवीर के रूप में उनकी विधिवत् प्राण प्रतिष्ठा करवा कर मंदिर में उनकी स्थापना की।

पाली नाग

गाँव : शरण, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : शरण।

स्थापत्य : लकड़ी-पत्थर-गारे से पहाड़ी शैली में बना दो
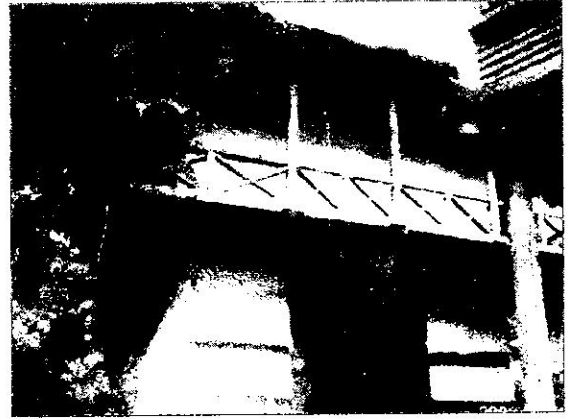
मंज़िल का मंदिर, जिसकी ऊपरी मंज़िल में लकड़ी का बरामदा बना है।

शाखा मंदिर : उपरैला।

अधिकार क्षेत्र : शरण, उपरैला तथा धलियारा गाँव।

प्रबंध : कारदार अधीनस्थ देऊलुओं की समिति।

न्याय प्रणाली : देव-रथ से, गूर द्वारा, मरोहड़ी विधि से।

पूजा : केवल विशेष अवसरों पर घोंडी-धड़छ से।

रथ : अंगाह वृक्ष की लकड़ी से बना दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर चुरू नामक जानवर की पूँछ के बाल लगाए जाते हैं।

मोहरे : आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का है। ऐसा माना जाता है कि इसमें ही देवता की सम्पूर्ण कला होती है। शेष स्वर्ण निर्मित।

मेले-त्योहार : वैशाख मास के प्रथम प्रविष्टे को *भिठ* मेला लगता है। श्रावण मास में ब्रह्मभोज का आयोजन। असौज के एक प्रविष्टे को *शौयरी* मेले में देवता आशापुरी देवी के धलियारा मंदिर में जाता है। पौष संक्रांति को जब देवी आशापुरी को नरोल पड़ता है, तब पाली नाग को भी

नरोल पड़ता है। फाल्गुन मास में मंदिर के कपाट खुलते हैं और गूर बर्शोहा देता है।

जनश्रुति : देवता मूल रूप में रैला गाँव के पीछे की शारनधार पर रहता था। घनी आबादी वाले इस स्थान पर उस समय निर्मम लोगों का वास था। कहा जाता है कि यहाँ साठ व्यक्तियों का एक परिवार था। रात के भोजन के बाद घर की छोटी बहू जूठे बर्तन साफ करने के लिए पिछवाड़े में आया करती थी। एक दिन बर्तन माँजते हुए उसे आवाज़ सुनाई दी, 'मैं आऊँ, मैं आऊँ।' आवाज़ सुनकर वह डरी परन्तु किसी को भी इस बारे में नहीं बताया। अब वह आवाज़ उसे प्रतिदिन सुनाई देने लगी। इसी चिंता में वह कमज़ोर होने लगी। एक दिन उसके ससुर ने उससे पूछा कि वह कमज़ोर क्यों हो रही है। पहले तो उसने कुछ नहीं बताया परन्तु जब वृद्ध ने बार-बार पूछा तो उसने सारी बात बताई कि बर्तन माँजते हुए उसे रोज़ 'मैं आऊँ, मैं आऊँ' की आवाज़ सुनाई देती है। यह सुनकर ससुर ने घर के सभी पुरुषों से विचार-विमर्श कर यह निर्णय लिया कि अब जब भी उसे वह आवाज़ सुनाई देगी तो वह उसे आने के लिए कहेगी और जब वह आएगा तो सब मिलकर उसे मार देंगे। रात में वैसा ही हुआ। उस स्त्री ने आवाज़ सुनते ही कहा-आ जा। उसके ऐसा कहते ही पूरी शारन धार टूट गई और घनी आबादी वाला वह क्षेत्र आनन-फानन में उसके नीचे दबकर नष्ट हो गया और पाली नाग जो-मैं आऊँ मैं आऊँ की ध्वनि करता था, मेंढक का रूप धारण कर वहीं इधर-उधर फुदकने लगा।

समय आने पर उस टूटी हुई पहाड़ी पर घास उग आया और शरण गाँव की दलित महिलाएँ घास काटने के लिए वहाँ आईं। शाम को बोझे तैयार कर जब वे घर को जाने लगीं तो मेंढक किसी निश्छल महिला के बोझ में छिप गया। पहाड़ी से उतरते समय उस महिला को अपना बोझ इतना हल्का लगा कि वह सबसे आगे निकल गई। किन्तु ज्यों ही शरण गाँव की सीमा आई तो बोझ इतना भारी हो गया कि उसे दो-तीन कदम चलने पर ही विश्राम करना पड़ा। उसकी साथिनें उससे आगे निकलते हुए आपस में कहने लगीं कि इसे आज कुछ हो गया है; पहले तो दौड़ रही थी, अब सबसे पीछे रह गई है। जब घर पहुँचकर उसने घास का बोझ खोला तो उसमें से एक मेंढक निकला और देखते ही देखते उसने अपना आकार बढ़ा लिया। वह सोचने लगी कि शायद इसी के कारण बोझ इतना भारी था। उसके ऐसा सोचते ही मेंढक अपने असली रूप में आ गया और कहने लगा कि वह देवी आशापुरी धलियारा का सेवक पाली नाग है और महिला से प्रसन्न है। यदि वह मंदिर का निर्माण करवाएगी तो पूरे गाँव सहित वह उसे मालामाल कर देगा। तभी से शरण गाँव में देवता का मंदिर है और साँकल में देवता की स्थापना है। देवी आशापुरी का सेवक होने के कारण आज भी यह धलियारा में होनेवाले त्योहारों में हाज़री भरता है।

पुंडीर ऋषि

गाँव : दलोगी, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान एवं मंदिर : दलोगी।

भंडार : कथ्याऊगी।

स्थापत्य : पैगोड़ा शैली में बना द्विछतीय मंदिर जिसकी छतें स्लेटों से आच्छादित हैं। 30 फुट वर्गाकार के इस मंदिर में लकड़ी का अधिकतम प्रयोग हुआ है। मंदिर के भीतर एक पिंडी तथा एक प्राचीन मूर्ति स्थापित है जो भगवान् विष्णु की मानी जाती है।

शाखा मंदिर : पटाहरा, मन्याशी, करटाह, रोपा।

अधिकार क्षेत्र : दुशाहड़ से मैहरा तक, जिसमें सुचैहन, बनोगी, दुशाहड़ पंचायतें आती हैं।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में आठ पालसरों व जठाली की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से देवता द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन स्थानीय पारम्परिक विधि से पुजारी गुग्गुल धूप जलाकर पूजा करता है। पूजा में स्तुति के बोल इस प्रकार हैं-

प्रथमे तबारे नारायण जीये मछातवार लियो त्रियों
मच्छा जी की माता सुखवंती, पिता पूर्व ऋषि
गुरु मन्धाता ऋषि, द्वारकापुर स्थान दय जयो..

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ, जिसे दो व्यक्ति उठाते हैं। इसके शीर्ष पर दो छत्र सुशोभित होते हैं।

मोहरे : आठ। जिनमें से मुख्य मोहरा अष्टधातु का व शेष स्वर्ण निर्मित हैं। सभी मोहरे रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त सोने व चाँदी की तीन गलपट्टियाँ, दो मंडयाली, दो चौकी, आठ कलश, एक चाँदनी, एक जिंगा तथा एक मोनाल की कलगी है।

मेले-त्योहार : वैशाख के 22 प्रविष्टे को लिहिनीधार सैंज मेला, तथा 25 प्रविष्टे को *देहुरी* मेला लगता है। सावन के महीने में देवता शांघड़ तथा भादों में शैंशर जाता है। इन यात्राओं में देऊली, देऊखेल, हुलकी तथा लोहा खेलना आदि कार्यविधियाँ की जाती हैं। आश्विन मास के रोहिणी नक्षत्र में प्रतिवर्ष कथ्याऊगी गाँव में *हूम* का आयोजन किया जाता है। कार्तिक मास में वियजदशमी को देवता कुल्लू जाता है। कुछ वर्षों के अंतराल में देवता हारगी के लिए अपने पूर साज-बाज व चौदह-पंद्रह सौ लोगों के साथ ज़िला मंडी के पंजाई, बाह्य सराज में सराहण, चाईल, खोखण तथा भूंतर जाता है।

जनश्रुति : पुंडीर ऋषि शूआ कम्बरू स्थान से रामपुर बुशैहर, श्रीखंड, नैणासर होते हुए ब्रह्मगढ़ की ऊँची पहाड़ियों पर पहुँचा और वहाँ एक सरोवर का निर्माण कर उसमें तप करने लगा। अपनी चमत्कारिक शक्तियों के कारण वह इस क्षेत्र का मुख्य देवता बना। एक बार यहाँ उसकी मुलाकात शियाना ऋषि से हुई और दोनों में मित्रता हो गई। एक दिन शियाना ने पुंडीर से कहा-मैं चावल खा-खाकर थक गया हूँ इसलिए अपने देश बनोगी को छोड़कर इधर-उधर भटक रहा हूँ। पुंडीर ने कहा कि मैं भी काठू-टाक खाते-खाते यहाँ तंग आ गया हूँ। अतः तू मेरा स्थान ले ले और मैं तेरे स्थान पर चला जाता हूँ। ऐसा कह कर पुंडीर वहाँ से सराहण होते हुए बुंगा नामक पहाड़ी पर पहुँचा, जहाँ उसकी भेंट जोगणी माता से हुई। उसने तप करने के लिए पुंडीर को धर्मपुर नामक स्थान दिया। वहाँ से देवता की दृष्टि दलोगी गाँव पर पड़ी जहाँ उसे एक रोपा दिखाई दिया। उसमें म्लेच्छ जाति के लोग धान की रोपाई के लिए खेत तैयार कर रहे थे। उस रोपे में देवता की सरोवर बनाने की इच्छा हुई और उसने आकाशवाणी द्वारा म्लेच्छों को सचेत किया कि सायं चार बजे मूसलाधार बारिश होगी, इसलिए रोपे में काम करने वाले वहाँ से हट जाएँ। परन्तु उन्होंने इसे मज़ाक समझा और वहाँ काम करते रहे। ठीक चार बजे अकस्मात् भयंकर वर्षा आई और वहाँ काम कर रहे सभी लोग साठ जोड़ी बैलों सहित उस बारिश में बह गए। दलोगी रोपे में देवता ने अपनी माया से सरोवर बनाया जो तीर्थ के रूप में आज भी विद्यमान है। देवता के चमत्कारों से प्रभावित होकर लोगों ने मंदिर का निर्माण किया।

बड़ा छमाहूँ

गाँव : दलियाड़ा, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान : दलियाड़ा (कोटला)।

मंदिर : दलियाड़ा।

भंडार : गाँव फगवाना।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से मेरु संयोजन शैली में निर्मित मंदिर, जिसकी ढलानदार छत स्लेटों से ढकी है। बाहर खुला प्रदक्षिणा पथ है।

शाखा मंदिर : कोटला और चकुरठा फाटियों में लगभग बारह मंदिर।

अधिकार क्षेत्र : कोटला तथा चकुरठा फाटी, जिनमें पाँच पंचायतें और दर्जनों गाँव आते हैं।

प्रबंध : दो कारदारों की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, पालसरा, कठैला, भंडारी, काईथ, धामी और जेलता की समिति।

न्याय प्रणाली : प्रश्न द्वारा, लाड़ू डालकर, खड़े रथ से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं षोडशोपचार-पूर्वक मंत्र-ध्वनि के साथ पूजा की जाती है। विष्णु स्तोत्र तथा नाग वंशावली का पाठ होता है।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ, जिसके निचले भाग में वस्त्राभूषण, मध्य में मोहरे और शिखर पर सर्वप्रथम चुरू की पूँछ के बाल, उसके ऊपर सुनहरा टोप और शीर्ष पर स्वर्ण या रजत छत्र शोभित होता है।

मोहरे : नौ। सभी मोहरे स्वर्ण के हैं।

मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को *देऊ ओसनी* नामक त्योहार मनाया जाता है। इस दिन देवता 'नरोल' से बाहर आता है। कारकुन देवरथ को सजाते हैं। क्षेत्र का अधिष्ठाता होने के कारण इस दिन बड़ा छमाहूँ के सहायक देवी-देवताओं के गूर तथा कारिन्दे देवस्थान में उपस्थित होते हैं। सभी कार्यकर्ताओं और हारियानों के मंदिर में पहुँचने के बाद देवता बाजे-गाजे के साथ प्रांगण में निकलता है और शोभायात्रा कोटला से चवाली माता के मंदिर जाती है, जो गाँव से डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर है। वहाँ देवकार्यवाही होती है। देवता के वहाँ पहुँचने पर वह आसानी से वापिस नहीं लौटना चाहता। जब सभी हारियान उन्हें वापिस लाने का प्रयास कर थक जाते हैं तो देवता का दलित जाति का जेलता रथ की अर्गलाओं को हाथ लगाता है। तभी देवता लौटता है। कोटला पहुँचने पर देव प्रांगण में सैकड़ों महिलाएँ देवता की आरती उतारती हैं और गूर सभी को 'शेष' देता है। तत्पश्चात् पूरी जलेब धामणी देवता को लाने के लिए प्रस्थान करती है, जो साथ ही अन्य मंदिर में स्थापित है। धामणी देवता के आने पर दोनों भाइयों का मिलन होता है। महिलाएँ दोनों की पूजा करती हैं और देवकार्यवाही के बाद मेला भरता है और शाम को देऊ ओसनी मेला समाप्त होता है। 27-28 प्रविष्टे वैशाख को लारजी मेला होता है, जिसमें बड़ा छमाहूँ और छोटा छमाहूँ अर्थात् धामणी देवता दोनों सम्मिलित होते हैं।

ज्येष्ठ मास में देवता को कुज्जी के सुगंधित पुष्प चढ़ाए जाते हैं, इसे *कुज्जी* पर्व के नाम से जाना जाता है। आषाढ़ मास में धाराखरी में *देहुरी मेला* मनाया जाता है। इस दिन देवता अपने छोटे-भाई और तोतला माता के साथ कोटला जाता है और दूसरे दिन धाराखरी के केली नामक स्थान पर जाता है। अगले दिन को *शलवाच* के नाम से जाना जाता है। इसमें देवकार्यवाही होती है। शाम को देवमिलन होता है।

भाद्रपद कृष्ण-जन्माष्टमी का पर्व दलियाड़ा में धूमधाम से मनाया जाता है। आश्विन संक्रांति को *शौयरी मेला।* 6 आश्विन को डोघर गाँव में *शौयरी मेला।* पौष मास में कोटला में *दियाली उत्सव।* दियाली की पूर्व संध्या को लोग लकड़ियाँ एकत्र कर जागरा जलाते हैं। दियाली की रात्रि को साथ लगते धाराखरी और अन्य गाँवों के लोग तथा देवता के कारकुन मुख्य रूप से देवता की सोने की छड़ी लेकर गाँव कोटला को जाते हैं। इस छड़ी को कमोटू वंश का सयाना उठाता है और जवान जलती मशालों को लेकर रात्रि दस-ग्यारह बजे के मध्य धाराखरी से अश्लील गालियाँ देते हुए कोटला गाँव को प्रस्थान करते हैं। गाँव पहुँचने पर देवकार्यवाही होती है। गूर देवता की छड़ी लेकर कारकुनों के साथ कोठी से नीचे उतरता है। कोटला गाँव के लोग ही देव-परिसर में नाचते हैं, जिसमें गूर सबसे आगे होता है। अन्य गाँवों के लोगों को नाचने की आज्ञा नहीं होती। जब ढाई-फेरे नाटी पूरी होती है तो गूर की पत्नी बरामदे से सूखी घास का जलता हुआ गट्ठा नीचे फेंकती है, जहाँ लोग मशालें लिए खड़े होते हैं। वे अपनी-अपनी मशालें जलाते हैं। उसके बाद सौह में जाकर तलवारों के साथ नाचते हैं। अंत में धामड़ी वंश का

मुखिया दलित व्यक्ति के साथ जलती मशाल और तलवार लेकर नाचता है। इसके बाद सभी लोग भऊणी देवता के मंदिर जाते हैं। अंत में बड़े छमाहूँ का गूर समस्त हारियान को आशीर्वाद देता है और अगले दिन देवता के मंदिर के कपाट बंद हो जाते हैं। माघ संक्रांति को *फागली उत्सव* जो तीन दिन तक मनाया जाता है। इसका आरम्भ पढारनी गाँव से होता है और समापन पल्दी के गाँव कष्ठी में। यहाँ देवता करथ नाग और इसके कारकुनों की मुख्य भूमिका होती है।

8 या 12 वर्ष के अंतराल में देवता अपने हारियान और बजंतरियों सहित फेरे पर जाता है और अपने दो भाइयों, वासुकि नाग, बुँगा माता, लक्ष्मीनारायण धाऊगी, कनौण के देवता ब्रह्मा से मिलता है। अंत में देवता लौल की जोगणी माता के मंदिर में शक्ति संचय के लिए जाता है, जहाँ सात से सत्तरह दिन लग सकते हैं। छमाहूँ नाग जोगणी माता के पास की भूमि पर विराजते हैं और जब शक्ति प्रकट होती है तो भूमि से मधुमक्खियाँ निकलती हैं, परन्तु वे किसी को काटती नहीं। उसके पश्चात् देवरथ पर पर्दा डाल कर उसे दलियाड़ा मंदिर पहुँचाया जाता है।

जनश्रुति : कलियुग के प्रथम चरण में जनकल्याण हेतु देवता द्वारका में अवतरित हुआ। वहाँ से दिल्ली होते हुए हिमाचल की पवित्र भूमि पर कई स्थानों का भ्रमण किया। घूमते-घूमते देवता कुल्लू घाटी के दलियाड़ा नामक स्थान पर पहुँचा जो देवता को बहुत भाया। वहाँ बड़े छमाहूँ ने तीन अन्य रूप प्रकट किए जो वहाँ से अन्य स्थानों को चले गए और बड़ा छमाहूँ ने दलियाड़ा को ही अपना स्थान बनाया। इसे षण्मुख स्वामी कार्तिकेय भी माना जाता है।

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार छमाहूँ नाग सर्वप्रथम *सराआगे* नामक स्थान पर प्रकट हुआ था। वहाँ उसके साथ कई अन्य नागों का भी वास था। कदाचित् वे वहाँ से अलग-अलग स्थानों को चल पड़े और छमाहूँ नाग घूमता हुआ कोटला गाँव पहुँचा। वहाँ उसने साधु का रूप धारण किया और गाँव में घूमने लगा। जब लोगों ने गाँव में एक अजनबी साधु को घूमते हुए देखा तो डरा-धमका कर एक स्थान पर उसे रस्सी से बाँध दिया और स्वयं अपने-अपने घर चले गए। कुछ समय बाद वहाँ छेतू वंश की एक बुढ़िया आई और साधु को बंधन में देखकर वह द्रवित हो गई। उसने साधु के बंधन खोल दिए, जिससे प्रसन्न होकर साधु ने बुढ़िया को नाग रूप में दर्शन देकर कहा कि वह छमाहूँ नाग है। यदि वह उसकी पूजा-अर्चना करेगी तो उसके वंश को किसी भी चीज़ की कमी न रहेगी और उसने उसे भरपूर अन्न-धन-पुत्र-भूमि इत्यादि का वरदान दिया। कृतज्ञतास्वरूप उस बुढ़िया के पुत्रों ने कोटला गाँव में देवता के निमित्त मंदिर बनवाया।

बनशीरा

गाँव : कनौण, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कनौण।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में बना ढाई मंज़िल का मंदिर, जिसकी चारों ओर को ढलवाँ छत पर स्लेटें बिछी हैं और शिखर पर 'बदोर' स्थापित है। मुख्य द्वार पर सुन्दर उत्कीर्णन हुआ है। मंदिर के चारों ओर प्रांगण है।

अधिकार क्षेत्र : तेरटा से कछैणी और लऊल से रुआड़ तक।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति, जिसके सदस्यों का चयन हारियान द्वारा किया जाता है।

न्याय प्रणाली : मरोहड़ी, देवरथ और गूर के माध्यम से।

पूजा : देवता का धामी ही इसकी पूजा करता है।

रथ : चिऊं नामक वृक्ष की लकड़ी से कुछ दशक पहले बना खड़ा रथ। इसके शीर्ष पर चुरू नामक जानवर की पूँछ के बाल लगाए जाते हैं। उसके ऊपर टोप तथा शीर्ष पर छत्र लगता है।

मोहरे : आठ। एक मुख्य मोहरा व सात पीतल के।

मेले-त्योहार : सहायक देवता होने के कारण यह ब्रह्मा

और महालक्ष्मी के सभी मेले-त्योहारों में साँकल रूप में सम्मिलित होता है। केवल हारगी में ही देवता का रथ निकलता है।

जनश्रुति : पूर्व में बनशीरा राक्षसवृत्ति का था और लोगों को खूब तंग करता था। जब ब्रह्मा और महालक्ष्मी कनौण में स्थापित हुए तो उन्होंने उससे वचन लिया कि वह दुष्ट प्रवृत्ति छोड़कर लोगों का कल्याण करेगा। इसके बदले में विशेष पर्व-त्योहारों पर इसे भेड़-बकरी की बलि देने का वादा किया। तब से आज तक यह प्रथा कायम है। पहले यह लोहे की साँकल में ही रहता था। बाद में इसे मानने वाले लोगों ने इसके निमित्त रथ का निर्माण किया, परन्तु ब्रह्मा व महालक्ष्मी के साथ आज भी यह साँकल के रूप में ही चलता है। ये देवता बनशीरा के बिना बाहर नहीं निकलते।

बराधी वीर

गाँव : तांदी-भलाण, **तहसील** : सैंज।
मूल स्थान एवं मंदिर : तांदी-भलाण।
भंडार एवं शाखा मंदिर : भलाण।
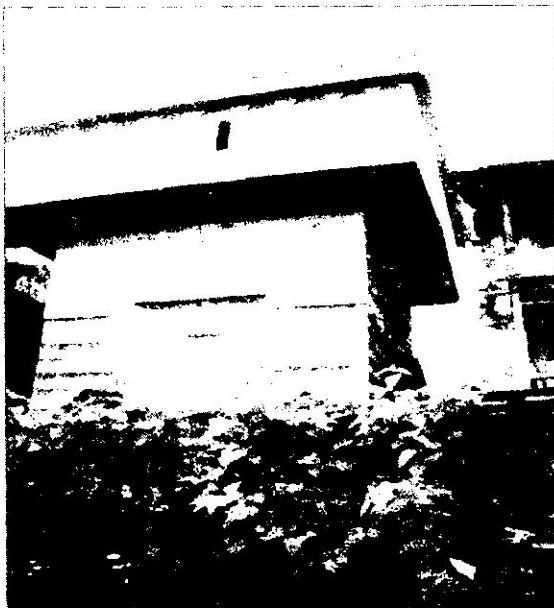
स्थापत्य : देवता का तांदी स्थित मंदिर लगभग चार सौ वर्ष पुराना है। काष्ठ निर्मित होने के कारण अब जर्जरावस्था में है। दो मंज़िला नया मंदिर भलाण में बनाया गया है। काठकुणी विधि से कोट शैली में बने इस मंदिर की ऊपरी मंज़िल के चारों ओर ग्लेज़्ड बरामदा है। मंदिर की दीवारों पर लकड़ी की पैनलिंग की गई है, जिस पर सुन्दर नक्काशी हुई है।

अधिकार क्षेत्र : बेकर से गढ़सा तथा घरशाला से सचाणी-थरास तक का सारा क्षेत्र।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, कायथ तथा छठाली की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, 'मरोहड़ी' विधि से।

पूजा : देवता की पूजा प्रतिदिन सचाणी गाँव के पंजबेढ़ू करते हैं। इनके दो खानदान हैं जो उजवे और बुनवे कहलाते हैं। ये बारी-बारी से पंचोपचारपूर्वक पूजा करते हैं तथा कमलनेत्र स्तोत्र का पाठ करते हैं।

रथ : नहीं है, इसके स्थान पर सुखपाल है।

मोहरे : नहीं हैं।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को देवता 'नरोल' से वापिस आता है और हारियान को गूर के माध्यम से अपनी भारथा तथा बर्शोहा सुनाता है। वैशाख संक्रांति को देवकार्य निभाने के बाद देव-सौह में *भिठ* मेला लगता है। श्रावण मास में देवता के मंदिर में *ब्रह्मभोज* का आयोजन होता है, जिसमें देवता द्वारा लगभग पाँच सौ व्यक्तियों को भोजन कराया जाता है। भादों में *भद्रपूज,* जिसमें हारियान देवता के प्रति दान-दक्षिणा देते हैं। आश्विन संक्रांति के दिन लोग देवता को नवान्न चढ़ाते हैं तथा मेला लगता है। पौष मास में देवता 'नरोल' में चला जाता है।

जनश्रुति : बराधी वीर, जिसे पांडवों की एकात्म शक्ति माना जाता है, सर्वप्रथम काश्मीर में प्रकट होकर दिल्ली आया और वहाँ का राज-तख्त जीता। वहाँ से कांगड़ा पहुँचकर भोटों को समाप्त किया। तत्पश्चात् महादेव की नगरी मंडी से रोपड़ू कंडी, राहतर, भोसा आदि स्थानों पर

अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर वहाँ से किन्नौर पहुँचा। पुनः लौटकर राहतर आया और वहाँ से थरास, गड़सा, पालगी, कंडी होते हुए बुंगागढ़ पहुँचकर वहाँ के दुष्ट ठाकुरों का सर्वनाश किया। तदुपरांत घाट के नृशंस ठाकुरों को फटकार लगाकर रुंगल आया और वहाँ की ठकुराइन को हराकर उजला कंडा में वास किया। वहाँ के गम्मा भाट ने तांदी में सात दिन-रात हवन यज्ञ करके बराधी वीर की स्थापना की और बाद में मंदिर का निर्माण किया।

बराधी वीर

गाँव : बनोगी, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान एवं मंदिर : बनोगी ठाणा।
भंडार : कौंशा गाँव।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से कोट शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर, जिसकी तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है। मंदिर के साथ ही देवसौह है।
अधिकार क्षेत्र : कोठी बनोगी।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।
पूजा : प्रातः-सायं धूप से।
रथ : नहीं है।
मोहरे : मोहरे के स्थान पर अष्टधातु की एक मूर्ति है।
मेले-त्योहार : फाल्गुन तथा आश्विन मास की संक्रांतियों को त्योहार मनाया जाता है तथा फाल्गुन मास की कृष्ण चतुर्दशी को *महाशिवरात्रि* का पर्व होता है।
जनश्रुति : कलियुग के प्रथम चरण में देवता उत्तरकाशी में प्रकट हुआ। वहाँ से दिल्ली, काँगड़ा, मंडी होते हुए कुल्लू की सैंज घाटी में आया। वहाँ बनोगी गाँव पहुँचकर किसी व्यक्ति को दृष्टांत दिया और कहा कि वह बराधी वीर है, जो लोगों के कल्याण के लिए इस क्षेत्र में स्थापित होना चाहता है। जिसे देवता ने दृष्टांत दिया था, उसने यह बात गाँववालों को बताई तो सब ने मिलकर मंदिर का निर्माण किया और उसमें बराधी वीर की अष्टधातु की मूर्ति की स्थापना की। देवता ने गाँव के चार परिवारों में से अपने चार कारकुन चुने और अपने चमत्कारों से लोगों को प्रभावित किया।

ब्रह्म देवता

गाँव : कनौण, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कनौण।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से पहाड़ी शैली में बना मंदिर, जिसमें गारे से लिपाई की गई है। छत पर स्लेटों का आच्छादन है, द्वार पर गणेश, जानवरों की आकृतियाँ और बेल-बूटे उकेरे गए हैं।
शाखा मंदिर : कछैणी, डूघा, रुआड़, तांदी।
अधिकार क्षेत्र : कछैणी से रुआड़ तक का पंद्रह-बीहा क्षेत्र तथा भलाणी गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में परम्परानुसार गठित समिति।
न्याय प्रणाली : मरोहड़ी, गूर या देव-रथ द्वारा।
पूजा : प्रातः-सायं पूजा व आरती तथा कमलनेत्र स्तोत्र का पाठ।
रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ जिसे दो व्यक्ति उठाते हैं।
मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का व अन्य सात स्वर्ण निर्मित।
मेले-त्योहार : ब्रह्म देवता और देवी ब्रह्मलक्ष्मी (कछैणी) को भाई-बहन माना जाता है, अतः इनके मेले-त्योहार साँझे ही होते हैं। पहले इनके मोहरे एक ही रथ पर सज्जित होते थे लेकिन अब दोनों के रथ अलग-अलग बने हैं तथा मेले में साथ-साथ चलते हैं और ये इकट्ठे ही सारी देवकार्यवाही और देवप्रथा निभाते हैं।

वैशाख संक्रांति को ब्रह्मदेवता तथा देवी ब्रह्मलक्ष्मी के रथों को रस्सों से खींचते हुए हारियान ऊँचाई पर स्थित सुरगणी नामक स्थान पर ले जाते हैं तथा देवकार्यवाही के

उपरांत रथों को रस्सों से ही खींचते हुए वापिस लाया जाता है। आषाढ़ मास में दुष्टात्माओं को भगाने के लिए *हूम* का आयोजन किया जाता है। संक्रांति के दिन देवता की स्वीकृति से इसके लिए दिन निश्चित कर शुभमुहूर्त में देव-वणी से देवदार का वृक्ष काट कर कुल्हाड़े से उसकी बारीक-बारीक छड़ियाँ बनाकर सूखने के लिए रख दी जाती हैं। तत्पश्चात् हूम से पहले दिन इन छड़ियों को इस प्रकार बाँधा जाता है कि यह एक विशाल मशाल बन जाती है, तब इसे *दी* कहते हैं। हूम वाले दिन इसे देहुरी मंदिर में लाते हैं। रात्रि लगभग दस बजे देवी तथा देवता कनौण से देहुरी मंदिर में आते हैं और जैसे ही उनकी आरती उतारी जाती है वैसे ही देहुरी से पूर्व की ओर स्थित नाहीं नामक गाँव की जोगणी के शेपफूल सहित वहाँ के प्रत्येक परिवार से एक-एक व्यक्ति हाथ में मशाल लेकर जंगल के रास्ते ज़ोर-ज़ोर से अश्लील गालियाँ देते हुए देहुरी मंदिर की ओर आते हैं। मंदिर में उनके प्रवेश करते ही गूर को खेल आती है और वह बोलता है-दी-आ-हा-ई-और आरती के समय देवता के पास जलाए गए दीपक से धामी, गूर या पुजारी बड़ी मशाल *दी* को जलाता है। जब उसका अगला भाग पूरा जल जाता है, तब वहाँ उपस्थित लोग मशाल को मंदिर से बाहर की ओर मोड़ना शुरू करते हैं। मशाल के बाहर पहुँचने पर देवी तथा देवता के कारकुन प्रांगण में पहुँच कर अग्निकुंड में अग्नि प्रज्वलित करते हैं और सभी लोग उस *दी* को उठाकर कुंड की तीन परिक्रमाएँ करते हैं। तत्पश्चात् *दी* सहित सभी लोग कनौण मंदिर आते हैं और *दी* को मंदिर के सहारे खड़ा कर दिया जाता है। उसकी रोशनी में सब लोग नाटी करते हैं। *दी* का शेष बचा भाग प्रातः होने से पूर्व ही देहुरी मंदिर में पहुँचा दिया जाता है। प्रातः कनौण में विधिवत् पूजा के उपरांत हवन किया जाता है।

आश्विन संक्रांति को शौयरी मेला लगता है। लोग देवता को नवान्न, फल, पुष्प चढ़ाते हैं। देव-कार्यवाही के बाद देवी-देवता पूरे गाँव का फेरा लगाते हैं तथा लोग उन पर सेब, खीरे, अखरोट न्योछावर करते हैं और बच्चों में उन वस्तुओं को पकड़ने की होड़ लगती है। पौष संक्रांति को देव कार्यवाही के पश्चात् शाम के समय देवी-देवता के मोहरे, आभूषण, वस्त्रादि उतार कर देवरथ पर पर्दा डाल दिया जाता है और सामान ट्रंक में डालकर गुप्त स्थान में रखा जाता है।

जनश्रुति : स्वर्ग से राजस्थान के पुष्कर तीर्थ में अवतरित होकर देवता कांगड़ा, मंडी, शांघड़ होता हुआ कनौण गाँव में प्रकट हुआ और यहाँ चार वंशों तंदुआल, गुलरे, बझारू, चनाल की स्थापना कर उन्हें देव-मंदिर बनाने का आदेश दिया। स्वयं उन्हें धन-पुत्र आदि का वरदान देकर उनकी रक्षा का वचन दिया। आज भी तंदुआल वंश से कारदार, गुलरे से भंडारी, बझारू से गूर और चनाल खानदान से देवता का छठाली नियुक्त होता है।

ब्रह्मलक्ष्मी

गाँव : कछैणी, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कछैणी।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से कोट शैली में बना मंदिर

जिसकी दीवारों और द्वारों पर सुंदर नक्काशी की गई है।

शाखा मंदिर : गाँव देहुरी।

अधिकार क्षेत्र : वलियुल धार से रुआड़ तक तथा सपांगनी से कनौण तथा शलवाड़ से ऊपरी नाहीं तक।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गठित समिति।

न्याय प्रणाली : देवी-रथ द्वारा, मरोहड़ी विधि से, गूर द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः पूजा व सायंकाल में आरती। इसके अतिरिक्त दुर्गाचालीसा का पाठ किया जाता है।

रथ : चिऊं वृक्ष की लकड़ी से बना, दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ जिसके शीर्ष पर पहले 'बाँवल', फिर टोप और सबसे ऊपर छत्र लगाया जाता है। रथ को चारों ओर से रेशमी वस्त्रों से सजाया जाता है।

मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा सात स्वर्ण के। पहले देवी का मुख्य मोहरा ब्रह्म देवता के रथ पर ही लगता था परन्तु तीन दशक पूर्व देवी का निजी रथ बनने पर अब यह उसी में लगाया जाता है।

मेले-त्योहार : देखें-ब्रह्म देवता, कनौण, तहसील सैंज के मेले-त्योहार।

जनश्रुति : स्वर्ग से बिजली कड़कने के साथ देवी भाखड़ी नामक स्थान पर प्रकट हुई और वहाँ से दाड़ी, दलासणी, कंडा होती हुई फबियारी पहुँची, जहाँ रिशा गर्गाचार्य का आधिपत्य था। रिशा ने देवी को अपनी बहन माना। कुछ समय वहाँ रहने के बाद देवी कछैणी आई और वहाँ के लोगों द्वारा पूजित हुई। कई बार कछैणी वालों से रूठ कर देवी फबियारी, खनारगी या रोट-कंढा चली जाती है क्योंकि रिशा गर्गाचार्य की सारी हार को देवी का मायका माना जाता है। फिर कछैणी वालों के मनाने पर ही देवी वापिस आती है। अन्न, धन, दूध, पुत्र देने वाली इस देवी को महामाई और ब्रह्म की बहन होने के कारण ब्रह्मलक्ष्मी के नाम से जाना जाता है।

भृगु ऋषि

गाँव : आशनी, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : आशनी।

स्थापत्य : आशनी गाँव के भृगुपुरी स्थल पर देवदार-वृक्षों के बीच बने पुरातन मंदिर को उखाड़ कर उसके स्थान पर सन् 2004 में काष्ठ-प्रस्तर से पहाड़ी शैली में बनाया गया डेढ़ मंज़िल का है, जिस पर स्लेटों की छत लगी है। मंदिर के चारों ओर बरामदा है जो पीछे की ओर से दीवार से बंद किया गया है और तीन ओर से खुला है। मंदिर में प्रयुक्त काष्ठ पर सुंदर नक्काशी की गई है। देव मंदिर के आसपास रगू देवता, जोगणी, वीर तथा जुंगरू देवता के मंदिर भी हैं।

अधिकार क्षेत्र : आशनी, पूईण, रामनगर व बग्गी गाँव।

प्रबंध : कारदार, पुजारी, गूर, पुरोहित तथा गाँव के विशिष्ट व्यक्तियों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, 'मलोही' विधि तथा अनाज के दानों से, मंढ़े पर चावल, फूल तथा जल के छींटे डालकर प्रश्न पूछना। यदि मंढ़े में कम्पन उत्पन्न हो तो बात पक्की मानी जाती है।

पूजा : यदि देवता भंडार में ही हो तो पूजा केवल संक्रांति, 15 तथा 20 प्रविष्टे को होती है परन्तु विशेष अवसरों तथा मेले-त्योहारों पर जब देवता रथ में सुसज्जित होकर मंदिर आता है तो पूजा प्रतिदिन प्रातः-सायं गुग्गुल, बेठर और अगरबत्ती तथा धड़छ में बेठर जलाकर पंचोपचारपूर्वक की जाती है। पुजारी वेदमंत्रों का उच्चारण करते हुए चंवर डुलाता है। शाम के समय आरती होती है। घी का दीपक जलाया जाता है। देववाद्य बजाए जाते हैं।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ अंगू वृक्ष की लकड़ी से निर्मित है, जिसे दो व्यक्ति उठाते हैं। शीर्ष पर छत्र शोभित है। रथ की 'शीव' ताम्र व पीतल की बनी है।
मोहरे : आठ, जो रथ के चारों ओर सजाए जाते हैं।
मेले-त्योहार : पौष और माघ मास में देवता के कपाट बंद रहने के बाद फाल्गुन में खुलते हैं। देवता के स्वर्ग से वापिस आने पर देवता के करडू को मंदिर में लाते हैं। गूर भारथा सुनाता है और पूरे वर्ष की भविष्यवाणी की जाती है। वैशाख की संक्रांति को देवता को धूप पिलाया जाता है। श्रावण मास की संक्रांति से दो दिवसीय मेला लगता है। मंदिर प्रांगण में महिलाएँ थाली में कुंकुम, पुष्प, अक्षत व केसर लेकर कड़छी में धूप जला कर देवता की पूजा करती हैं। लोग नाटी लगाते हैं। भादों अष्टमी को लोग व्रत रखते हैं और देवमंदिर में उत्सव मनाया जाता है।
जनश्रुति : भारथा के अनुसार भृगु ऋषि चंद्रखणी पर्वत से नकथाण होते हुए रुद्रनाग तीर्थ पर आया। वहाँ तूडू नाग (तक्षक) से भृगु ने धर्मचारा लगाया। फिर धर्म-बेहड़, बड़ोगी, लूमठ, शरन होते हुए वह काँसाधार पहुँचा और वहाँ कई वर्ष तपस्यारत रहा। काँसाधार के नीचे वाले स्थान पर नमक की खान थी, जिससे नमक निकालने की प्रक्रिया के लिए सात बलियाँ दी जानी थीं। परन्तु जब भृगु को इस बात का पता चला तो उसने तूडू नाग से इस सम्बंध में चर्चा की। कहते हैं कि नाग देवता ने उस समय मूसलाधार वर्षा बरसाई, जिससे मार्कण्डेय ऋषि बाढ़ में बह गया और मकराहड़ जाकर रुका। काँसाधार से भृगु चौकी रोपा गया जहाँ मँगलेश्वर महादेव का एक राक्षसी से युद्ध हो रहा था। भृगु ने महादेव से उसको उलटी तलवार से मारने को कहा। राक्षसी का वध होने के पश्चात् भृगु गल्चोला और फिर कंढी जोत पहुँचा, जहाँ जोगणियों का वास था। भृगु ने उनके साथ जुआ खेला और उसमें उन्हें हरा दिया। इस हार के बदले में उन्होंने भृगु को उस कंढी पर कुछ स्थान दिया। तत्पश्चात् वह नारद-मुनि के साथ नीणू आया। नारद वहीं रुक गया और भृगु ने आशनी गाँव को अपना निवास बनाया।

मडासण माता

गाँव : निंगणा, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान एवं मंदिर : निंगणा।
भंडार : निंगणा व कमाँद गाँव।

स्थापत्य : निंगणा गाँव में दो मंदिर हैं। पुरातन मंदिर कुल्लू के राजा प्रीतम सिंह द्वारा सन् 1750-60 के मध्य काठकुणी शैली में बनवाया गया था। डेढ़ मंज़िल के इस मंदिर की चारों ओर को ढलवाँ छत पर स्लेट बिछे हैं। मंदिर के आगे 'सौह' है। नया मंदिर लोगों के दान व भाषा संस्कृति विभाग के सहयोग से बना है।
शाखा मंदिर : गाँव कमाँद तथा पियाशण।
अधिकार क्षेत्र : निंगणा, कमाँद, मसू, पियाशण, भाटग्राँ, बोशाधार।
प्रबंध : कारदार, पुजारी, गूर, ढौंसी, भंडारी, जठाली तथा पाँच सदस्य हारियानों में से चुने जाते हैं जो प्रत्येक गाँव का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सभी कारदार के दिशा-निर्देशों के अनुसार कार्य करते हैं।
न्याय प्रणाली : देवी द्वारा गूर के माध्यम से, 'लड्डू' डालकर, 'पाची पाणा' विधि से, चावल के दानों से।
पूजा : प्रति मास की संक्रांति, पंद्रह तथा बीस प्रविष्टे को, प्रातः पूजा तथा शाम के समय आरती होती है। जब देव-रथ भंडार से सज्जित होकर मंदिर में आए तो प्रतिदिन

प्रातः-सायं पुजारी वैदिक मंत्रोच्चार के साथ पूजा करता है। 'धड़छ' में 'बेठर' या धूप जलाया जाता है। प्रांगण में इस समय वाद्य बजाए जाते हैं, जिसे झूणा कहते हैं।

रथ : देवदार की लकड़ी से बना फेटा रथ जिसकी अर्गलाएँ अंगू नामक वृक्ष की लकड़ी की हैं।

मोहरे : दस, जिन्हें रथ के अग्रभाग में लगाया जाता है।

मेले-त्योहार : फाल्गुन-संक्रांति को मंदिर के कपाट खुलते हैं। इस दिन पर्व मनाया जाता है। वैशाख-संक्रांति को देवी गाँव में जाकर 'धूप पीती' है और महिलाएँ लाल्हड़ी नृत्य करती हैं। चार वैशाख को देवी कमाँद गाँव जाती है, जहाँ मेला लगता है। इसे *कमाँद फेरा* कहते हैं। इसी मास के आठ प्रविष्टे को देवी बोशाधार जाती है, जिसे बोशा जातर कहते हैं। श्रावण मास के सात प्रविष्टे को देवी मासू गाँव जाती है, जहाँ *मासू सावन* नाम से मेला लगता है। असौज के पाँच प्रविष्टे को निंगणा गाँव में सायर मेला लगता है। गाँव पयाशनी में देवी वर्ष में एक बार जाकर धूप पीती है। देवी को धूप केवल महिलाएँ ही देती हैं। इसके बाद पुष्प चढ़ाए जाते हैं। बदले में देवी भी उन्हें आशीर्वादस्वरूप फूल देती है। इसके अतिरिक्त हर तीसरे वर्ष माँ *दयार काहिका* में जाती है क्योंकि देवी के बिना वहाँ काहिका नहीं लगता।

जनश्रुति : कदाचित् किसी बुढ़िया को खेत में निराई करते समय दो मोहरे मिले। इनमें से एक मोहरे को निंगणा गाँव में तथा दूसरे को दयार गाँव में स्थापित किया गया। जो मूर्ति निंगणा में रही वह मडासण नाम से पूजी जाने लगी तथा दयार वाली मूर्ति शेषनाग के रूप में ख्यात हुई।

मार्कण्डेय ऋषि

गाँव : थरास, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान : गाँव मकराहड़।

मंदिर एवं भंडार : राऊलबेहड़ (थरास)।

स्थापत्य : 22x22 फुट के क्षेत्रफल पर बना, स्लेट की ढलानदार छत वाला एक मंज़िल का मंदिर, जहाँ देवता

का रथ रहता है। एक अन्य मंदिर गाँव थरास के गढ़ापांधे स्थान पर शिखर शैली का है। वास्तव में यह देवता की सराय थी जहाँ वर्ष में जन्माष्टमी के दिन देवता आकर ठहरता था या बाहर से आए देवता को भी ठहराया जाता था। अब तीन वर्ष पूर्व इसके भीतर संगमरमर के शिवलिंग को पकड़े बालक मार्कण्डेय की मूर्ति स्थापित की गई है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव राऊलबेहड़, पराहणा, थरास, बाथला, खड़ी सेर, जेहरा, मथोगी, बगी सेर।

प्रबंध : अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष तथा चार कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः पंचोपचार पूर्वक पूजा और सायंकाल में आरती गाई जाती है। प्रातः देसी गाय के घी का तथा सायं सरसों के तेल का दीपक जलाया जाता है।

रथ : चम्बा नामक वृक्ष की लकड़ी से बना फेटा रथ जिसे दो व्यक्ति उठाते हैं। इसके शिखर पर पीछे की ओर सुरा गाय की पूँछ के बाल लगाए जाते हैं।

मोहरे : पाँच। एक अष्टधातु का व चार चाँदी के। अष्टधातु के मोहरे के बारे में श्रुति है कि यह मोहरा कुल्लू राजा को जगतसुख में मिला था। अनेक देवी-देवताओं के रथ में इसे लगाया गया परन्तु जिस भी रथ में इसे लगाते, उसी को आग लग जाती। अंततः जब इसे मार्कण्डेय ऋषि के रथ पर लगाया गया तो मोहरे से आग निकलते ही देवता के रजत निर्मित मुख मोहरे से पानी बरसने लगा और आग बुझ गई। तब से यह मोहरा इसी रथ में जड़ा रहता है।

मेले-त्योहार : वैशाख संक्रांति को देवता का जन्मदिवस मनाया जाता है। मकराहड़ में जिस स्थान पर मोहरा मिला था, देवता का रथ वहाँ लेटकर माँ की गोद में दूध पीने का कार्य करता है। लोग यहाँ व्यास और गोमती गंगा के संगम पर स्नान करते हैं। 3 वैशाख को *हुरला जातर* और 4 वैशाख को राऊलबेहड़ मंदिर के प्रांगण में मेले का आयोजन होता है।

जन्माष्टमी वाले दिन थरास गढ़ापांधे के मंदिर में रात्रि जागरण। आश्विन मास की सैर संक्रांति को देवता हुरला में दाणाहार्ग स्थान पर जाता है।

4 असौज को जेहरा सौह में देवी श्यामा काली के मेले में भाग लेता है।

जनश्रुति : मार्कण्डेय वैदिक काल के महान ऋषि हुए हैं। यहाँ पर इनके आने के सम्बंध में कहा जाता है कि यह सर्वप्रथम लाहौल से मौहल के निकट तेगू बेहड़ में आए और यहाँ रह रहे साठ दुष्ट परिवारों को समाप्त किया। वहाँ से फागू, छेऊंर, जिया, हाटा होते हुए मकराहड़ पहुँचे। वहीं राऊल खानदान की एक बुढ़िया को खेत में काम करते समय मोहरा मिला और उसने देवरूप में प्रकट होकर बताया कि वह मार्कण्डेय है। बुढ़िया उस मोहरे को किलटे में डालकर व्यास नदी में धोकर राऊल बेहड़ के स्थान पर लाई और वहाँ स्थापित किया, जहाँ आज भी मंदिर है।

रघुनाथ

गाँव : खणीधार, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : खणीधार।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में निर्मित त्रिछतीय मंदिर, जिसमें केवल एक कक्ष है और बाहर प्रदक्षिणा पथ है। चारों ओर को ढलवाँ छत पर स्लेट लगे हैं और शिखर पर कलश सुशोभित है। छतों में चारों ओर लकड़ी की झालर लगी है। मंदिर के भीतर रघुनाथ और सीता माता की मूर्तियाँ स्थापित हैं।

अधिकार क्षेत्र : खणीधार, मणम, थुआरी, चिचुरोपा, कौशा, नरेहणा, नगोणी, दुशाड़ व पटाहरा गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से पूजा व आरती।

रथ : रथ के स्थान पर पालकी है।

मोहरे : अष्टधातु निर्मित दो मूर्तियाँ।

मेले-त्योहार : वर्ष में छह त्योहार मनाए जाते हैं-चैत्र मास के शुक्लपक्ष की नवमी को *रामजन्म*, भाद्रपद कृष्ण पक्ष की अष्टमी को *कृष्ण जन्म, सीता नवमी, निर्जला एकादशी, महाशिवरात्रि, वसंतोत्सव।* इन सभी त्योहारों को देवता की सारी प्रजा धूमधाम से मनाती है। वसंत पंचमी को रघुनाथ जी की प्रतिमा को पीले वस्त्र पहना कर पालकी में बैठाकर मंदिर से बाहर लाया जाता है

और चंदोवे के नीचे पूजा-अर्चना की जाती है। उसी दिन गुलाल फेंका जाता है। पीले रंग की रसोई पकाई जाती है। भगवान् को पीला मीठा भोग लगाया जाता है। पूजा की समाप्ति के बाद शाम के समय रघुनाथ जी को कारदार के घर ले जाते हैं। वहाँ भजन-कीर्तन होता है तथा दूसरे दिन लोगों को भोज खिलाया जाता है। सीता नवमी को सीता जी की मूर्ति को पालने में झुलाया जाता है और दूसरे दिन धाम खिलाई जाती है।

जनश्रुति : सन् 1555 ई. में कुल्लू के राजा भादर सिंह के शासनकाल के समय वीरभद्र सिंह नाम का ठाकुर गोभा गाँव से करज़ां आया। उसका अच्छा व्यवहार देखकर करज़ां के ठाकुर ने उसे वहाँ का मालिक बना दिया। कुछ पीढ़ियों बाद ठाकुर राजसिंह वहाँ का मालिक बना। वह रघुनाथ जी का परम भक्त था। उसने करज़ां में मंदिर बनवाकर उसमें रघुनाथ और सीता माता की मूर्तियों की स्थापना की। ये मूर्तियाँ वह उत्तरकाशी से लाया था। एक बार कुल्लू के राजा ने ठाकुर राज सिंह को देवता पुंडीर के हारियान के रूप में करज़ां से मणम भेज दिया। वहाँ जाते समय राजसिंह रघुनाथ व सीता जी की मूर्तियों को अपने साथ ले आया और वहाँ उनकी स्थापना की। ठाकुर राजसिंह के किसी वंशज होफा राम ने शांगरी के राजा से खणीधार की भूमि माँगी। भूमि मिल जाने पर वह मणम से भगवान् की मूर्तियाँ खणीधार ले आया। वहाँ मंदिर का निर्माण कर उसमें मूर्तियों की स्थापना की परन्तु 1905 के भूकम्प में वह मंदिर क्षतिग्रस्त हो गया। तब खणियाल ठाकुरों की भूमि पर मंदिर बनाया गया जो आज भी विद्यमान है।

विशेष : रघुनाथ मंदिर से नीचे की ओर एक मकान में नरसिंह भगवान् की स्थापना है और इसे रामचंद्र जी का सेवक माना जाता है। इस मकान में माया (गुप्तधन) दबी है जिसे रघुनाथ का खज़ाना माना जाता है। नरसिंह उसका पहरेदार है। कभी-कभी यह खज़ाना ध्वनि करता है और वहाँ सर्प प्रकट होता है। तब रघुनाथ जी की पूजा-अर्चना करके, नारियल की बलि देने से वह माया आवाज़ करना बंद कर देती है। कहा जाता है कि यह धन कुल्लू के राजघराने से किसी बुढ़िया द्वारा लाया गया था।

रघुनाथ

गाँव : गड़सा, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान : रघुनाथपुर-कुल्लू।

मंदिर : गड़सा।

स्थापत्य : कुछ वर्ष पूर्व निर्मित पहाड़ी शैली का एक मंज़िला लघु मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है। पूरे काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है।

अधिकार क्षेत्र : गड़सा तथा माहून के पालवंशी।

प्रबंध : अध्यक्ष, सचिव, कोषाध्यक्ष तथा चार अन्य सदस्यों द्वारा।

न्याय प्रणाली : देवता से पूछ डालकर, मलोही, पासा या रथ द्वारा।

पूजा : वर्ष की प्रत्येक संक्रांति, 8, 15, 20 प्रविष्टे, पूर्णिमा, अमावस्या व नवरात्रों में धूप-दीप से।

रथ : नहीं है। केवल एक पीढ़ी है, जिस पर रघुनाथ जी की प्रतिमा स्थापित है।

मोहरे : केवल चाँदी की एक मूर्ति।

मेले-त्योहार : चैत्र नवरात्र की नवमी के दिन भंडारे का आयोजन, 20 भादों को जगराता होता है।

जनश्रुति : सन् 1747 ई. में राजा टेढ़ी सिंह के शासनकाल में उनके दो भाई सुखराम सिंह और ज्ञान चंद राजमहल छोड़कर माहून गाँव में आकर बस गए। महल से वे अपने साथ रघुनाथ जी की मूर्ति और महंत पुजारी को भी लाए थे। उन्होंने मूर्ति को गड़सा में बागा आगे नामक स्थान पर स्थापित कर पुजारी को वहीं बसा दिया। दोनों भाइयों में से सुखराम सिंह के वंशज इसे अपना इष्ट मानते हैं। ये गड़सा, थरास और ढालपुर में बसे हैं। मंदिर में पूजा का कार्य वही महंत परिवार करता है, जिसे कुंवर सुखराम सिंह अपने साथ लाया था।

रघुनाथ

गाँव : हुर्चा, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : हुर्चा।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से पहाड़ी शैली में बने मंदिर में गारे से लिपाई की गई है। ढलवाँ छत पर स्लेट बिछे हैं। शिखर पर बदोर स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : रोट, भलाण तथा रैला फाटियों के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गठित समिति।

न्याय प्रणाली : मरोहड़ी तथा लड्डू द्वारा।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से। पूजा में कृष्ण लीला स्तोत्र का पाठ किया जाता है।

रथ : नहीं है।

मोहरे : नहीं हैं, केवल मंदिर में स्थापित मूर्ति है।

मेले-त्योहार : फाल्गुन पूर्णिमा को *होलिका दहन*, चैत्र मास में राम नवमी के दिन रघुनाथ जी का *जन्मोत्सव*, *नृसिंह चतुर्दशी*, भादों मास में *कृष्ण-जन्माष्टमी*, *निर्जला एकादशी*, *तुलसी विवाह*।

जनश्रुति : रियासती काल में कुल्लू के राजा ने हुर्चा के किसी पंडित को रघुनाथ जी की मूर्ति पूजने के लिए दी और साथ ही 82 बीघा भूमि की मुआफी भी दी। तब से वहाँ रघुनाथ जी की स्थापना है।

रिशा गर्गाचार्य

गाँव : खनारगी, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान एवं मंदिर : तलाड़ा।

भंडार : खनारगी।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से कोट शैली में बना तिमंज़िला भंडार 11 हाथ लम्बा, 11 हाथ चौड़ा व 35 हाथ ऊँचा है। छत स्लेटों से ढकी है तथा मुख्य द्वार पर सुन्दर नक्काशी हुई है।

शाखा मंदिर : फबियारा, कंढा व घाट गाँव।

अधिकार क्षेत्र : तलाड़ा, घाट, फलोहू, माहली व खनारगी गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में देवपरम्परा के अनुसार गठित समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व देवरथ द्वारा, 'लड्डू व मरोहड़ी' डालकर।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं गुग्गुल व बेठर धूप से पूजा करके विष्णु स्तोत्र का पाठ किया जाता है।

रथ : चिऊँ या अंगू नामक वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ, जिसे दो व्यक्ति अर्गलाओं की सहायता से उठाते हैं तथा दो दायीं-बायीं ओर से सहारा देते हैं। रथ को सुन्दर घाघरे पहनाए जाते हैं। शीर्ष पर सर्वप्रथम चुरू नामक जानवर की पूँछ के बाल लगाए जाते हैं, उसके ऊपर टोप
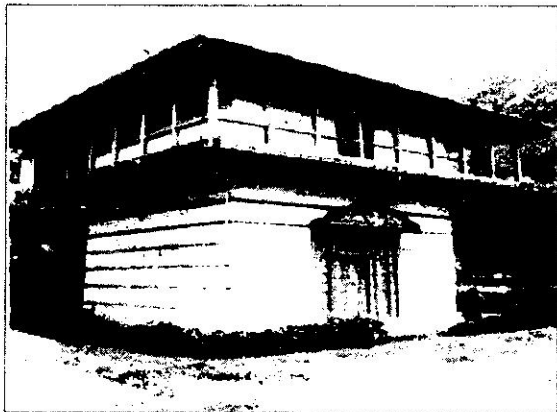
पहनाया जाता है। सबसे ऊपर स्वर्ण या रजत का छत्र लगाया जाता है क्योंकि देवता के पास दोनों छत्र हैं। गले में मोहरे व 'चानणी' लगाकर देवरथ सजाया जाता है।

मोहरे : कुल आठ, जिनमें से मल्लीमुख (मूल मोहरा) जिसे देवता की शक्ति का प्रतीक माना जाता है, अष्टधातु का है, शेष सात स्वर्ण निर्मित हैं।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को देवता तीन मास के 'नरोल' के बाद देवालय में लौटता है। मान्यता है कि वामनावतार के समय भगवान् विष्णु ने राजा बलि को वरदान दिया था कि वर्ष के तीन मास उसके दरबार में अट्ठासी हज़ार ऋषि-मुनि देव लीला रचाएँगे। अतः देवताओं का नरोल में जाना इसी प्रथा का द्योतक है। संक्रांति के दिन गूर देवता रिशा की भारथा सुनाता है।

वैशाख संक्रांति से पाँच दिवसीय *खनारगी भिठ* नामक मेला लगता है। इस दिन 'देऊचारा' के बाद जंगल से ब्रास के फूलों से बनाया एक देवरथ सजाकर लाया जाता है और सौह में उसे देवता के साथ नचाया जाता है। तत्पश्चात् सभी लोग दो दलों में बँट कर उसे अपनी-अपनी ओर खींचते हैं। प्रथानुसार सनौण गाँव का कोई भी व्यक्ति यदि इसे हाथ लगा दे तो वह उसी का हो जाता है, अन्यथा लोग उसे तोड़कर उसके फूल अपने घर ले जाते हैं। इस प्रकार इस मेले के दौरान तीन बार इसे बनाया जाता है और लोगों द्वारा तोड़ा जाता है। इस मेले में अन्य देवी-देवता भी सम्मिलित होते हैं।

जनश्रुति : देवता की उत्पत्ति काश्मीर में हुई। वहाँ से वह मथुरा में प्रकट हुआ और वहाँ अपना वर्चस्व बढ़ाया। अनन्तर मथुरा से प्रस्थान कर कई जगह अपनी स्थापना करवाई और कुल्लू के दलासणी नामक स्थान पर साधु के वेश में पहुँचा। तत्पश्चात् राहतर होता हुआ सचाणी आया और सप्त वसुधारा प्रकट कर जल की कमी पूरी की। वहाँ के लोगों द्वारा मान्यता प्राप्त कर वह तलाड़ा नामक स्थान पर पहुँचा और पिंडी रूप में स्थापित हुआ। कालांतर में यह फबियारी पहुँचा, जहाँ लोगों ने देवता के निमित्त मंदिर बनवाया। वहाँ से यह रोट-कंढा, खनारगी और घाट नामक स्थानों पर गया और वहाँ के लोगों द्वारा पूजा जाने लगा। देवता रिशा जहाँ-जहाँ गया वहाँ-वहाँ उसके मंदिर बना कर उसकी स्थापना की गई।

रिशा गर्गाचार्य

गाँव : रोट कंढा, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान : तलाड़ा।

मंदिर एवं भंडार : रोट कंढा।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से बना डेढ़ मंज़िल का पुरातन मंदिर, जिसकी छत स्लेटों से ढकी है। मंदिर के मुख्य द्वार पर नक्काशी की गई है। भीतर एक पिंडी तथा पत्थर की कई मूर्तियाँ स्थापित हैं। पास ही पानी की एक बावड़ी है जो पूरे साल जल-पूरित रहती है। उसका जल ही मंदिर में प्रयोग किया जाता है। जिस वर्ष बावड़ी में से जल बाहर बहने लगे तो इसे अतिवृष्टि का सूचक माना जाता है।

शाखा मंदिर : फबियारी, खनारगी व घाट गाँव।

अधिकार क्षेत्र : शैलियास से नणुगाड़ तथा बेकर से खनारगी सराआगे तक का सारा क्षेत्र।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में देव परम्परानुसार गठित समिति।

न्याय प्रणाली : देव-रथ द्वारा, गूर द्वारा, 'मरोहड़ी' डालकर।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पूजा तथा आरती 'धामी'

करता है। उसके कुटुम्ब में पातक हो जाने की स्थिति में पुजारी देवता की पूजा करता है।

रथ : चिऊँ नामक वृक्ष-विशेष की लकड़ी से बना फेटा रथ, जिसे दो व्यक्ति उठाते हैं। रथ को रंग-विरंगे रेशमी वस्त्रों से सजाया जाता है। शीर्ष पर चुरू गाय की पूँछ के बाल लगाकर उस पर कपड़े का सुन्दर टोप पहनाया जाता है। सबसे ऊपर सोने या चाँदी का छत्र लगाया जाता है।

मोहरे : कुल आठ, जिनमें से मुख्य मोहरा अष्टधातु का है और शेष स्वर्ण निर्मित हैं। सभी रथ के अग्र भाग में लगाए जाते हैं।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को देवता दो मास के 'नरोल' के बाद देवालय लौटता है और गूर भारथा सुनाकर 'वर्शोहा' देता है। वैशाख संक्रांति को मंदिर में देवप्रथा निभाने के बाद ब्रास के फूलों का एक रथ जंगल से बना कर ढोल-नगारे, पताकाओं के साथ मंदिर सौह में लाया जाता है। देवता से मिलन करवाकर उसे नचाया जाता है। बाद में लोग छीना-झपटी करके उस रथ को तोड़कर ब्रास के फूल घर ले जाते हैं।

श्रावण पूर्णिमा को देव-रथ को कंढा से तलाड़ा लाया जाता है; जहाँ देवता की मूल पिंडी है। अगले दिन भंडारा दिया जाता है।

भाद्रपद अष्टमी को कृष्ण-जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में देवता मुख्य मंदिर से एक जलेब (जुलूस) के रूप में बाजे-गाजे के साथ देहरे तक जाता है। देवता की हार के सभी लोग इस उत्सव को हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। देवता की ओर से समस्त जनों को भोजन कराया जाता है।

जनश्रुति : गर्गाचार्य को भगवान् कृष्ण का पुरोहित माना जाता है। प्रभु से देवता को ऋद्धि-सिद्धि का वरदान प्राप्त है। रिशा तपस्या हेतु सर्वप्रथम कुल्लू के सचाणी गाँव में आया। वहाँ सप्त वसुधारा प्रकट कर जल की कमी पूरी की। सचाणी से वह तलाड़ा, फवियारी होते हुए कंढा पहुँचा। उस समय वहाँ ठाकुरों का राज था परन्तु दुष्ट प्रवृत्ति के कारण वे स्वयं ही धीरे-धीरे समाप्त होते गए। केवल एक ठाकुर बचा जिसने श्रद्धाभाव से देवता की सेवा की। वह प्रातः-सायं देवता का नाम जपता रहता। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर अकस्मात् एक दिन देवता उसके सामने प्रकट हो गया और वर माँगने के लिए कहा। उसने देवता से वंशवृद्धि का वरदान माँगा ताकि उसकी आने वाली संतानें देवता की सेवा कर सकें। देवता रिशा की कृपा से उस ठाकुर का विवाह घुराल वंश की एक स्त्री से हो गया और वंश बढ़ने लगा। कृतज्ञता स्वरूप उसने देवता के निमित्त मंदिर का निर्माण करवाया। वर्तमान में उस ठाकुर के लगभग सौ परिवार हो चुके हैं जो देवता को मानते हैं। देवता जादू-टोने के प्रभाव से मुक्ति दिलाता है। उसके पास बलि देने की प्रथा प्राचीन समय से चली आ रही है, लेकिन बलि देते समय देवता के मुख्य मोहरे को बंद कर दिया जाता है। यह बलि रिशा के सहयोगी देवता वरंगू, तुहाला, बनशीरा आदि के निमित्त दी जाती है, जिन्हें देवता अपनी प्रजा पर आई विपत्ति और कष्टों को टालने का आदेश देता है।

रींगू नाग

गाँव : भूपन, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : भूपन।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में बने ढाई मंज़िल के प्राचीन मंदिर के स्थान पर वर्तमान में पैगोड़ा शैली में तीन मंज़िल के भव्य मंदिर का निर्माण किया गया है
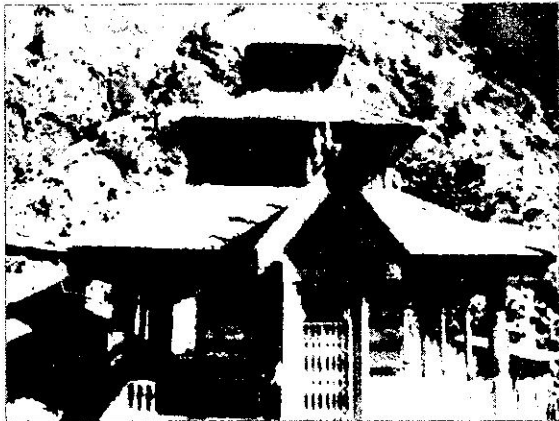
जिसमें प्रयुक्त पूरे काष्ठ पर अद्भुत नक्काशी हुई है। स्लेटों से आच्छादित चारों ओर को ढलवाँ छतों के शिखर पर कलश लगा है।

अधिकार क्षेत्र : बकशाल से भूपन गाड़ तक।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पारम्परिक देव-समिति।

न्याय प्रणाली : देवरथ द्वारा गूर के माध्यम से, मरोहड़ी डालकर।

पूजा : प्रतिदिन धूप-दीप से। उस समय नाग लीला स्तोत्र का पाठ किया जाता है।

रथ : दो व्यक्तियों द्वारा उठाया जानेवाला खड़ा रथ।

मोहरे : आठ। मूल मोहरा अष्टधातु का तथा सात रजत निर्मित।

मेले-त्योहार : वैशाख संक्रांति को *भिठ* मेला लगता है जो दो दिन तक चलता है। श्रावण मास में *शाऊणी* जाच जिसमें अन्य देवी-देवता भी आमंत्रित होते हैं। आश्विन संक्रांति की पूर्व संध्या को देवता को भंडार से मंदिर में लाया जाता है। प्रांगण में जागरा (अलाव) जलाया जाता है और लोग खूब नाचते हैं। अगली प्रातः देवकार्यवाही होती है। शाम के समय देवता गाँव की परिक्रमा करता है और लोग उस पर अन्न-धन की वर्षा करते हैं। पौष संक्रांति को देव-कार्यवाही करके देवता का पहरावा, मोहरे आदि उतारकर गुप्त स्थान पर रखे जाते हैं और देवरथ को वस्त्र से ढाँप दिया जाता है। फाल्गुन संक्रांति को देवता पुनः मंदिर में आता है और गूर के माध्यम से भारथा तथा बर्शोहा सुनाता है।

जनश्रुति : किसी समय कुटाल वंश का कोई व्यक्ति पीठ पर किलटा उठाए पलदी गाँव से नारायण सारी जा रहा था। वहाँ पहुँच कर जब उसने पीठ पर से किलटा नीचे उतारा तो उसमें उसे एक साँप दिखाई दिया। काटने के डर से उस व्यक्ति ने अपने दराट से उसके तीन टुकड़े कर दिए। साँप के तीन भागों में विभक्त होते ही अद्भुत घटना घटी। वे टुकड़े तीन साँपों के रूप में परिवर्तित हो गए। उनमें से एक वहीं भूमिगत हो गया, दूसरा उड़कर सुचैहण गाँव चला गया और तीसरा भूमि पर रेंगते हुए भूपन गाँव पहुँचा। उसने वहाँ लोगों को चमत्कारों से प्रभावित कर अपना वर्चस्व कायम किया। मनोकामनाएँ पूर्ण होने पर लोगों ने मंदिर, रथ तथा मोहरों का निर्माण किया।

लक्ष्मी नारायण

गाँव : जेष्टा, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : जेष्टा।

स्थापत्य : काठकुणी वाला देशज शैली का एक मंज़िला मंदिर, जिसकी ढलानदार छत पर स्लेट बिछे हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव जेष्टा, वाह, करतानू, खारना, सतेरिग।

प्रबंध : कारदार, पुजारी तथा हारियान में से कुछ चुने हुए लोगों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, 'मलोही' डालकर, 'पाची' द्वारा, चावल के दानों द्वारा।

पूजा : केवल उन अवसरों पर जब देवता रथ पर सुसज्जित होकर मंदिर में विराजमान हो। पूजा में गुग्गुल व 'बेठर' का धूप जलाया जाता है। देवता को कुंकुम और चंदन का तिलक लगाकर वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ पूजा की जाती है।

रथ : अंगू वृक्ष की लकड़ी का बना, दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ जो ऊपर से गुंबदाकार है। शीर्ष पर छत्र सुशोभित है।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को देवता के कपाट खुलते हैं और गूर 'बर्शोहा' देकर भारथा सुनाता है। चैत्र मास में कन्याएँ पूरे महीने रात के समय 'शराणी' गीत गाती हैं जिनमें देवता की स्तुति होती है। वैशाख संक्रांति को देवता घर-घर 'धूप पीने' जाता है। तीन प्रविष्टे वैशाख को *जेष्टा बिठ* नामक मेला लगता है। बिठ ब्रास के फूलों से बनाया गया एक बड़ा-सा वृत्त होता है। इसे बनाने के लिए देवता सहित गाँव वाले खोणी कोंढा जोत पर जाते हैं। इसे बनाने के बाद दो व्यक्तियों द्वारा जमाण से उठाकर गाँव में लाया जाता है। वहाँ पहुँचकर इसे खूब नचाया जाता है और बाद में सारे लोग इसे खींच-खींच कर तोड़ देते हैं। तोड़ने की इस प्रक्रिया को बिठ बदोकणा कहते हैं। यह मेला दो दिन तक चलता है। भाद्रपद मास में कृष्ण-जन्माष्टमी को जागरा व व्रतोत्सव होता है। आश्विन मास में देवता घर-घर जाकर धूप पीता है। 11 माघ को *सदयाला* होता है।

जनश्रुति : जेष्टा गाँव की एक कन्या का विवाह हवाई गाँव में हुआ था। एक बार अपने ससुराल में खेत में खुदाई करते समय उसे दो मोहरे मिले, जिनमें से एक को वह अपने मायके ले आई। उसके मायके वालों ने उस मोहरे की स्थापना लक्ष्मी नारायण के रूप में की। गाँव के सभी लोग उसे पूजने लगे क्योंकि वहाँ का देवता नारद मुनि जेष्टा से नीणू चला गया था और अब वहाँ कोई देवता न था। उनकी मनोकामनाएँ देवता की कृपा से पूर्ण होने लगीं, लेकिन दैवात् उस स्त्री के कोई संतान न हुई जो उस मोहरे को हवाई से जेष्टा लाई थी। इससे दुःखी होकर उसने धारना धार नामक पहाड़ी पर से जहाँ से हवाई और जेष्टा दोनों गाँव दिखाई देते हैं, छलाँग लगाकर आत्महत्या कर ली और देवता को यह शाप देकर गई कि जब तक वह उसकी हत्या का पश्चात्ताप नहीं करेगा तब तक उसके हारियान सुखी नहीं रहेंगे। तब देवता लक्ष्मी नारायण ने उस पहाड़ी पर जाकर उसकी आत्मा की शांति के लिए प्रतिवर्ष बलि देनी आरम्भ की। अब भी उस स्थान पर जप करवाया जाता है और वहाँ एक पिंडी की स्थापना की गई है।

लक्ष्मी नारायण

गाँव : धाऊगी, **तहसील :** सैंज।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : धाऊगी।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से कोट शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर अति प्राचीन है। चारों ओर को ढलवाँ इसकी छत पर स्लेटें बिछी हैं और शिखर पर 'बदोर' स्थापित है। मुख्यद्वार पर सुन्दर उत्कीर्णन हुआ है।

शाखा मंदिर : थाच गहर।

अधिकार क्षेत्र : धाऊगी नाल से बलियुल तक का क्षेत्र।

प्रबंध : कारदार अधीनस्थ देव-परम्परा के अनुसार समिति।

न्याय प्रणाली : मरोहड़ी, गूर व देवरथ द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन धूप-दीप से।

रथ : अंगू या चीऊं नामक वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ, जिसे उठाने के लिए दो अर्गलायें प्रयोग में लाई जाती हैं। इसके चारों ओर विभिन्न रंगों के रेशमी वस्त्र लटकाए जाते हैं और शीर्ष पर चुरू नामक जानवर की पूँछ के बाल लगाने के उपरांत टोप पहनाया जाता है। सबसे ऊपर स्वर्ण छत्र लगाया जाता है। रथ के मध्य भाग में देवता के मोहरे सजाए जाते हैं।

मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा सात स्वर्ण के।
मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को देवता तीन मास के अंतराल के बाद अपने देवालय में आता है। देवता को रथ पर सजाकर सौह में लाया जाता है। गूर भारथा सुनाकर बर्शोहा देता है। फाल्गुन पूर्णिमा को *होली* का आयोजन, जिसमें एक व्यक्ति हनुमान का रूप धारण कर उपस्थित लोगों को रंगों से रंगता है। लोग नाटी डालते हुए एक-दूसरे पर अबीर-गुलाल फेंकते हैं। इसी मास में बुरी आत्माओं को भगाने के उद्देश्य से *फागली* मेला लगता है, जिसमें उन्हें अश्लील गालियाँ दी जाती हैं।

वैशाख मास की संक्रांति को *वैशाखी* के दिन जंगल से ब्रास के फूल लाकर देवता को चढ़ाए जाते हैं। दिन में देव कार्यवाही होती है। इस दिन दूसरे देवता भी आमंत्रित होते हैं। आषाढ़ मास में जब जौ की फसल आती है तो उसके कुछ पौधे उखाड़ कर उनकी विधिवत् पूजा कर के उन्हें देव-मंदिर के मुख्य द्वार पर गोबर की सहायता से लगाया जाता है। हारियान देवता को बारी-बारी से अपने घर ले जाते हैं और भेंट अर्पित करते हैं।

श्रावण मास में *ब्रह्मभोज* का आयोजन होता है। इसमें सभी हारियान को खीर और फुलके परोसे जाते हैं। आश्विन संक्रांति को *शौईरी* मेला लगता है। इससे पहले दिन देव प्रांगण में जागरा (अलाव) जलाकर रात भर लोग नाटी नाचते हैं। अगले दिन देवकार्यवाही होती है। शाम को देवता हारियान सहित सारे गाँव का फेरा लगाता है और लोग नए फल, फूल, अखरोट आदि देवता पर न्योछावर करते हैं। पौष मास की संक्रांति को देव कार्यवाही के पश्चात् मंदिर के कपाट तीन मास के लिए बंद हो जाते हैं।
जनश्रुति : भारथा के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में देवता अंडे के रूप में प्रकट हुआ और हस्तिनापुर में मोहरे के रूप में स्थापित हुआ। कालांतर में वह कांगड़ा, मंडी होते हुए जगतसुख (मनाली) पहुँचा। वहाँ से दयार आया और कुछ समय वहीं रहा। तत्पश्चात् भलाण, रैला, शंशर, बनाऊगी, मईल, मझाण, लपाह, शांघड़, बनोगी, कनौण गया, जहाँ उसने कई स्थानों के देवताओं से धर्म का सम्बंध बनाया। अंत में धाऊगी आकर वहाँ के लोगों को अपने चमत्कारों से प्रभावित करके उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण करने लगा। तब धमहड़ू वंश के किसी व्यक्ति ने मंदिर बनवाकर देवता की पिंडी रूप में स्थापना की। आज भी उसके गूर, कारदार और पुजारी इसी वंश से होते हैं।

लक्ष्मी नारायण

गाँव : भलाण, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान : शूराकमरू (बुशैहर)।
मंदिर एवं भंडार : भलाण।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से लकड़ी-पत्थर निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर देशज शैली में बना है। इसकी दोनों छतों पर स्लेट लगे हैं। मंदिर में चारों ओर भगवान् के चौबीस अवतारों के चित्र उत्कीर्णित हैं।

अधिकार क्षेत्र : वेकर से कंढी गलू तक।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पुजारी, भंडारी, काईथ, छठाली की समिति। कारदार की नियुक्ति ज़िलाधीश द्वारा की जाती है और अन्य सदस्यों को देवता खानदान के अनुसार चुनता है या कारदार को ही चयन करने का अधिकार दे देता है। इस कार्य में देवता के हारियान को भी विश्वास में लिया जाता है ताकि बाद में समिति पर कोई अपवाद न उठे। यह समिति कारदार की कार्यावधि तक कार्य करती है, परन्तु यदि कोई स्वेच्छा से पद छोड़ना चाहे तो उसके स्थान पर नई नियुक्ति की जाती है।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, देवरथ द्वारा, 'मरोहड़ी' डाल कर।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः पंचोपचार से पूजा करके कमलनेत्र स्तोत्र का पाठ किया जाता है और शाम के समय आरती गाई जाती है।

रथ : चिऊं या अंगू वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ, जिसे बहुमूल्य रेशमी वस्त्रों से सजाया जाता है। शीर्ष पर स्वर्ण-छत्र तथा रथ के चारों ओर मोहरे स्थापित होते हैं।

मोहरे : आठ। इनमें से मुख्य मोहरा अष्टधातु का है व अन्य स्वर्ण निर्मित हैं।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को मंदिर के पट खुलते हैं और देवता गूर के मुख से अपनी भारथा सुनाता है। वैशाख मास में *बिरशू* मेला लगता है और देवता को नवान्न चढ़ाया जाता है। भादों में *भद्र पूजा*। इस दिन हार के लोग देवता के प्रति दान देते हैं। ऐसा माना जाता है कि दान देने से दुष्ट ग्रहों की शांति होती है। आश्विन संक्रांति की पूर्व संध्या पर देवता को मंदिर 'सौह' में बिठाया जाता है और हारियान मौसमी फल-फूल और मक्की देवता को चढ़ाते हैं। एक-दूसरे को 'जूब' देते हैं और मेले का आयोजन होता है। पौष संक्रांति को देव-मंदिर के कपाट बंद हो जाते हैं। रथ पर से मोहरे तथा वस्त्र-आभूषण उतार कर संदूक में बंद कर दिए जाते हैं और जुगा (रथ का ढाँचा) को घूँघट (एक प्रकार का वस्त्र) से ढक दिया जाता है।

जनश्रुति : देवता लक्ष्मी नारायण को मानने वाले कुछ व्यक्ति कार्य की तलाश में शूराकमरू से कुल्लू जा रहे थे तो देवता का मोहरा उनमें से एक व्यक्ति के 'किरड़ू' में बैठ गया। चलते-चलते मार्ग में जब रात पड़ी तो वे एक स्थान पर ठहर गए। तभी देवता ने कहा कि वह भी उनके साथ है। उन्होंने यह सुनकर अपने किलटे में झाँका तो उन्हें मोहरा दिखाई दिया। प्रातः चलने से पहले उन्होंने उसे किलटे से बाहर निकाल दिया परन्तु शाम को देवता का मुख उन्हें पुनः किलटे में ही मिला। वे हर पड़ाव पर देवता को बाहर निकालते पर वह अगले पड़ाव में उन्हें वहीं मिलता। इस प्रकार देवता उनके साथ लड़हा का गलू, शाकटी, पूखरी, गोही खमारडा, हुर्चा, भलाण खमारडा होते हुए जौली पहुँचा जहाँ मकड़ी ने एक स्थान पर जाला लगाया हुआ था। वहाँ देवता की आज्ञा से जाले के अनुसार मंदिर का निर्माण किया गया। जौली से देवता नारायण-वन पहुँचकर वहाँ पिंडी रूप में स्थापित हुआ। वहाँ से वह भलाण गाँव पहुँचा और भलाण के मूल देवता थान से विचार-विमर्श करके उसको लौह श्रृंखला में स्थापित कर स्वयं थान देवता की सहमति से रथ पर विराजमान हुआ। जिन लोगों के किलटे में बैठकर देवता बुशैहर से भलाण पहुँचा था, वे खुटर तथा दुमच वंश के थे। अतः खुटर वंश देवता का कारदार बना और दुमच वंश धामी कहलाए।

11

12

13

14
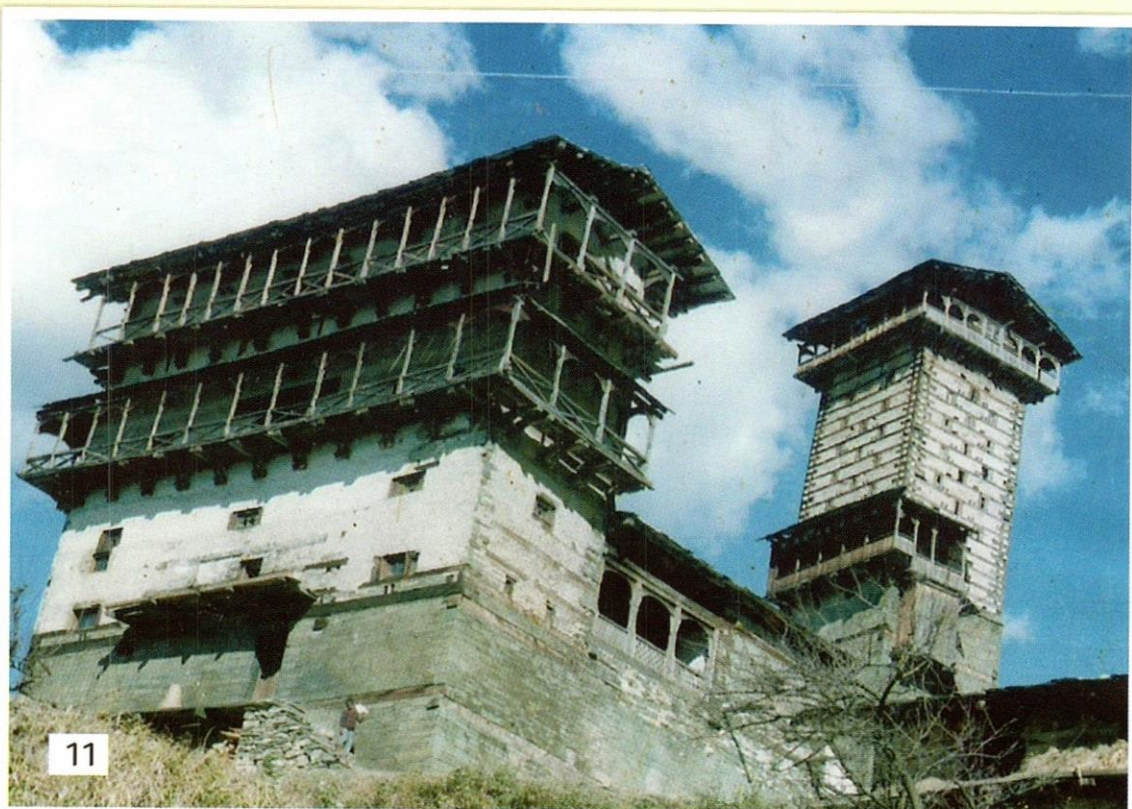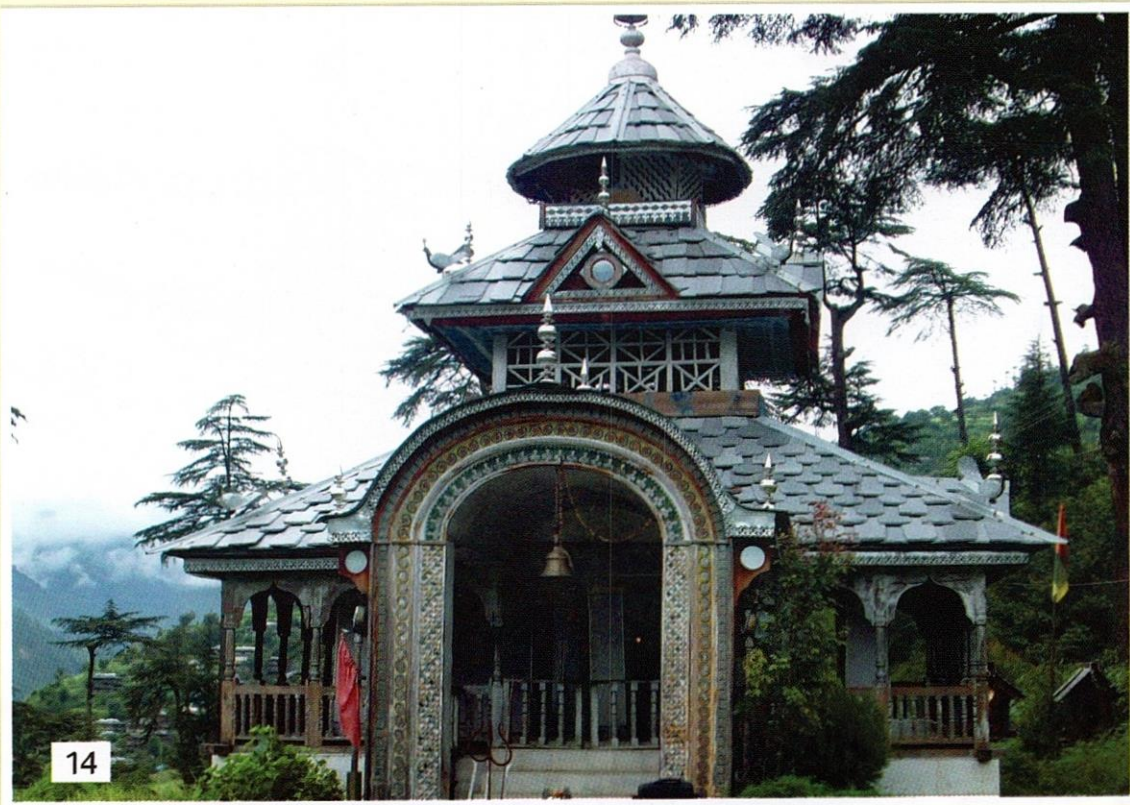
जय श्रृगां ऋषि जी महाराज

स... से:— Mrs.Pooja Saroch W/O Sh. Rajneesh Saroch ATEC COMPUTER CENTER BANJAR P.H. 01903-222514

15

फोटो फीचर : 2

10. नारायण बेह्लो 11. मुरली मनोहर चैहणी 12. मार्कण्डेय पेड़चा 13. घाट में स्थित भरयाडू देऊ एवं दुधण देवी का संयुक्त मंदिर 14. भूमासी देऊ गाड़ा गुशैणी (अलवाह) 15. सकीरणी देऊ : श्रृंगा ऋषि बागी

लक्ष्मी नारायण

गाँव : रैला, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान : रैला गाँव में नरायणा सारी नामक स्थान।
मंदिर : रैला।
भंडार : सनणी ग्राँ में श्री जैराम के घर में।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से बना मंदिर, जिसकी दूसरी
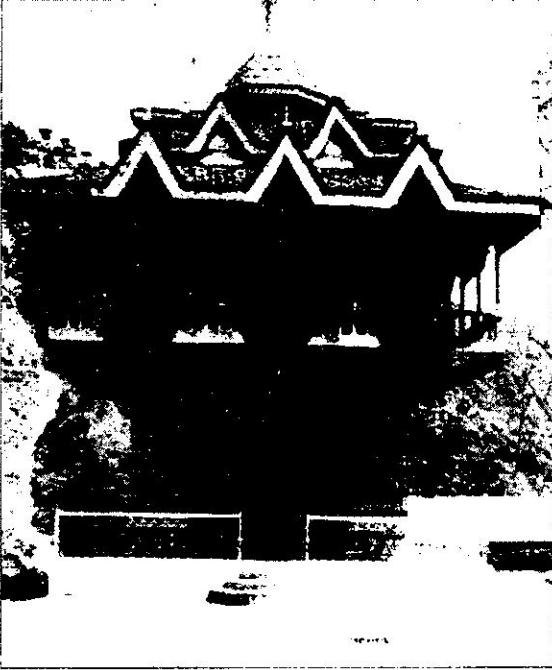
मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। इसकी डिज़ाइनदार छत पर स्लेटों का आच्छादन है। शिखरों पर कलश स्थापित हैं। मंदिर में प्रयुक्त काष्ठ पर नक्काशी हुई है।
शाखा मंदिर : चरणीग्राँ, सैंज।
अधिकार क्षेत्र : बकशाल से भूपन शारन तक।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर, देव-रथ तथा मरोहड़ी द्वारा।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से। पूजा के समय कमलनेत्र स्तोत्र तथा नाग लीला गाई जाती है।
रथ : स्वर्ण निर्मित छत्र से शोभित खड़ा रथ।
मोहरे : आठ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा शेष स्वर्ण के।
मेले-त्योहार : चैत्र संक्रांति को देवता का जन्म दिवस मनाया जाता है। इस दिन श्रद्धालुओं का ताँता लगा रहता है। ऐसा माना जाता है कि इस दिन देवता से जो कुछ भी मन्नत माँगी जाए, पूर्ण होती है। इस पर्व को एक खेत में मनाया जाता है जहाँ लक्ष्मीनारायण की सीमा लगती है। भले ही उस समय गेहूँ की फसल कटने को तैयार होती है जो लोगों के आने-जाने से तहस-नहस हो जाती है किन्तु एक-दो सप्ताह बाद फसल उसी तरह लहलहाने लगती है। वैशाख के 11 प्रविष्टे को *बिरशू* मेला, जिसमें निमंत्रण पर अन्य देवता भी सम्मिलित होते हैं। 21 से 23 बैसाख को देवता सैंज मेले में जाता है, जहाँ बहुत से देवी-देवता आए होते हैं। 9 श्रावण को रैला में मेला लगता है। आश्विन संक्रांति को *शौईरी* मेला जिसमें दिन के समय देवकार्यवाही होती है और शाम 5-6 बजे देवता अपनी हार की परिक्रमा करता है और हारियान देवता तथा देऊलुओं पर अन्न-फल-फूल-अखरोट आदि फेंकते हैं। पौष संक्रांति को देव कार्यवाही के बाद मंदिर के कपाट बंद हो जाते हैं और फाल्गुन संक्रांति को देवता पुनः अपने हारियान को दर्शन देता है। उस दिन गूर भारथा तथा बर्शोहा सुनाता है। इसके अतिरिक्त फाल्गुन तथा भादों मास में सह पूजा होती है जिसमें देवता की प्रजा अरिष्ट ग्रहों के निवारण के लिए देवता के निमित्त दान-दक्षिणा देती है।
जनश्रुति : प्रलय के बाद देवता हस्तिनापुर में प्रकट हुआ। वहाँ से काँगड़ा, मंडी होते हुए गरुड़ की सवारी पर सैंज पहुँचा। सैंज क्षेत्र में रैला गाँव के नरायणासारी स्थान पर देवता अंतर्धान होकर पिंडी रूप में स्थापित हो गया। एक बार वहाँ चरने आई किसी गाय के स्तनों से उस पिंडी पर स्वतः ही दूध की धारा निकलने लगी। गाय के साथ आए ग्वाले को यह देखकर अत्यंत आश्चर्य हुआ और घर आकर यह घटना उसने अपने पिता को सुनाई। वह गाँव के कुछ वरिष्ठ लोगों के साथ उस स्थान पर पहुँचा तो वहाँ उन्हें एक साधु दिखाई दिया।

जब वे उसके समीप गए तो उसने अपना परिचय लक्ष्मीनारायण के रूप में दिया और बताया कि वह क्षीर सागर से आया है। ऐसा कहकर वह तत्क्षण अंतर्धान हो गया। तब लोगों ने वहाँ मंदिर बनाया और श्रद्धापूर्वक देवता को पूजने लगे।

वीरनाथ

गाँव : हुरला, **तहसील** : सैंज।
मूल स्थान : थाच माशण।
मंदिर एवं भंडार : हुरला।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से पैगोड़ा शैली में निर्मित त्रिछतीय मंदिर, जिसकी छतें स्लेटों से ढकी हैं। भंडार पहले कारदार के घर में ही था परन्तु दो वर्ष पूर्व काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में दो मंज़िल के भंडार का निर्माण किया गया है, जिसकी चारों ओर को ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है।
अधिकार क्षेत्र : ग्राम पंचायत हुरला के समस्त गाँव।
प्रबंध : कारदार, भंडारी, पुजारी और जठाली की समिति।
न्याय प्रणाली : देवता से पूछ डालकर।
पूजा : प्रातः पंचोपचार पूर्वक और शाम के समय आरती।
रथ : कलशयुक्त गोल शीर्ष वाला खड़ा रथ, जिसे अंगाह वृक्ष की लकड़ी से बनाया जाता है।
मोहरे : आठ। दो स्वर्ण, चार रजत तथा दो अष्टधातु के।
मेले-त्योहार : चैत्र संक्रांति को देवता का *जन्मदिन* मनाया जाता है। इस दिन मेला लगता है और स्त्री-पुरुष मिलकर तरासा (नृत्य विशेष) करते हैं। चार वैशाख को *भिठ* नाम से मेला लगता है। लोग किसी बेल से एक गोल चक्र बनाते हैं, जिस पर जंगल से लाए गए ब्रास के फूलों को लगाकर रथ का आकार दिया जाता है। एक व्यक्ति इसे सिर पर रखकर मंदिर के प्रांगण में तीन चक्कर लगाता है। ऊपरली बेहड़ और निचली बेहड़ के रूप में गाँव दो दलों में बँटकर उसे लेने के लिए झपट पड़ते हैं। जो दल इसे छीनने में सफल हो जाता है उसकी जीत मानी जाती है।
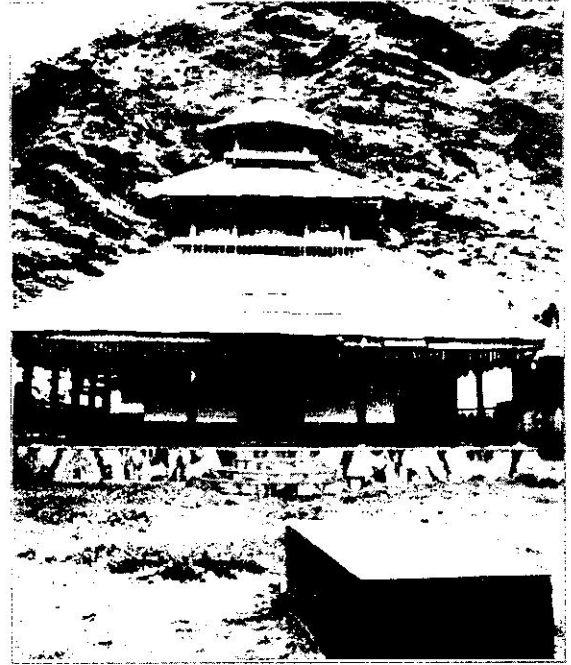
जनश्रुति : वीरनाथ को वीरभद्र का रूप माना जाता है, जिसकी उत्पत्ति शिवजी की जटाओं से हुई थी। कहते हैं कि कुल्लू जनपद की लग घाटी के गाँव 'थाच माशण' में एक साधु रहता था। उसके पास एक छड़ी थी जिसमें से चलते समय छन-छन की ध्वनि निकलती थी। गाँव वाले सोचते थे कि साधु ने इसमें धन छुपा कर रखा है। एक रात किसी ने धन के लालच में उसकी हत्या कर दी परन्तु छड़ी में से कुछ न निकला। कालांतर में कुल्लू के किसी राजा को स्वप्न हुआ कि थाच माशण में कोई देवता है। उसकी खोज करने पर वहाँ एक पिण्डी मिली जिसे राजा अपने साथ ले आया और ढालपुर मैदान में उसकी स्थापना करके वहाँ मंदिर का निर्माण करवाया।

गाँव हुरला में इसकी स्थापना के सम्बंध में माना जाता है कि थाच माशण से किसी व्यक्ति को एक मोहरा मिला जिसे वह हुरला में ले आया। किसी मियाँ की पत्नी उसकी पूजा करने लगी। समय-समय पर देवता उसे चमत्कार दिखाता रहा। उसने इसकी चर्चा गाँववालों से

की तो वे भी उससे प्रभावित होकर उसे पूजने लगे और अपना इष्ट मानने लगे। कालान्तर में गाँव के एक व्यक्ति मियाँ चनण सिंह ने देवता के लिए रथ और मंदिर बनवाया। देवता वीरनाथ को गौहरी देऊ के नाम से भी जाना जाता है।

शंगचूल महादेव

गाँव : शाँघड़, **तहसील** : सैंज।

मूल स्थान एवं मंदिर : पटाहरा।

स्थापत्य : कोट शैली में काष्ठ-प्रस्तर निर्मित चार मंज़िल का मंदिर, जिसकी दूसरी व तीसरी मंज़िल में एक ओर तथा चौथी मंज़िल में चौतरफा लकड़ी का बरामदा बना है। चारों ओर को ढलवाँ छत पर स्लेट लगे हैं।

शाखा मंदिर : शिला देहुरा, नगांडी।

अधिकार क्षेत्र : शाँघड़ पंचायत के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार तथा पाँच पालसरों की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से, 'मलोही' द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ जिसके शीर्ष पर गुंबद आकार का छत्र शोभायमान है।

मोहरे : आठ, जो रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं।

मेले-त्योहार : 2 फाल्गुन को *फागली*, 8 फाल्गुन को बड़ा त्योहार *पड़छनी*, चैत्र मास के *नवरात्र*, वैशाख संक्रांति से पहले दिन *हूम*, संक्रांति वाले दिन से देवकार्य आरम्भ, 7 वैशाख से देवता अपनी 'हार' की फेरी पर जाता है। 15 वैशाख को ओलावृष्टि निवारण दिवस, 16 प्रविष्टे को *देहुरी* मेला, ज्येष्ठ संक्रांति को *योगिनी पूजन*, आषाढ़ के 3-4 प्रविष्टे को *शाढ़नू* मेला, रक्षाबंधन को *व्यास पूजा*, भादों में कृष्ण जन्माष्टमी वाले दिन *प्रीतिभोज*, आश्विन संक्रांति से पूर्व सात व्रत तथा संक्रांति वाले दिन देवता का *जन्मोत्सव*, जिसमें देवता सब भक्तों की मनोकामनाएँ पूर्ण करता है। आश्विन के दो-तीन प्रविष्टे को *शौईरी* मेला, इसी मास के नवरात्रों के बाद देवता कुल्लू दशहरा
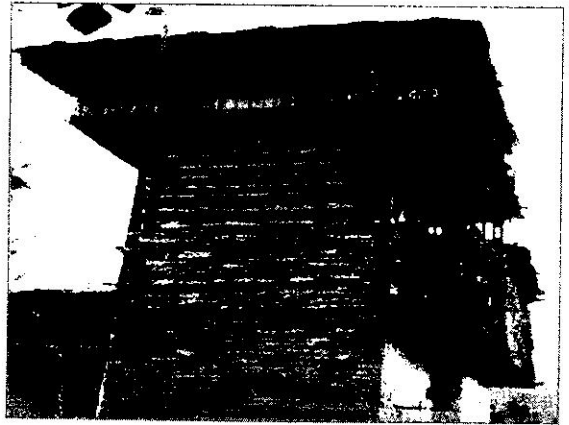
के लिए जाता है। पौष की संक्रांति को देवता 'नरोल' में चला जाता है।

जनश्रुति : शंगचूल महादेव बुशहर के राजवंश का कुल देवता है। सन् 1532 ई. में किन्नौर के कामरू किला में देवता के समक्ष राजा बहादुर सिंह का जब राजतिलक हुआ तो उसी रात उसे स्वप्न में देवता ने आदेश दिया कि वह शाँघड़ नामक गाँव में जाए और वहाँ के नेगी रामचंद से मिलकर उसके कहे अनुसार करे। उधर नेगी को भी स्वप्न हुआ कि जब राजा शाँघड़ पहुँचेगा तो देवता सर्प के रूप में दृष्टांत देगा, फिर नेगी उस देवभूमि के नियमों को राजा से कागज़ात पर दर्ज़ करवा ले। देवता की आज्ञा से राजा शाँघड़ की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर वह नेगी व प्रजा से बातें करने लगा। उसी समय वहाँ एक विशाल सर्प प्रकट हुआ, जिससे डरकर राजा व अन्य लोग भागने लगे। परन्तु नेगी ने उन्हें समझाया कि यह शंगचूल महादेव है, इससे डरने की आवश्यकता नहीं है। राजा ने कहा कि यदि यह तत्काल यहाँ लुप्त हो जाए तो देवता जो चाहता है वह वैसा ही करेगा। राजा के ऐसा कहते ही वह सर्प अंतर्धान हो गया। तब नेगी ने राजा को बताया कि इस क्षेत्र की सारी भूमि देवताओं, ब्राह्मणों और गौओं की है और यहाँ सारे नियम शंगचूल महादेव द्वारा निर्धारित हैं। तब राजा ने वहाँ की सारी भूमि देवताओं के नाम लिखित रूप में कर दी। 130 बीघा का छाना हुआ भाग, जिसमें एक भी पत्थर दिखाई नहीं देता, चरागाह के रूप में रखा

और 130 बीघा भूमि ब्राह्मणों को दी। देवता ने राजा साहिब के लिए थोड़ा सा स्थान छोड़ा जो आज भी *राजा का सिंहासन* नाम से विख्यात है।

शेषनाग

गाँव : भलाण, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान एवं मंदिर : सरा आगे।
भंडार : गाँव मौऊल।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से देशज शैली में बना मंदिर,

जिसके काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है। समीप ही प्राकृतिक रूप से प्रस्फुटित एक सरोवर है।
शाखा मंदिर : मौऊल।
अधिकार क्षेत्र : लारजी से कंडी तथा दलासणी से तांदी तक।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, मरोहड़ी विधि से।
पूजा : देवता की पूजा वराधी वीर भलाण के पुजारी द्वारा प्रतिदिन पंचोपचारपूर्वक की जाती है और नागलीला का पाठ किया जाता है।
रथ : नहीं है। देवता की स्थापना सुखपाल में है।
मोहरे : नहीं हैं।
मेले-त्योहार : देवता शेषनाग के पास लोग अपनी मनोकामनाएँ लेकर आते हैं। यहाँ पहुँचने से पहले वराधी वीर के गूर और पुजारी को सूचित कर साथ लाना पड़ता है, क्योंकि शेषनाग के अपने गूर-पुजारी नहीं हैं। प्रति तीसरे वर्ष 6 प्रविष्टे वैशाख को सचाणी और खनारगी के रिशा गर्गाचार्य तथा दलासणी की श्यामा काली जोगिनी की पूजा के लिए सरा आगे आते हैं। उस समय यहाँ खूब रौनक रहती है। *देऊखेल* होती है। भंडारा लगता है। शाम के समय सभी अपने-अपने देवालय को लौटते हैं। 15 प्रविष्टे वैशाख को भलाण के देवता लक्ष्मीनारायण तथा बराधी वीर जोगिनी पूजन हेतु इस स्थान पर आते हैं। देवकार्य पूर्ण होने पर भंडारा लगता है, जिसका एक अलग ही रूप है। यहाँ कुछ दल बने होते हैं। इन्हें कुंड कहा जाता है। ये अपनी-अपनी रसोई तैयार करते हैं। फिर उपस्थित मेहमानों से एक-एक वस्तु, यथा-रूमाल, घड़ी, कंघी, फोन आदि माँग कर देवता का 'मेहता' उन वस्तुओं को गिनता है और सभी दलों में बराबर-बरावर बाँट देता है। इस प्रक्रिया को खींड डालना कहते हैं। जिसकी वस्तु जिस दल के पास जाती है, वह वहीं भोजन करता है। भोजनोपरांत देवकार्यवाही की जाती है। भलाण के देवता बराधी वीर और लक्ष्मीनारायण शेषनाग के मंदिर व सर की सात परिक्रमा करते हैं, तत्पश्चात् अपने देवालयों को लौटते हैं। शेषनाग की आज्ञा से कभी-कभी यहाँ तीन या पाँच दिन का जप-हवन करवाया जाता है।
जनश्रुति : कदाचित् भलाण और खनारगी गाँवों के मध्य ऊँचे शिखर पर स्थित एक मनोरम स्थान पर बने प्राकृतिक सरोवर में से शेषनाग प्रकट हुआ। भलाण गाँव के किसी व्यक्ति को स्वप्न में दर्शन देकर उसने बताया कि वह सरा आगे नामक स्थान पर प्रादुर्भूत हुआ है। प्रातः उस व्यक्ति ने गाँववालों को अपने स्वप्न की बात बताई। वे सभी देवता द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर गए तो वहाँ उन्हें शेषनाग के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। उनके देखते-देखते ही देवता अदृश्य हो गया। तब लोगों ने उस स्थान पर देवता की स्थापना की और उसे पूजना आरम्भ किया। बाद में वहाँ मंदिर का निर्माण किया गया।

श्यामा काली

गाँव : दलासणी, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : दलासणी।
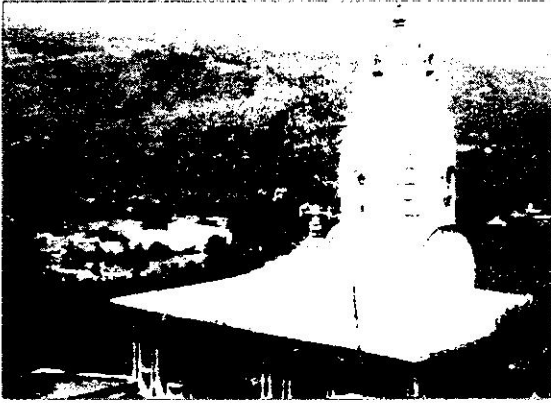
स्थापत्य : पुरातन मंदिर को उखाड़ कर उसके स्थान पर सीमेंट-बजरी से शिखर शैली के मंदिर का निर्माण किया गया है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव रहतर, दलासणी, श्याह, भिहाली, दाड़ी, भौरशा, पचैहू, भढैउली, थरास, ककड़ा, शोगी, दलौण, फलाणा।

प्रबंध : कारदार, पुजारी, भंडारी, जठाली आदि की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता से पूछ डालकर।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं। प्रातः की पूजा में काली स्तोत्र का पाठ होता है। नियमित रूप से भोग लगाया जाता है।

रथ : चीमू नामक वृक्ष की लकड़ी से बना खड़ा रथ, जिसे दो अर्गलाओं की सहायता से दो व्यक्ति उठाते हैं। रथ के शीर्ष पर छत्र शोभित होता है।

मोहरे : नौ। पाँच स्वर्ण, दो अष्टधातु तथा दो रजत के हैं, जिन्हें रथ के चारों ओर सजाया जाता है।

मेले-त्योहार : मकर संक्रांति को *दलासणी माघ* नाम से मेला लगता है। इसमें गाँव वाले दो भागों में बँटकर मंदिर प्रांगण में जले जागरे (अलाव) में से जलती हुई लड़कियाँ उठाकर एक-दूसरे पर फेंकते हैं। 4 आश्विन को *जेहरा जातर,* जिसमें देवी का रथ थरास गाँव में देवता जेहरा की 'सौह' में जाता है, जहाँ मेला लगता है। भादों मास में मंदिर में *होम* का आयोजन होता है।

जनश्रुति : दलासणी गाँव का जोगराम नाम का एक योद्धा था। वह देवी श्यामा काली का परम भक्त था। उसने कुल्लू के राजा विधि सिंह की युद्ध में सहायता की थी। अतः राजा ने प्रसन्न होकर दलासणी में मंदिर का निर्माण करवा कर वहाँ देवी की मूर्ति की स्थापना की। देवी साक्षात् शक्तिस्वरूपा है। इससे जो भी मनौती की जाती है, वह अवश्य पूरी होती है।

सरू नाग

गाँव : बरशाँघड़, **तहसील :** सैंज।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बरशाँघड़।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से देशज शैली में बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है और शिखर पर वदोर स्थापित है।

शाखा मंदिर : केऊली वूण।

अधिकार क्षेत्र : बरशाँघड़ गाँव।

प्रबंध : कारदार, भंडारी तथा गूर की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं गुग्गुल धूप से।

रथ : दो अर्गलाओं युक्त खड़ा रथ, जिसके शिखर पर छत्र शोभित है।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : शंगचूल महादेव का सहायक देवता होने के कारण उनके सभी मेले-त्योहारों में भाग लेता है। इसका अपना कोई विशेष मेला या त्योहार नहीं है।

जनश्रुति : सरू नाग देवता शंगचूल महादेव शाँघड़ का सेवक है। यह उसके साथ सदा सांकल रूप में चलता है, परन्तु दशहरे में तथा किसी की मन्नत पूर्ण होने पर वुलाए जाने की दशा में रथ और सांकल दोनों ही जाते हैं।

पुस्तक में आए स्थानिक सांस्कृतिक शब्दों का परिचय

काईथ : यह देवता की प्रबंध समिति का सचिव होता है। देव कार्य, नियम, यज्ञादि की आमदनी इत्यादि का लेखा-जोखा एवं रिकॉर्ड रखना इसका कार्य होता है।

कारदार : यह देवता की प्रबंध समिति का अध्यक्ष होता है। उसी के निदेशन एवं नियंत्रण में देवकार्य का संचालन होता है। देवता की चल-अचल सम्पत्ति का मालिकाना हक कारदार का ही होता है तथा इनके रख-रखाव एवं सुरक्षा की ज़िम्मेदारी भी कारदार की होती है। यह पद खानदानी होता है। मुख्य देवताओं के कारदारों की नियुक्ति ज़िलाधीश द्वारा की जाती है, लेकिन मुख्य देवताओं के सेवक देवता के कारदार की नियुक्ति हारियान द्वारा सर्वसम्मति से की जाती है।

क्रोंशा : मंदिर की छत के शिखर पर लगा देवदार का बड़ा शहतीर। इसे छत पर विशेष पूजन और बलि आदि के अनुष्ठान के साथ स्थापित किया जाता है। इसके पुराने होने या सड़ जाने की स्थिति में जब इसे पुनः बदला जाता है तो बकरे की बलि देकर ही चढ़ाया जाता है।

गांठीदार : यह कोषाध्यक्ष होता है। देवता की आय-व्यय का लेखा-जोखा इसी के पास होता है।

चानणी : देवता का बड़ा तंबू। देवता जब यात्रा पर निकलते हैं तो अपने साथ चानणी भी ले जाते हैं। पड़ाव में जहाँ देवमंदिर नहीं होते वहाँ देवता इसी में ठहरते हैं।

जलेब : बाजे-गाजे के साथ निकाली गई देवता की शोभा यात्रा।

जेलता : देवता की प्रबंध समिति का एक सदस्य। इसका कार्य देवता की जलेब (शोभा यात्रा) हेतु वाद्ययंत्रों की व्यवस्था करना, देव संदेश को यथा स्थान पहुँचाना, देवकार्य हेतु बैठक के लिए हारियान को सूचित करना आदि होता है।

ज़ौरे : जरई। किसी खुले पात्र में मिट्टी-गोबर आदि बिछा कर इसमें जौ बीज कर इसे अंधेरे स्थान में रखा जाता है। इससे उसमें पीले रंग की जरई उग आती है, जिसे स्थानीय बोली में ज़ौरे कहते हैं। इन्हें उखाड़ कर इसकी फूल की तरह गुच्छियाँ बनाकर देवरथ में चढ़ाया जाता है। ये सोने के बाल की भाँति रथ पर शोभित होते हैं।

झूणा : झूण एक विशेष देव-धुन है जो देवता के गूर या चेला को उभरने की प्रक्रिया में उत्प्रेरित करती है। इसमें सबसे पहले वादक देवता के मुख्य वाद्ययंत्र ढौंसू (छोटी ढोलक) के बायें पूड़े पर बायें हाथ से तेज़ थापियाँ देता है, तुरंत बाद दायें हाथ से दायें पूड़े पर छड़ी द्वारा एक के बाद दूसरी पाँच-सात क्रमिक चोटें लगाता है। क्षण भर के अंतराल में ऐसा वह तीन बार करता है। अंतिम बार की चोट पर ढोल और नगारे पर भी एक साथ चोटें पड़ती हैं और द्रुत गति से तीन-चार मिनट तक धुन बजती रहती है। इस धुन के प्रारम्भ होने से पहले ही गूर विशेष स्थिति में बैठता है। यदि देवता का रथ कंधे पर हो तो वह रथ की दोनों ज़माणियों (अर्गलाओं) के मुखों पर अपने हाथ रख देता है और ध्यान लगाकर देवता को ताकता रहता है। यदि देवता बैठा हो या उसका रथ कहीं दूर हो तो गूर अपने सामने घोंडी (घंटी), धड़छ (धूप पात्र) रखता है, जिसमें धूप जल रहा होता है। वह अपने दोनों हाथ धड़छ पर रखता है और देवता का ध्यान करता है। तीन-चार मिनट की पहली झूण पर ही देवता के गूर को उभर जाना चाहिए गूर में देवता की आत्मा प्रविष्ट होनी चाहिए, उसके शरीर में कम्पन आनी चाहिए; उसके सिर से टोपी गिर जानी चाहिए, लम्बे बाल बिखर कर कंधे पर आ जाने चाहिएँ और उसे बोलना आरम्भ कर देना चाहिए। यदि वह नहीं उभरता तो धुन दोबारा बजाई जाती है। यदि

तीन-चार बार झूण देने पर गूर नहीं उभरता तो समझा जाता है कि या तो पूछ का समय अनुकूल नहीं है या फिर कोई व्यवधान है। तब पूछ को कुछ समय के लिए छोड़ दिया जाता है, क्योंकि देवता उसकी आज्ञा नहीं दे रहा है।

दरोगा : दरोगों का चयन हारियान द्वारा किया जाता है। देव कार्य हेतु सामान खरीदना व खाद्य सामग्री तैयार करने एवं बाँटने की व्यवस्था करना इनका कार्य है।

धामी : दे. मधेऊलू।

नरोल : गुप्त निवास स्थल। पौष मास की संक्रांति को देवी-देवता को नरोल पड़ता है। तब देवाज्ञा से रथ से मुख-मोहरे, आभूषण तथा वस्त्रादि उतार कर गुप्त भंडार में रखे जाते हैं और खाली रथ पर पर्दा डाल दिया जाता है। यह पर्दा फाल्गुन मास की संक्रांति को खुलता है। तब देवता भारथा सुनाता है, जिसे नरोल खुलना कहते हैं। नरोल पड़ने के पीछे लोक धारणा है कि जब भगवान् विष्णु ने वामन अवतार लेकर राजा बलि को पाताल लोक में भेज दिया तो भगवान ने बलि को वरदान दिया कि उसके दरबार में अट्ठासी हज़ार देवी-देवता, ऋषि-मुनि दो महीने के लिए आकर पाताल लोक को स्वर्ग लोक बनाएँगे। इस उद्देश्य से देवी-देवता दो महीने पाताल में वास करते हैं।

पगल : जब देवता को गाँववालों द्वारा सामूहिक रूप से आमंत्रित किया जाता है या फिर वह फेरे पर किसी गाँव में जाता है तो देवता के साथ जितने देऊलू (व्यक्ति) आते हैं, उन्हें गाँव के परिवारों में बाँटा जाता है। परम्परा अनुसार इन्हें बाँटने की एक विधि है, जिसमें गाँव का मुखिया देऊलुओं से एक-एक कोई भी वस्तु माँगता है। तब वह इनमें से बारी-बारी एक वस्तु हाथ में लेकर उसके मालिक को बुलाता है और बताता है कि वह आज गाँव के अमुक परिवार का मेहमान होगा। इस तरह से सभी देऊलुओं को गाँव के परिवारों में बाँटा जाता है। इसे देवता का आदेश समझा जाता है और हर देऊलू को इसका पालन करना पड़ता है। तब उस गाँव का हर परिवार अपने हिस्से में आए देऊलुओं की खूब आव-भगत करता है।

पड़ियाई : काष्ठ स्तम्भ। देवदार वृक्ष को काट-तराश कर तैयार किए गए इस स्तम्भ को वर्ष में एक बार, विशेषकर वैशाख संक्रांति या किसी विशेष पर्व पर मंदिर परिसर में भूमि में गाड़ दिया जाता है। इसे विधिवत् पूजन करके स्तम्भित किया जाता है।

परोल् : देवता के मंदिर का मुख्य द्वार जो काष्ठ निर्मित होता है। चाँदी या पीतल के पतरों पर देवी-देवताओं की लीलाओं से सम्बंधित चित्र उत्कीर्णित कर इन्हें इस द्वार पर मढ़ा जाता है।

पाची : बलि देने से पूर्व देवाज्ञा लेना आवश्यक होता है। इसके लिए सर्वप्रथम बलि पशु के पाँवों को पानी से पूज कर उस पर पवित्र जल छिड़का जाता है। उसके माथे पर कुंकुम, अक्षत और पुष्प लगाए जाते हैं। इस सामग्री को उसके कान में भी डाला जाता है। इसे *पाची पाणा* कहते हैं। तब गूर या पुजारी उस पर जल छिड़कता है। ऐसा करने पर यदि पशु अपना पूरा बदन हिलाता है तो समझा जाता है कि देवता ने बलि को स्वीकार किया और यदि केवल सिर हिलाता है तो माना जाता है कि देवता ने अभी बलि स्वीकार नहीं की। ऐसी स्थिति में देवता से अर्ज़ करके देवता को मनाया जाता है।

बढ़ : कई गाँवों के समूह को बढ़ कहते हैं।

बढ़ु कारदार : देवता की प्रबंध समिति में तीन महते जनता द्वारा मनोनीत किए जाते हैं, जिन्हें बढ़ु कारदार कहते हैं। इनका कार्य अपने 'बढ़' के हारियान से देवकार्य हेतु चंदा इकट्ठा करना तथा देवकार्य का सुचारू रूप से संचालन करना है।

बांबल : चुरू गाय की पूँछ के बाल जो देव रथ के शीश पर लगते हैं।

भिठ : एक बेल को फूलों से सजा कर पालकी का-सा रूप देते हैं, जिसे भिठ कहते हैं। इसे भिठ मेले में देव मंदिर के प्राँगण में लाकर देवता की पालकी के पास रखा जाता है। तब लोग दो दलों में बंटकर उसे अपनी-अपनी ओर खींचते हैं और जो इसे अपने कब्ज़े में कर लेता है, उसे

विजयी माना जाता है। वह उसे डेहरे के ऊपर फेंकता है। उसके बाद मेला आरंभ होता है। भिठ को ध्वनि भेद से विठ भी कहते हैं।

मधेऊल : यह देवता का स्थायी मंदिर होता है। इसमें सजा-सजाया देवरथ रखा जाता है। यह प्रायः साढ़े तीन मंज़िल का भवन होता है। इसमें प्रवेश द्वार केवल धरातल मंज़िल से ही होता है। इसकी धरातल मंज़िल को खुड़, उससे ऊपर की मंज़िल को फड़ और फड़ से ऊपर को वीह कहा जाता है। सबसे ऊपर की आधी मंज़िल को टाला कहते हैं। मधेऊल की देख-रेख का कार्य मधेऊलू करता है। मधेऊल करता है। मधेऊल को कोठी भी कहते हैं। यहाँ श्रद्धालु जब कभी दर्शन करने आते हैं। इनकी छोटी-मोटी समस्याओं का समाधान तथा शादी-विवाह, यज्ञ-हवन आदि शुभ कार्य का दिन-मुहूर्त मधेऊलू यहीं निकालता है।

मधेऊलू : यह 'मधेऊल' का संरक्षक होता है और मधेऊल में पूजा का कार्य भी यही करता है। देवी-देवता के गहने व परिधान इसी के पास रहते हैं और यह उक्त सम्पत्ति का उत्तरदायी होता है। मधेऊल में श्रद्धालुओं द्वारा जो मन्नत चढ़ाई जाती है, उस पर मधेऊलू का ही अधिकार होता है।

मरोहड़ी : देव न्याय की एक विधि। इसमें चावल या गेहूँ के तीन दानों में प्रश्न का उत्तर ध्याकर प्रश्नकर्ता इन्हें त्रिभुजाकार या सीधी रेखा में दूर-दूर रखता है। एक अन्य व्यक्ति, गूर या पुजारी जो इस ओर पीठ करके बैठा होता है, तब सामने होकर इनमें से एक दाने को हाथ लगाता है। यही देवता का उत्तर माना जाता है।

मिटना : देवशक्ति का संचरण होने पर गूर के शरीर में कम्पन होता है। वह पूरी गम्भीरता और एकाग्रता के साथ देवशक्ति को आत्मसात् करता है। इसे 'मिटना' कहते हैं। लोगों के कष्ट, दुःख, बीमारी आदि की समस्याओं को सुनकर उनका समाधान गूर इसी अवस्था में बताता है।

मुलीमुख : देवता का मुख्य मोहरा जो मूल रूप में प्रकट हुआ हो। ऐसी मान्यता है कि इसमें देवी-देवता की आत्मा तथा सभी शक्तियाँ निहित होती हैं।

लाडू डालना : जटिल समस्याओं के समाधान के लिए देवता से प्रश्न पूछने की एक विधि। इस प्रणाली में देवरथ के सामने गोबर के लड्डू बनाए जाते हैं। इनमें से एक में जौ और दूसरे में फूल डाले जाते हैं तथा तीसरा खाली रखा जाता है। फिर इन्हें थाली या पाथे में डालकर घुमाया जाता है और इसे देवरथ के सामने उलटा कर दिया जाता है। प्रश्नानुसार जो लड्डू कतार से अलग निकलता है, उसी में देवता का फैसला निहित होता है। कभी-कभी देव रथ को कंधे पर उठाकर भी प्रश्न पूछा जाता है। इस विधि में छठाली इन लड्डुओं को एक सीधी रेखा में दूर-दूर रखता है। तब देव रथ को कंधे पर उठाया जाता है। रथ जिस लड्डू के पास रुक कर थोड़ा झुक जाता है, वही देवता का उत्तर माना जाता है।

शीव : देवरथ का वह भाग जहाँ चुरू के बाल लगते हैं। इससे ऊपर टोप और टोप पर छत्र लगता है।

शेष : देवता आशीर्वाद स्वरूप श्रद्धालुओं को जो अक्षत, पुष्प आदि देता है, उसे शेष कहते हैं।

सौह : देव-प्रांगण। एक तरह का खुला मैदान, जहाँ मेले के दौरान देवता के रथ को नचाया जाता है। यहाँ मेले में आए लोग बड़ी संख्या में चारों ओर एकत्रित होकर गाते-नाचते हैं।

हीठ : देवता से प्रश्न पूछने की एक प्रणाली। इसमें रथ को कंधे पर उठाया जाता है और सम्भाव्य उत्तर की तीन पर्चियाँ बना कर कुछ-कुछ दूरी पर पत्थर के नीचे दबा दी जाती है। तब देव रथ इनमें से एक पर्ची के पास जाकर झुक जाता है। देवता की ओर से उस पर्ची में लिखा उत्तर सही माना जाता है।

इसकी दूसरी विधि के अनुसार देवता के कम से कम तीन कारकुन प्रश्न का उत्तर दिशाओं में निर्धारित करते हैं और इस बात को गुप्त रखा जाता है। तब इन कारकुनों के अतिरिक्त अन्य दो व्यक्ति देवरथ को कंधे पर उठाते हैं तो देवता स्वयं जिस दिशा में जाता है उस दिशा में निर्धारित उत्तर सही माना जाता है।

कुल्लू ज़िला के बंजार-सैंज के देवी-देवताओं की भू-सम्पत्ति

बंजार खंड

क्रम	देवता का नाम		भू-सम्पत्ति
1.	ईश्वरी महादेव, पलाहच	-	लगभग 1 बीघा।
2.	करथ नाग, कंढा	-	लगभग 30 बीघा।
3.	चौरासी सिद्ध, घाट	-	लगभग 100 बीघा।
4.	छमाहूँ नाग, बड़ाग्राँ	-	पहले देवता के पास 390 बीघा भूमि थी, जिसमें से 350 बीघा मुज़ारों के नाम लग गई है और देवता के पास केवल 40 बीघा भूमि रह गई है जिसमें तीन बागीचे लगाए गए हैं।
5.	जगथम, बागी कशाड़ी	-	लगभग 1 बीघा।
6.	त्रिपुर बाला सुंदरी व मार्कण्डेय ऋषि, बलागाड़	-	पहले देवता के नाम काफी भूमि थी परन्तु 1952-53 के भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत मुज़ारों में आवंटित हो जाने के कारण अब केवल 4 बीघा 3 बिस्वा भूमि ही देवता के नाम रह गई है।
7.	पराशर ऋषि, लौल	-	लगभग 6) बीघा भूमि।
8.	ब्रह्म विठ, शाक्टी	-	लगभग 2 बीघा।
9.	मनु ऋषि, धारा देहुरा	-	लगभग 10 बीघा।
10.	मनु ऋषि, सुजाड़	-	मंदिर के साथ कुछ खेत।
11.	मार्कण्डेय, मंगलौर	-	लगभग 2 बीघा।
12.	मुरली मनोहर, चैहणी	-	मंदिर परिसर में लगभग 2 बीघा भूमि।
13.	लक्ष्मी नारायण, चिपणी	-	पहले देवता के पास 20 बीघा भूमि थी जो सारी मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
14.	लक्ष्मी नारायण, चेड़ा	-	केवल) बीघा।
15.	वासुकी नाग, थाटी बीड़	-	लगभग 3 बीघा।
16.	शृंगा ऋषि, बागी	-	पहले देवता के पास 935 बीघा ज़मीन थी जिसमें से 1952-53 में 910 बीघा मुज़ारों के नाम लग गई है। अब केवल 25 बीघा भूमि देवता के नाम है।

17.	शेषनाग : जिभी देऊ, जिभी	-	पहले देवता के नाम काफी भूमि थी परन्तु मुज़ारों के नाम लग जाने के कारण अब केवल मंदिर प्रांगण और सौह की लगभग 3 बीघा भूमि ही देवता के नाम है।
18.	श्री हरि लटोड़ा, भलाग्राँ	-	लगभग 2 बीघा।
19.	सनदेव, कनौण	-	लगभग 25 बीघा।

सैंज खंड

क्रम	देवता का नाम		भू-सम्पत्ति
1.	अमल नारायण, नरौल	-	अधिनियम लागू होने से पूर्व देवता के पास 100 बीघा भूमि थी, जो काश्तकारों के पास है। अब देवता के पास केवल 1 बीघा भूमि है।
2.	आशापुरी, धलियारा	-	1952-53 में देवी के पास 150 बीघा भूमि थी जो काश्तकारों के नाम चढ़ गई है। देवी के पास अब केवल 4 बीघा भूमि तथा मंदिर सौह ही है।
3.	कपिल मुनि, बशौणा	-	देवता के पास पहले 360 बीघा भूमि थी, जिसमें से 345 बीघा मुज़ारों के नाम चढ़ गई है। शेष 12 बीघा वणी तथा 3 बीघा मंदिर व देव सौह देवता के नाम है।
4.	कमला देवी, गोही	-	पहले 125 बीघा भूमि थी, जिसमें से 60 बीघा मुज़ारों के नाम चढ़ गई है, शेष 65 बीघा देवी के पास है।
5.	च्यवन ऋषि, नज़ाँ	-	पहले 500 बीघा भूमि थी, जिसमें से 485 बीघा मुज़ारों के नाम चढ़ गई है। शेष 3 बीघा भूमि तथा 12 बीघा स्लेट की खान देवता के पास है।
6.	जनासर, रैंह	-	2 बीघा।
7.	जमलू, सीस	-	पहले देवता के पास अधिक भूमि थी परन्तु वर्तमान में केवल 2 बीघा भूमि है।
8.	जमलू, हवाई	-	3 बीघा भूमि।
9.	त्रिजुगी नारायण, दयार	-	पहले 400 बीघा भूमि थी, जिसमें से काफी भूमि मुज़ारों के नाम लग गई है। अब देवता के पास केवल 17 बीघा भूमि है।
10.	दुर्वासा ऋषि, पालगी	-	अधिनियम से पूर्व 506 बीघा भूमि थी। अब विभिन्न स्थानों पर केवल 35 बीघा भूमि देवता के नाम है।
11.	नवदुर्गा, बनोगी	-	5 बीघा भूमि।

12.	नैणा माता, सैंज	-	पहले देवी के पास 64 बीघा 15 बिस्वा भूमि थी जो सारी मुज़ारों के नाम चढ़ गई है। अब देवी के पास कोई भूमि नहीं है।
13.	पुंडीर ऋषि, दलोगी	-	पूर्व में 482 बीघा भूमि का स्वामी था। अब देवता के पास केवल 42 बीघा भूमि है, शेष मुज़ारों के नाम लग गई है।
14.	बड़ा छमाहूँ, कोटला	-	50 बीघा भूमि।
15.	ब्रह्म देवता, कनौण	-	लगभग 56 बीघा।
16.	ब्रह्मलक्ष्मी, कछैणी	-	केवल 8 बिस्वा।
17.	बराधी वीर, बनोगी	-	पहले 13 बीघा भूमि थी, जो अब मुज़ारों के नाम चढ़ गई है। देवता के पास वर्तमान में केवल 13 बिस्वा भूमि रह गई है।
18.	बराधी वीर, भलाण	-	1952-53 से पहले देवता के पास 337 बीघा भूमि थी, जिसमें से 320 बीघा मुज़ारों के नाम चढ़ गई है। देवता के पास वर्तमान में 17 बीघा भूमि है।
19.	भृगु ऋषि, आशनी	-	लगभग 3-4 बीघा, जिसका प्रबंध कारदार देखता है।
20.	मार्कण्डेय, थरास	-	पूर्व में देवता के पास 45 बीघा भूमि थी जो लगभग सारी मुज़ारों के नाम लग गई है।
21.	रघुनाथ, खणीधार	-	केवल 4 बिस्वा।
22.	रघुनाथ, गड़सा	-	14 बीघा भूमि।
23.	रघुनाथ, हुर्चा	-	पहले 82 बीघा भूमि थी परन्तु अब सारी भूमि मुज़ारों के नाम है।
24.	रींगू नाग, भूपन	-	पहले देवता के पास काफी भूमि थी, जो अब मुज़ारों के पास है। अब मात्र बणी और मंदिर सौह ही देवता के नाम है।
25.	रिशा गर्गाचार्य, खनारगी	-	लगभग 35 बीघा भूमि।
26.	रिशा गार्गाचार्य, रोट	-	केवल मंदिर सौह व थोड़ी सी भूमि।
27.	लक्ष्मीनारायण, धाऊगी	-	मंदिर सौह।
28.	लक्ष्मीनारायण, भलाण	-	पूर्व में देवता के पास लगभग 250 बीघा भूमि थी, जिसमें से 235 बीघा मुज़ारों के पास चली गई है। देवता के पास अब केवल 15 बीघा भूमि है।
29.	वीरनाथ, हुरला	-	भाटग्राँ में 1 बीघा भूमि।
30.	शंगचूल महादेव, पटाहरा	-	पहले देवता के नाम 400 बीघा भूमि थी, परन्तु 230 बीघा मुज़ारों के नाम चढ़ जाने के कारण अब 170 बीघा भूमि ही है।
31.	श्यामा काली, दलासणी	-	15 बीघा 10 बिस्वा भूमि।

कुल्लू दशहरा में भाग लेने वाले बंजार-सैंज के देवी-देवता

बंजार खंड

1.	अनंत बालूनाग, गाँव तांदी	-	सन् 1660 ई. के बाद जब कुल्लू दशहरा का आरम्भ हुआ, तभी से लक्ष्मण माने जाने वाले अनंत बालूनाग रघुनाथ जी की दाईं ओर चल कर रथ यात्रा सम्पन्न करते हैं।
2.	छमाहूँ नाग, गाँव बड़ाग्राँ।		
3.	त्रिपुर बाला सुन्दरी व मार्कण्डेय ऋषि, गाँव बलागाड़।		
4.	बुँगड़ू महादेव, गाँव चनौन।		
5.	बूढ़ी नागण, गाँव घियागी।		
6.	मार्कण्डेय, गाँव मंगलौर।		
7.	रियालू नाग, गाँव मोहनी।		
8.	लक्ष्मी नारायण, गाँव कलवारी।		
9.	लक्ष्मी नारायण, गाँव चेड़ा।		
10.	लोमश ऋषि, गाँव पेखड़ी।		
11.	वासुकी नाग, गाँव थाटी बीड़।		
12.	शृंगा ऋषि, गाँव बागी।		
13.	शेषनाग : जिभी देऊ, गाँव जिभी।		
14.	सराज़ी देऊ, गाँव बालो।		
15.	आनणू महावीर, गाँव चकुरठा	-	देवता वर्ष 2003 से दशहरा मेले में जाता है।
16.	करथ नाग, गाँव कंढा	-	प्रतिवर्ष दशहरा में सम्मिलित होता है।
17.	काली नाग, गाँव डिंगचा	-	लगभग बारह वर्ष से दशहरा मेले में जाता है।
18.	खोड़ू देऊ : महावीर, गाँव फगवाना	-	देवता की साँकल पहले बड़ा छमाहूँ के साथ दशहरा में जाती थी, परन्तु 2001 से देवता का रथ जाता है।
19.	खोड़ू देऊ, गाँव बंदल	-	वर्ष 2001 से दशहरा में जाता है।
20.	गढ़वालू देऊ, गाँव सिधवाँ	-	सन् 1966 से दशहरा में सम्मिलित होता है।
21.	गाड़ा दुर्गा, गाँव बंदल	-	प्रतिवर्ष दशहरा उत्सव में जाती है।
22.	घटोत्कच, गाँव सिधवाँ	-	वर्ष 1996 से दशहरा में जाता है।
23.	चौरासी सिद्ध, गाँव घाट	-	प्रतिवर्ष दशहरा में जाता है।

24.	दुर्गा माता : बगाण दुर्गा, गाँव तरंगाली	-	वर्ष 1988 से मेले में सम्मिलित होती है।
25.	देव छोई, गाँव बेहलो	-	कुछ समय से दशहरा में जा रहा है।
26.	देवी पजालक : पुजाली भगवती गाँव पुजाली	-	प्रतिवर्ष दशहरा में सम्मिलित होती है।
27.	नारायण, गाँव चेथर	-	वर्ष 1990 से दशहरा उत्सव में जा रहा है।
28.	पज़हारी देऊ, गाँव भूमिहाँ	-	प्रतिवर्ष दशहरा में जाता है।
29.	पटरूणू देऊ, गाँव फगवाना	-	बड़े छमाहूँ के साथ पहले देवता की साँकल जाती थी, परन्तु 1976 से देवरथ जाता है।
30.	पाँचवीर, गाँव चिपणी	-	वर्ष 2010 से मेले में जा रहा है।
31.	पाँचवीर, गाँव नणौत	-	पूर्व में लक्ष्मी नारायण के साथ देवता साँकल रूप में दशहरा में जाता था, परन्तु वर्तमान में देवता का अपना रथ जाता है।
32.	भरयाड़ू देऊ, गाँव घाट	-	1997 से देवता दशहरा में जा रहा है।
33.	भूहणी देऊ, गाँव जवाहड़	-	कुछ वर्षों से दशहरा में जा रहा है।
34.	भौइरा देऊ, गाँव बलागाड़	-	कुछ वर्षों से दशहरा में जा रहा है।
35.	लोमश ऋषि, गाँव ढियो	-	यदा-कदा जाता है।
36.	वीर, गाँव लाहुँड	-	12-13 वर्षों से दशहरा में जा रहा है।
37.	शाँघड़ी देऊ, गाँव चनौन	-	2002 से दशहरा मेले में जा रहा है।
38.	श्री हरि लटोड़ा, गाँव भलाग्राँ	-	वर्ष 2010 से कुल्लू दशहरा में जाने लगा है।

सैंज खंड

1. आशापुरी, गाँव धलियारा।
2. कमला देवी, गाँव गोही।
3. गर्गाचार्य, गाँव सचाणी।
4. गौतम ऋषि, गाँव मनिहार।
5. च्यवन ऋषि, गाँव नजाँ।
6. जनासर देऊ, गाँव रैंह।
7. जमलू, गाँव उड़सू।
8. जमलू, गाँव पाशी।
9. जमलू, गाँव श्याह।
10. जमलू, गाँव हवाई।
11. दुर्वासा ऋषि, गाँव पालगी।
12. नारद मुनि, गाँव नीणू।
13. पुंडीर ऋषि, गाँव दलोगी।
14. बड़ा छमाहूँ, गाँव दलियाड़ा (कोटला)।
15. ब्रह्म देवता, गाँव कनौण।
16. ब्रह्मलक्ष्मी, गाँव कछैणी।

17. भृगु ऋषि, गाँव आशनी।
18. मार्कण्डेय, गाँव थरास।
19. रिशा गर्गाचार्य, गाँव खनारगी।
20. रिशा गर्गाचार्य, गाँव रोट।
21. रींगू नाग, गाँव भूपन।
22. लक्ष्मी नारायण, गाँव जेष्टा।
23. लक्ष्मी नारायण, गाँव धाऊगी।
24. लक्ष्मी नारायण, गाँव भलाण।
25. लक्ष्मी नारायण, गाँव रैला।
26. वीरनाथ, गाँव हुरला।
27. शंगचूल महादेव, गाँव पटाहरा।
28. अमल नारायण, गाँव नरौल - दशहरा में यदा-कदा सम्मिलित होता है।
29. आहिड़ू महावीर, गाँव शलवाड़ - 1968-69 से दशहरा में सम्मिलित होता है।
30. कपिल मुनि, गाँव बशौणा - दशहरा में सम्मिलित होता है।
31. खोड़ू देवता, गाँव छरौण - लगभग 1968 से दशहरा में जाता है।
32. खोड़ू देवता, गाँव रैला - 1968 से दशहरा में सम्मिलित होता है।
33. जमलू, गाँव सीस - देवता वर्ष 1950 से पहले प्रतिवर्ष दशहरा में जाता था परन्तु वर्ष 1951 से 1979 तक मेले में नहीं गया। सन् 1980 के बाद लगातार दशहरा में सम्मिलित होता है।
34. त्रिजुगी नारायण, गाँव दयार - सन् 1984 से देवता दशहरा में जाता है।
35. देवती, गाँव शियाऊगी - सन् 1968 से लगातार दशहरा में जाती है।
36. नवदुर्गा, गाँव बनोगी - दशहरा में प्रतिवर्ष सम्मिलित होती है।
37. निहारगड़ू, गाँव शरण - लगभग 1968 से प्रतिवर्ष दशहरा में सम्मिलित होता है।
38. नैणा माता, गाँव सैंज - प्रतिवर्ष दशहरा में सम्मिलित होती है।
39. पंजवीर, गाँव कोटकंढी - प्रतिवर्ष दशहरा में सम्मिलित होता है।
40. पाली नाग, गाँव शरण - वर्ष 1968 से प्रतिवर्ष दशहरा में सम्मिलित होता है।
41. बणशीरा, गाँव कनौण - वर्ष 1968 से लगातार दशहरा में सम्मिलित होता है।
42. बराधी वीर, गाँव बनोगी - प्रतिवर्ष दशहरा में सम्मिलित होता है।
43. श्यामा काली, गाँव दलासणी - देवी कभी-कभार दशहरा में सम्मिलित होती है।

सरुनाग

पराशर ऋषि